ISSN 0974-1100

# पूर्वदेवा

## सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

**PŪRVADEVĀ - A Social Science Research Journal**

Peer Reviewed Bilingual International Research Journal
The Journal indexed in the UGC-CARE list.

वर्ष 30 ❊ संयुक्तांक : 117–118

अप्रैल–सितम्बर, 2024

प्रधान सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

# पूर्वदेवा

## सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

**PŪRVADEVĀ** **A Research Journal of Social Sciences**

**Peer Revied Bilingual International Research Journal**
**This Journal is included in the UGC-Consortium for Academic and Research Ethics**

**वर्ष 30 संयुक्तांक 117–118** **अप्रेल–सितम्बर, 2024**

❐

प्रधान सम्पादक
**डॉ. हरिमोहन धवन**

❐

प्रकाशक
**पी.सी. बैरवा**

*मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी*
*बाण भट्टमार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र) 456010*
*दूरभाष (0734) 2518737*
E-mail : mpdsaujn@gmail.com Website : www.mpdsa.org

# पूर्वदेवा

*सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*


**परामर्श मण्डल**

**डॉ. प्रकाश बरतुनिया**
पूर्व कुलाधिपति– बाबा साहेब अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

**डॉ. अनिल दत्त मिश्रा**
प्रतिष्ठित गांधीवादी विद्वान व वरिष्ठ उपाध्यक्ष, सुलभ अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सेवा संगठन, नईदिल्ली

**डॉ. रामगोपाल सिंह**
पूर्व आचार्य, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, महू (म.प्र.)

**डॉ. जयप्रकाश कर्दम**
वरिष्ठ साहित्यकार एवं सम्पादक, दलित साहित्य वार्षिकी, नईदिल्ली

**डॉ. एच.एल. अनिजवाल**
अतिरिक्त संचालक, उज्जैन संभाग, उच्च शिक्षा विभाग, मध्यप्रदेश

**डॉ. डी. डी. बेदिया**
आचार्य एवं निदेशक, व्यवसाय प्रबंध संस्थान, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

**सम्पादक मण्डल**

**डॉ. ज्ञानचन्द्र खिमेसरा**
पूर्व आचार्य अर्थशास्त्र व प्राचार्य, शास.स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर

**डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलु**
पूर्व आचार्य इतिहास व प्राचार्य, शास. माधव महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

**डॉ. शैलेन्द्र पाराशर**
पूर्व आचार्य समाजशास्त्र व अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर पीठ, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

**डॉ. प्रेमलता चुटैल**
पूर्व आचार्य, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

**डॉ. अरूण कुमार**
प्राध्यापक,राजनीति विज्ञान, शासकीय तिलक महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)

**प्रधान सम्पादक**

**डॉ. हरिमोहन धवन**
आचार्य, राजनीति विज्ञान व पूर्व प्राचार्य, उच्च शिक्षा विभाग, (म.प्र.)



**प्रकाशक : पी. सी. बैरवा**



**© स्वात्वाधिकारी : मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी,**
बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.)



इस अंक का मूल्य रूपये 150/–

वित्तीय सहयोग
**भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नईदिल्ली**

**सम्पादन व प्रकाशन सर्वथा अवैतनिक एवं अव्यवसायिक**

**वर्ष 30, संयुक्तांक 117-118** **अप्रेल–सितम्बर, 2024**

# पूर्वदेवा

**सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका**

वर्ष 30 संयुक्तांक 117-118 अप्रेल–सितम्बर, 2024


## ❐ अनुक्रम ❐


1. जाति एवं जेंडर आधारित अंतरानुभागीयता अनुसूचित जाति की महिलाओं का एक नृजातीय अध्ययन — सुबोध कान्त, डॉ. पंकज सिंह — 1

2. भारत के आर्थिक–सामाजिक परिदृश्य में शुद्र वर्ण की भूमिका मिथक, यथार्थ तथा संभावनाएं — डॉ. कैलाश चन्द सामोता — 9

3. 21 वीं सदी के भारत में लिव इन रिलेशनशिप – एक अध्ययन — डॉ. हसमुख पाँचाल — 17

4. बाबा साहब अंबेडकर का संविधान निर्माण करने में योगदान — मयंक प्रताप — 23

5. भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका — डॉ. गायत्री — 30

6. बिहार में नील की खेती और 1857 का विद्रोह — ओमकार नाथ पाण्डेय — 42

7. गोंड़ जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक जीवन : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद के विशेष सन्दर्भ में) — डॉ. दीपक कुमार खरवार — 49

8. शहरी आवासविहीन महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति और घरेलू हिंसा का विश्लेषणात्मक अध्ययन — सरोज नैनीवाल, डॉ. मोनिका राव — 65

9. बाँसवाड़ा जिले में भील जनजाति की सामाजिक व्यवस्था एवं परम्पराऐं — डॉ.कविता चौधरी — 71

10. नारद स्मृति में वर्णित दायभाग — डॉ.पूनम — 79

11. भारतीय राजनीति में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता टिहरी जनपद के विशेष सन्दर्भ में — सबीना अख्तर — 86

12. कबीर का अनुभववाद मेवालाल 93

13. **Dr. B. R. Ambedkar and Thoughts on the Eradication of Untouchability** **Rajesh Sharma** 107

14. **China's Regionalism in South Asia and Its Impact on India-China Strategic Relations** **Ashutosh Kumar Singh** 116

15. **The USA factor in Arab-Israel Peace: It's Impact on India's Foreign Policy** **Dr. Rahul Shrivastava** 126

16. **Rise of BJP as Dominant Party in Contemporary Indian Politics ( An analysis of 2019 Lok Sabha Election)** **Dr. Jyoti, Rishi Kumar** 136

17. **Subaltern Hindutva Discourse in Indian Politics and Quest for Social Justice** **Dharmendra Kumar** 148

18. **Witch Hunting in India: Mystifying Women's Lives and Identity** **Monika Tiwari** 155

19. **Exploring Symbolism, Cultural Narratives and Ethical Dimenstions in Devdutt Pattanaik's "Jaya: An Illustrated Retelling of the Mahabharata"** **Dr. Ashwani Kumar, Dr. Poonam Choudhary** 166

20. पुस्तक समीक्षा–''मालवा की लोक जातियों के प्रसिद्ध लोकगीत'' (जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत) डॉ. राजेश ललावत 172

'पूर्वदेवा' में प्रकाशित लेख एवं उनमें व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार है. सम्पादक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.

**पूर्वदेवा**– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118 अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 1–8*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# जाति एवं जेंडर आधारित अंतरानुभागीयता अनुसूचित जाति की महिलाओं का एक नृजातीय अध्ययन

**सुबोध कान्त**
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
Email: kantbhu@gmail.com Mob- 7880316531

**डॉ. पंकज सिंह**
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
Email: pankajsocio@bhu.ac.in Mob- 9696302222

**सारांश**

*जाति एवं जेंडरगत व्यवस्था का अंतर्संबंध एवं अंतरानुभागीयता दलित महिलाओं के लिए उत्पीड़न का एक विशिष्ट एवं विनाशकारी रूप का सृजन करता है। जाति पदानुक्रम व्यवस्था एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था दोनों में ही सबसे निचले पायदान पर स्थित होने के कारण दलित महिलाओं को उनकी जाति और लिंग दोनों से उत्पन्न प्रणालीगत और संस्थागत भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जो उनके जीवन को दुरूह बना देती हैं। अवसरों, संसाधनों से वंचित कर उत्पीड़न को प्रोत्साहन देने वाली यह दोहरी पहचान दलित महिलाओं को विभिन्न प्रकार के जाति एवं जेंडर आधारित दुर्व्यवहार, हिंसा, उत्पीड़न एवं बहिष्कार का सामना कराती है। जाति एवं जेंडरगत व्यवस्था का यह अन्तर्सम्बन्ध दलित महिलाओं को शिक्षा एवं सूचना से दूर कर सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में अधीनता की स्थिति में रखने को प्रोत्साहित करती है तथा सत्ता से कोसों दूर रखती है। प्रस्तुत शोध लेख में ऐसे ही उत्पीड़न एवं असमानता का सामना करने वाली अनुसूचित जाति की महिलाओं को केंद्र में रखते हुए हरदोई जिला के बेहंदर विकास खण्ड का एक नृजातीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह शोध पत्र मुख्यतः अनुसूचित जाति की महिलाओं के जीवन में जाति एवं जेंडरगत व्यवस्था के अंतर्संबंधों एवं उनके दैनिक जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में उसके गुणात्मक प्रभावो को परखने व ज्ञात का प्रयास करता है। उनके समाज में क्षेत्रीय स्तर पर सामाजिक परंपराओं, प्रथाओं एवं रीति रिवाजों में जातिगत एवं जेंडर गत भेदभाव, असमानता तथा पदानुक्रमता के सृजन एवं दिन प्रतिदिन के सामान्य व्यवहारों पर ध्यान केंद्रित किया गया है।*

**मुख्य शब्द** : जाति, जेंडर, दलित उत्पीड़न, अंतरानुभागियता

## प्रस्तावना

भारतीय समाज विविधताओं के साथ–साथ स्तरीकृत पदानुक्रमित एवं विभिन्न असमानताओं भरा समाज रहा है। कई ऐसी संस्थागत व्यवस्थाएं हैं, जो लोगों के बीच भेदभाव, असमानता और शोषण को अभिव्यक्त करती हैं। इन असमानताकारी व उत्पीड़नकारी व्यवस्थाओं में मुख्यतः जाति व्यवस्था व पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। यह दोनों ही भेदभावकारी संस्थाएं कई सदियों पुरानी है। जाति व्यवस्था समाज में जहाँ ऊँच नीच और शुद्धता व प्रदूषण (ड्यूमा, 1980)[1] की संकल्पना को पिरोकर लोगों में भेदभाव और असमानता को स्थापित करती है, वहीं पितृसत्तात्मक व्यवस्था जेंडर के आधार पर महिला पुरुष में स्तरीकरण कर पुरुषों को सर्व शक्तिशाली एवं नियंत्रक घोषित करती है। यह दोनों ही व्यवस्थाएं किसी जाति और लिंग (जेंडर) विशेष को उच्चीकृत व नियंत्रक बनाने के लिए दूसरी जातियों व जेंडर को अधीनता में रखने का वैचारिक एवं कार्यात्मक प्रकटन करती हैं। उन्हें संसाधनों व अवसरों से वंचित कर उनके विकास के मार्ग को अवरोधित करती हैं तथा सांस्कृतिक व राजनीतिक व्यवस्था में सत्ताधारी पदों से कोसों दूर रखती हैं, ताकि भविष्य में कोई उनकी सत्ता को चुनौती देने की क्षमता न प्राप्त कर सके। दलित महिलाएं यानी अनुसूचित जाति की महिलाएं उपरोक्त दोनों व्यवस्थाओं द्वारा उत्पीड़ित व दमित होती रही हैं और वर्तमान समय में भी हैं। चूंकि जाति व्यवस्था व पितृ सत्तात्मक व्यवस्था दोनों में ही दलित नारियां सबसे निचले पायदान पर रही हैं, इसलिए उन्हें समतापूर्ण व सम्मानजनक जीवन जीने के तथा अपने सर्वोन्मुखी विकास के अवसर उन्हें सबसे कम प्राप्त हुए हैं। स्वतंत्रता के बाद भी जातिगत और जेंडरगत पहचान का पुनरुत्थान एवं पुर्नसृजन तकनीकी विकास, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के आगोश में रूढ़िवादी तरीके से हुआ है। इसी कारण सामाजिक स्तरीकरण का यह अत्यधिक शोषणकारी व अलोकतांत्रिक व्यवस्था राष्ट्रीय समस्यायों के रूप में प्राथमिकताओं में रहा है (जैसवाल,2016,पृ. 40)[2]।

## जाति जेंडर एवं दलित महिला

दलित महिला एक ऐसा वर्ग या समुदाय है जो जाति एवं जेंडरगत दोनों व्यवस्थाओं में उत्पीड़ित एवं व्यवस्थित सामाजिक बहिष्कार की शिकार है। दलित महिलाओं का यह सामाजिक सीमांतीकरण उन्हें समाज की सबसे कमजोर कड़ी के रूप में परिचित कराता है और जातिगत एवं जेंडरगत नियमों द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक रूप से अक्षम बनता है, जिससे उनकी सामाजिक गतिशीलता एवं व्यक्तिगत विकास के अवसर सीमित हो जाते हैं।

जाति व्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण तीन अंर्तसंबधित एवं आपस में गुथे हुए सिद्धांत हैं। प्रथम, प्रत्येक जाति के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक अधिकार निर्धारित हैं। द्वितीय, इन जातियों के मध्य अधिकारों व अवसरों का आसमान एवं श्रेणीबद्ध विभाजन है। तृतीय, सामाजिक एवं धार्मिक प्रथा, परंपरा एवं विचारधाराओं द्वारा समर्थित एक सुदृढ़ सामाजिक बहिष्कार तंत्र का प्रावधान है। इसमें से पहले दो सिद्धांत जाति व्यवस्था की संरचना को परिभाषित एवं वर्णित करते हैं, जबकि तीसरा सिद्धांत इसके प्रवर्तन के लिए निर्दिष्ट करता है (थोरात एवं सभरवाल, 2014, पृ.14)[3]।

सामान्यतः दलितों का उत्पीड़न एवं सामाजिक बहिष्कार की घटनाओं को जाति व्यवस्था के प्रथागत नियमों, मानदंडों एवं सीमाओं के उल्लंघन के विरुद्ध दंड के रूप में दिया जाता है। यह दंड सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक संदर्भों में शारीरिक, शाब्दिक या प्रतीकात्मक विभिन्न रूपों में परिलक्षित हो सकते हैं। मुख्यतः यह दंड उन्हीं लोगों दलितों के लिए होते हैं, जो किसी प्रकार की सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत करते हुए सामाजिक या वित्तीय गतिशीलता प्रदर्शित करते हैं, या जो लोग जातिगत व्यवहार के मानदंडों की अवहेलना करते हैं। जातिगत सत्ताएं व मानसिकताएं ऐसे दलितों का दमन कर उन्हें समाज के सबसे निचले स्तर पर होने एवं उनके अधीन व सेवक की स्थिति में होने का भान दिलाती हैं।

दलित महिलाएं उपरोक्त जातीय उत्पीड़नकारी स्थितियों से तो गुजरती ही है साथ ही जेंडरगत असमानता की भी शिकार हैं। जेंडर के आधार पर स्तरीकरण कर स्त्रियों को दोयम दर्जा देने की संकल्पना व व्यवस्थित संस्था का नाम है पितृसत्ता जो यह मानती है कि महिलाओं में पुरुषों जितनी क्षमता नहीं होती है, इसलिए उन्हें जीवन के विभिन्न पक्षों में पुरुषों के अधीन रहना चाहिए (मेनन एवं अन्य, 2016)[4]। पितृसत्तात्मक नियंत्रण होने के कारण दलित स्त्रियां घर के अंदर भी स्वतंत्र एवं समतापूर्ण जीवन को प्राप्त करने से कोसों दूर रही हैं। सामाजिक व्यवस्था के पितृसत्तात्मक ढांचे को अनुसरण करने के क्रम में दलित पुरुषों द्वारा ब्राह्मणवादी पितृसत्ता को आत्मसात करने के कारण वह अपनी स्त्रियों पर वैसा ही नियंत्रण पाने का प्रयास करता है, जैसा सवर्ण पुरुष अपनी स्त्रियों पर नियंत्रण करता है (चंदन एवं भारती, 2017)[5]। कई विद्वानों के अनुसार पुरुष अपनी क्रूर, सत्तावादी एवं नियंत्रक प्रवृत्ति के कारण भी ऐसा करते हैं, परंतु दलित नारीवादी एवं चिंतक गोपाल गुरु कहते हैं कि दलितों की पितृसत्ता सवर्ण पितृसत्ता से अलग है। दलित महिलाएं अपने बातों को अलग तरीके से अभिव्यक्त करती हैं। साथ ही वह यह भी कहते हैं कि दलित पुरुषों ने अपनी स्त्रियों की क्षमताओं को सही तरीके से नहीं समझा और उसे नजर अंदाज किया। दलित पुरुषों ने अपनी स्त्रियों के आवाज उठाने वाले साहित्यिक प्रयासों को गंभीरता से नहीं लिया और उसे फिजूल सिद्ध करने की कोशिश की (गुरु, 1995)[6]। दलित पुरुषों ने परिवार में व अपने जातीय समुदाय में लैंगिक सत्ता पर काबिज रहने के लिए सवर्ण पितृसत्ता से प्रेरणा ली और उन्होंने हिंसा व उत्पीड़न का भी सहारा लिया।

जाति और जेंडर का अंतर्संबंध दलित महिलाओं के लिए दोहरे उत्पीड़न व भेदभाव का वातावरण तैयार करते हैं, जो उन्हें सत्ता, संसाधनों, शिक्षा एवं सूचनाओं से वंचित कर अधीनता की स्थिति में रहने को मजबूर करते हैं। यही कारण है कि दलित महिलाएं अपने जातीय पुरुषों एवं अन्य उच्च जातियों के लोगों द्वारा उत्पीड़न का शिकार बारंबार होती रहती हैं। बांदा, उत्तर प्रदेश में 14 साल की दलित लड़की का अपहरण करके दो दिनों तक बलात्कार करना (अमर उजाला,8 फरवरी 2004), पटियाला पंजाब में दलित महिला के साथ तीन महीने तक बलात्कार व अत्याचार करना (दिसंबर 2006 से फरवरी 2007), जैसलमेर राजस्थान में उच्च जातियों द्वारा एक दलित महिला का बलात्कार करना वह उसका घर चला देना (7 दिसंबर 2006), भंडारा महाराष्ट्र में दलित स्त्री को नंगे परेड करना और फिर जला देना (12 फरवरी 2004), त्रिपुर जिले

के माहिजाकंचेरी गांव में दलित महिला का प्रधान चुने जाने पर सवर्णों द्वारा बायकाट करना (नवभारत टाइम्स, 18 फरवरी 2004), सुपौल, बिहार में दलित लड़की द्वारा अंतर्जातीय विवाह करने पर सवर्णों द्वारा जान से मार देना और पुलिस द्वारा सुरक्षा मुहैया न कराना (20 दिसंबर 2006) (थोरात एवं सभरवाल, 2014, पृ. 16–21)[7] तथा हाल ही में उत्तर प्रदेश में घटित हाथरस कांड आदि घटनाएं यह सिद्ध करती है कि जातिगत एवं पितृसत्तात्मक रुग्ण मानसिकता भारतीय समाज में दृढ़ता से पैर पसारे हुए हैं और दलित महिलाओं को लगातार शिकार बना रही है। अंतरराष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार सन 2019 में दलितों एवं महिलाओं के विरुद्ध अपराध उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक हुए हैं (द वायर, 2020, 30 सितंबर)[8]।

**शोध पद्धति**

प्रस्तुत शोध पत्र उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले के बेहंदर विकासखंड में निवास करने वाली अनुसूचित जाति की महिलाओं के नृजातीय (एथनोग्राफिकल) अध्ययन पर आधारित है। बेहंदर विकासखंड में अनुसूचित जाति की संख्या 47.53 प्रतिशत है तथा अनुसूचित जाति में महिलाओं की संख्या 47 प्रतिशत है (जनगणना, 2011)[9]। इन्हीं अनुसूचित जाति की महिलाओं में से 110 महिलाओं को उद्देश्यात्मक एवं सुविधाजनक निदर्शन विधि द्वारा उत्तरदाता के रूप में चुना गया, जो मूलत पांच गावों रैसो, भटौली, अलीपुर, सरहरी एवं गंज से हैं। उत्तरदाताओं का आयु समूह 18 से 50 वर्ष था। आंकड़ा संकलन हेतु मिश्रित पद्धति का प्रयोग किया गया है, अर्थात गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दोनों तरह के आंकड़े एकत्रित किए गए हैं। यह आंकड़े एकत्रित करने के लिए उत्तरदाताओं का कई महीने अवलोकन एवं गहन साक्षात्कार किया गया है तथा प्रकरण अध्ययन विधि का भी प्रयोग किया गया है। शोधकर्ता द्वारा उत्तरदाताओं के बेहतर समझ को ध्यान में रखते हुए हिंदी तथा वहां की स्थानीय भाषा में प्रश्न पूछे गए हैं।

**शोध के नृजातीय परिणाम**

शोधकर्ता द्वारा अनुसूचित जाति की महिलाओं के साथ उनके दिन–प्रतिदिन के सामान्य सामाजिक – सांस्कृतिक पर्यावरण में अंतः क्रिया एवं बातचीत करके जीवन में जाति एवं जेंडर की भूमिका व उसकी प्रभाविकता को उजागर किया गया है। साथ ही इससे जाति और जेंडर व्यवस्था से संबंधित मान्यताओं विश्वासों एवं रीति–रिवाज का ज्ञान होता है। दलित महिलाएं अपने सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में जाति और जेंडरगत व्यवस्था द्वारा दोहरी शोषण की शिकार है, यह उनके द्वारा उच्च जातीय लोगों एवं सजातीय पुरुषों के साथ अंतः क्रिया एवं व्यवहारों में प्रकट होता है।

**जाति एवं जेंडर : अंतरानुभागीयता**

जाति व्यवस्था ने अपनी भेदभावकारी विचारधारा द्वारा दलितों को गरिमा व मानवाधिकार से वंचित कर उनकी व्यक्तिपरकता (सब्जेक्टिविटी) को नकार दिया है। जाति व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि जिन लोगों ने उत्पादन के साधनों पर प्रभुत्व जमाया, उन्होंने प्रतीकात्मक उत्पादन के साधनों पर भी अपना नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की है। इस प्रतीकात्मक अधिपत्य ने उन्हें उस मानक को नियंत्रित करने की अनुमति

दी है, जिसके द्वारा शासन का मूल्यांकन किया जाता है, ताकि इनमें निचली जाति के लोगों के विचारों का कोई स्थान न हो (चक्रवर्ती, 2018, पृ.07)[10]। उमा चक्रवर्ती का यह विचार सामाजिक यथा स्थिति को प्रदर्शित करता है। उच्च जातीय लोग दलितों को छूने से बचते हैं। दलित महिलाएं यदि उनके खेतों में काम करने जाती हैं, तो उन्हें कभी भी अपने बर्तन में खाना पानी नहीं देते। दलितों एवं सवर्णों के मध्य विवादों व झगड़ों में दलित महिलाओं को गंदी गालियां देकर एवं जातिवादी संबोधनों द्वारा शाब्दिक, मानसिक उत्पीड़न किया जाता है। संवैधानिक रूप से अस्पृश्यता निवारण व जाति असमानता समाप्त होने की 76 साल बाद भी ब्राह्मण, क्षत्रिय व बनिया समुदाय के लोग दलितों के साथ एक खाट पर नहीं बैठते न ही साथ खाना खाते हैं। भटौली जैसे कई गावों में जहां अनुसूचित जाति या अनुसूचित जाति महिला ग्राम प्रधान है, सवर्ण उसको शासन सत्ता नहीं चलाने देते । उसको मात्र रबर स्टैंप बनाकर रखा हुआ है । पट्टे की जमीनें, जो दलितों के पास हैं, वह सवर्ण ग्राम प्रधान से मिलकर कब्जा कर लेते हैं। साथ ही उच्च जातीय लोगों द्वारा दलित लड़कियों के साथ छेड़खानी व बदसलूकी की घटनाएं भी होती हैं। उपरोक्त समस्त घटनाएं व क्रियाएं दलित महिलाओं के मानवाधिकार का हनन तो करती ही है साथ ही उन्हें शासन सत्ता से दूर रख कमजोर व निष्क्रिय बनाती हैं। दलितों के साथ दिन प्रतिदिन होने वाली जातीय भेदभाव व असमानता शासन प्रशासन नजर अंदाज करती है या समझौता कराकर टाल देती है।

इसके अतिरिक्त बेहंदर ब्लॉक की अनुसूचित जाति की महिलाओं को घरेलू हिंसा व पितृसत्तात्मक उत्पीड़न का सामना भी करना पड़ता है । अधिकांश पुरुष शाम को देसी शराब पीकर आते हैं और अपने पत्नियों के साथ गाली गलौज व मारपीट करते हैं। यह क्रिया उस दलित समुदाय में इतनी सामान्य हो गई है कि दलित महिलाएं इसकी आदी हो गई हैं। एक स्थानीय महिला से बात करने पर वह करती हैं कि ''भईया ई तो हर घर के मरदवे करत हैं। क्या करै आपन मरद हैं।'' अर्थात यह तो प्रत्येक घर के पुरुष करते हैं । क्या ही करें अपने पति हैं। पितृसत्तात्मक एवं जातीय दोहरे उत्पीड़न की शिकार दलित नारी लगभग रोज किसी न किसी अमानवीयता व भेदभाव से गुजरती है।

**शिक्षा एवं व्यवसाय**

**सारणी 1. अनुसूचित जाति की महिलाओं में शिक्षा**

| शैक्षिक स्थिति | कुल संख्या | प्रतिशत (लगभग) |
|---|---|---|
| अशिक्षित | 78 | 70.90 |
| प्राथमिक | 16 | 14.54 |
| हाई स्कूल | 11 | 10 |
| इंटरमीडिएट | 04 | 3.63 |
| स्नातक | 01 | 0.9 |
| परास्नातक | 00 | 00 |

'क्षेत्र कार्य द्वारा प्राप्त प्राथमिक आकड़े

सारणी 2. अनुसूचित जाति की महिलाओं में व्यवसाय

| व्यवसाय | कुल संख्या | प्रतिशत (लगभग) |
|---|---|---|
| गृहिणी | 49 | 44.55 |
| कृषि मजदूर | 61 | 55.45 |
| नौकरी पेशा | 00 | 00 |
| व्यापारी | 00 | 00 |
| अन्य | 00 | 00 |

' क्षेत्र कार्य द्वारा प्राप्त प्राथमिक आकड़े

किसी भी व्यक्ति के सर्वोन्मुखी विकास के लिए पहली सीढ़ी होती है शिक्षा जो व्यक्ति को इतना सक्षम बनाती है कि वह अपने अधिकारों व कर्तव्यों को तार्किक रूप से समझ सके और प्राप्त कर सके तथा अपने बेहतर भविष्य के साथ राष्ट्र के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सके, परंतु बेहंदर विकासखंड की दलित महिलाओं के संदर्भ में स्थिति ऐसी नहीं है, यहां की अधिकतम (70.9प्रतिशत) महिलाएं अशिक्षित हैं और मात्र 10 प्रतिशत महिलाओं ने हाई स्कूल उत्तीर्ण किया है (सारणी 1)। बदतर शैक्षिक स्थिति होने के कारण ही यहां की अधिकांश (55. 45प्रतिशत) दलित महिलाएं कृषि मजदूर हैं तथा खाली समय में कढ़ाई बुनाई करके गुजारा करती हैं, जबकि बाकी महिलाएं सिर्फ गृहिणी बनकर रह गई हैं (सारणी 2)। दलित महिलाओं की ऐसी शैक्षिक एवं व्यवसायिक स्थिति उन्हें जाति और पितृसत्तात्मक उत्पीड़नकारी व्यवस्था के अधीन बनाने में योगदान देती है।

**पारिवारिक सत्ता एवं निर्णयन अधिकार**

परिवार का आकार, घरेलू संरचना एवं जेंडर संबंध यह निर्धारित करते हैं कि परिवार में स्त्री का स्थान क्या होगा और धार्मिक, सामाजिक सांस्कृतिक विश्वास, रूढ़ियों व परंपराएं यह निर्धारित करती हैं कि उस स्त्री का अपने जीवन पर नियंत्रण कितना होगा तथा जीवन निर्वहन व नियमन किस तरह होगा (पालड़ीवाला, 1999)[11]। उपरोक्त सामाजिक नियमों, विश्वासों व रूढ़ियों को दलित समुदाय ने भी काफी हद तक आत्मसात कर लिया है, जिसका परिणाम यह है कि पति–पत्नी दोनों द्वारा आर्थिक उपार्जन के बाद भी परिवार का मुखिया हमेशा पुरुष होता है। परिवार के सभी निर्णय पुरुष लेता है। दलित समुदाय में भी महिलाओं की यौनिकता व स्वतंत्रता पर पुरुषों का पहरा है। अधिकतम पुरुष अपने घर की महिलाओं को अनजान तथा घर से बाहर के पुरुषों के साथ अकेले बात नहीं करने देते। इसी तथ्य को निवेदिता मेनन का यह कथन चरितार्थ करता है कि ''विषम लिंगी पितृसत्तात्मक परिवार यौनिकता पर पहरेदारी करने वाली संस्था है और परिवार का यह समकालीन स्वरूप ही सामाजिक व्यवस्था का आधार है (मेनन, 2021, पृ.16)[12]। इसके अतिरिक्त वे दलित महिलाएं जो बाहर का काम करती हैं, वह बाहर का काम निपटाने के बाद घर का भी काम करती है, जिससे उन पर काम का दोहरा बोझ पड़ता है। बच्चों, वृद्धो एवं घर के पुरुषों की देखभाल, घर की साफ सफाई, भोजन पकाने आदि का कार्य भी स्त्रियां ही करती हैं। घर चलाने हेतु आर्थिक

सहभागिता सहित महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के बाद भी दलित महिलाओं के पास पारिवारिक सत्ता व मुख्य मुद्दों पर निर्णय लेने के अधिकार लगभग नगण्य हैं । यह स्थिति तब और अधिक दयनीय होने लगती है जब अधिकतम महिलाओं को अपने जीवन को क्रियान्वित करने वाले फैसलों के लिए भी घर के पुरुषों से इजाजत लेनी पड़ती है।

**सांस्कृतिक एवं सामुदायिक जीवन**

प्रत्येक समाज का अपना सांस्कृतिक एवं सामुदायिक जीवन होता है, जो क्षेत्रीय विशेषताओं को समेटे हुए रहता है। बेहंदर विकासखंड का ग्रामीण सामुदायिक जीवन बहुत असमानता व भेदभाव भरा है। यहां कोई भी सामाजिक सांस्कृतिक उत्सव सभी जातियां मिलकर नहीं मानती हैं, बल्कि सभी जातियों की अपनी अलग–अलग व्यवस्थाएं होती हैं। यहां तक कि उनके मंदिर, पुजारी व धार्मिक संसाधन भी अलग है। ऊँच–नीच की भावना वर्तमान समय में भी प्रबल है। उच्च जातीय लोग दलितों के साथ भोजन नहीं करते और न ही एक खाट या चारपाई पर बैठते हैं। दलित महिलाओं को और भी निम्न समझा जाता है। विवाह, भोज या भंडारा जैसे सामाजिक कार्यक्रमों में दलितों के लिए अंत में या अलग पंक्तियां बैठाई जाती हैं और उन्हें खाना खाने के पश्चात अपना पत्तल स्वयं फेंकना होता है। इस कारण से अधिकांश दलित भी सवर्णों से ताल्लुक नहीं रखना चाहते। गहन जातीय पितृसत्तात्मक नियंत्रण के कारण सवर्ण महिलाएं दलितों से अंतः क्रिया करने से बचाती हैं। एक दलित महिला बताती है कि कई सवर्ण स्त्रियां दलित स्त्रियों से संबंध रखना चाहती हैं, परंतु उनके पारिवारिक पुरुष उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं। गांव में जातीय भेदभाव नहीं मानने वाले भी कई सवर्ण परिवार हैं, जो दलितों से मेल मिलाप रखते हैं, परंतु उनकी संख्या बहुत कम है। सांस्कृतिक–सामुदायिक जीवन की उपरोक्त स्थितियां जातीय भावना को बरकरार रखने एवं जातीय आधार पर असमानता, भेदभाव व उत्पीड़न युक्त समाज स्थापित करने को प्रेरित करती है।

**निष्कर्ष एवं चर्चा**

प्रस्तुत नृजातीय (एथनोग्राफिक) अध्ययन दलित महिलाओं के जीवन में जाति एवं जेंडर के अंतर्संबंध एवं अंतरानुभागीयता का गहन संज्ञान लेता है। दलित महिलाएं जाति व्यवस्था एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था दोनों से असमानता एवं भेदभाव की शिकार तथा उत्पीड़ित है। इसका मुख्य कारण है उनकी शिक्षा व अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता में भारी कमी होना, जिसके कारण वह कोई सम्मानजनक रोजगार करने लायक ज्ञान, क्षमता एवं कौशल का विकास नहीं कर पाती हैं और कृषि मजदूर बनकर जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हैं। संवैधानिक एवं सांविधिक प्रयासों के बावजूद आज भी दलित महिलाओं को उच्च जातीय लोगों द्वारा घृणित एवं कुछ हद तक अछूतवादी व्यवहार का सामना करना पड़ता है तथा उनके साथ बारंबार शाब्दिक एवं कभी–कभी शारीरिक शोषण की घटनाएं होती रहती हैं। परिवार के अंदर स्वजातीय पुरुष भी पितृसत्तात्मक नियमों का अनुसरण करते हुए स्त्रियों को अपने अधीन रखने की मानसिकता रखते हैं, जिसकी अभिव्यक्ति शराब पीकर पत्नी के साथ गाली–गलौज और मारपीट करने, उसकी यौनिकता एवं स्वतंत्रता पर पहरा रखने, उसको स्वयं से निर्णय न लेने

देने, सत्ताधारी कार्यों एवं मुद्दों से दूर रखने आदि में अभिव्यक्त होती है, यहां तक की दलित स्त्री द्वारा अर्जित किये गए धन पर भी परिवार के मुखिया पुरुष का ही नियंत्रण होता है। दलित महिलाएं अपने सांस्कृतिक–सामुदायिक जीवन में जातीय एवं जेंडरगत असमानता एवं भेदभाव के कारण मानवाधिकार सहित गरिमामयी जीवन जीने से वंचित है। उच्च जातीय लोगों के साथ एक चारपाई पर न बैठने, एक साथ खाना न खाने, साथ में कोई त्यौहार या उत्सव न मानने, अपने आप को सवर्ण जातियों से छोटा व निम्न समझने जैसे विश्वास व कुरीतियां दलित समुदाय सहित दलित महिलाओं में आत्मसात् हो गया है, जिसके कारण वह उसी शोषण के कुचक्र में फंसी हुई हैं।

दलित नारियों के जीवन में जाति एवं जेंडर समानता का संघर्ष आपस में गुथा हुआ एवं अविभाज्य है । दलित महिलाओं द्वारा सामना किये जा रहे जाति एवं जेंडर संबंधी भेदभाव व उत्पीड़नों को पहचानने व समाप्त करने के लिए सकारात्मक प्रगति एवं सामाजिक सुधार तथा परिवर्तन की आवश्यकता है, जो बहुत धीमी गति से हो रहा है। शासन–प्रशासन तथा समाज सुधार संगठनों को अधिक समावेशी व न्याय संगत समाज की स्थापना की दिशा में काम करने की आवश्यकता है, जिससे कि सभी जाति व लिंग के लोग विकास के समान अवसर प्राप्त करते हुए मानवाधिकार व गरिमामयी जीवन व्यतीत कर सकें।

❒

*सन्दर्भ –*


1. *Dumont, L. (1980). Homo Hierarchicus: The caste system and its implications. University of Chicago Press.*
2. *Jaiswal, Surira (2016). The Making of Brahmanical Hegemony: Studies in Caste Gender and Vaishnav Theology, New Delhi: Tulika Books Publication.*
3. *Thorat, Sukhdev and Sabharwal, Nidhi Sadana (2014). Bridging the Social Gap: Perspectives on Dalit Empowerment, New Delhi: Sage Publication.*
4. *मेनन, निवेदिता एवं अन्य (2016). नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे. नयी दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.*
5. *चन्दन, संजीव एवं भारती, अनीता (2017). दलित स्त्रीवाद. दिल्लीः द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन.*
6. *Guru, Gopal (Oct. 14-21, 1995). Dalit Women Talk Differently. Economic and Political Weekly, Vol. 30, No. 41/42, pp. 2548-2550*
7. *Thorat, Sukhdev and Sabharwal, Nidhi Sadana (2014). Bridging the Social Gap: Perspectives on Dalit Empowerment, New Delhi: Sage Publication.*
8. *द वायर (2020, सितम्बर 30). साल 2019 में महिलाओं और दलितों के खिलाफ अपराध के सबसे अधिक केस उत्तर प्रदेश में दर्ज। एक्सेस्ड ऑन 14.08.2023. https://thewirehindi.com/141507/ncrb-report-crime-against-women-increased-seven-percent-in-2019-up-on-top/*
9. *Census, 2011. Accessed on 05.07.2023. https://censusindia.gov.in/census.website/*
10. *Chakravarti, Uma (2018). Gendering Caste: Through A Feminist Lens, Tamilnadu: Sage Publication*
11. *Paldiwala, Rajani (1999). Beyond Myths: The Social and Political Dynamics of Gender, in Kabeer, Nayla and Subramanyam, Ramya (Ed.). Institutions, relations and Outcomes: A framework and Case Studies for Aware Planning, Delhi: Kali for Women.*
12. *मेनन, निवेदिता एवं अन्य (2016). नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे. नयी दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.*

*पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 9–16*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# भारत के आर्थिक-सामाजिक परिदृश्य में शूद्र वर्ण की भूमिका मिथक, यथार्थ तथा संभावनाएं

**डॉ. कैलाश चन्द सामोता**

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान–302004
E-mail- kailashappy1986@gmail.com Mob. 9784084824

**सारांश**

*शताब्दियों से भारत की मिट्टी में बसने वाले लोगों का वह समूह जो कि उत्पादन के कार्यो से जुड़ा हुआ है और जिसे आर्यों के आगमन के पश्चात् सामाजिक पदसोपान में शुद्र वर्ण के नाम से एक निम्न स्तर की पहचान दी गई है। उत्पादक कार्यो से संबंधित लोगों का यह समूह अर्थात् आदिवासी, दलित, किसान, पशुपालक, चरवाहा, नाई, धोबी, कुम्हार, मिस्त्री, खाती, दर्जी इत्यादि जो सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर अब तक सर्वत्र विद्यमान है परंतु यथार्थ में यह भारत के आर्थिक–सामाजिक परिदृश्य में कहीं पर भी अपने प्राधान्य या पहचान को स्थापित नहीं कर पाया है और इसीलिए शुद्र या उत्पादक कार्य समूह कही दिखायी नहीं देता है। इस वर्ण के बारे में वैदिक काल से लेकर अब तक अनेकानेक मिथक बने हुए है जिनके यथार्थ को पहचानना अपरिहार्य है। मेरा यह शोध पत्र शुद्र वर्ण की भारत की आर्थिक–सामाजिक प्रणाली में भूमिका को जानने का, उसका विश्लेषण करने का तथा उसके बारे में विद्यमान मिथकों को यर्थाथ के समीप ले जाने एवं उसकी अपनी पहचान को स्थापित करने की भावी संभावनाओं को खोजने का एक विमर्श है।*

**मुख्य शब्द** : उत्पादक वर्ग, शुद्र वर्ण, आर्थिक–सामाजिक प्रणाली, प्राधान्य और पहचान।

## प्रस्तावना

आर्य–अनार्य के विभेदीकरण ने एक ऐसी सामाजिक–धार्मिक एवं आर्थिक व्यवस्था को स्थापित किया जिसे बाद के ब्राह्मण ग्रंथों ने अतिश्योक्तिपूर्ण या महिमामण्डन की नीति के सहारे मानवीय समता के विरूद्ध, एक भेदभावपूर्ण कर्म–प्रधान वर्ण व्यवस्था में और इसे आगे चलकर जन्म–आधारित वर्ण व्यवस्था में और अंततः जन्म–आधारित जाति व्यवस्था में परिवर्तित कर दिया है जो कि आज भारतीय लोकतांत्रिक राजनीति का केंद्र बनी हुई है। जाति की

राजनीतिक भूमिका को रजनी कोठारी ने बखूबी बयां किया है। सिंधु घाटी सभ्यता काल में किस प्रकार की सामाजिक–धार्मिक एवं आर्थिक प्रणाली विद्यमान थी? इसका साहित्यक स्वरूप अभी तक भी अज्ञात बना हुआ है। शायद आने वाले समय में नवीन अनुसंधानों से इस संबंध में स्थिति अधिक स्पष्ट हो सके तथापि सिंधु घाटी सभ्यता की खोजों में प्राप्त साक्ष्य विशेष रूप से कृषि के औजार, पशुपालन, मानवीय आवास या नगर नियोजन, सिंचाई, ईंट, चूल्हे, फसलें, मृदभाण्ड, आभूषण, ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन के लक्षण, वाद्य यंत्र, आखेट संग्राहक, पत्थर के औजार, शिलबट्टा इत्यादि हुबहू ऐसे ही है जैसे कि आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में वे उपलब्ध है। इससे यह तथ्यात्मक स्वरूप अभिलक्षित होता है कि उत्पादक वर्ग या शुद्र वर्ण जिसमें वर्तमान आदिवासी, दलित और अन्य पिछडे वर्ग के समुदाय किसान, आदिवासी, दलित, चरवाहा, नाई, धोबी, कुम्हार, लुहार, सुनार, खाती, दर्जी, मिस्त्री इत्यादि कामगार समुदाय शामिल है, वह उस समय भी जनसंख्या के मुख्य भाग के रूप में विद्यमान था। यह उतपादक कार्य समूह हड़प्पा सभ्यता के इतिहास से लेकर आज तक भी विशेषतया शारीरिक श्रम वाले कार्यों से जुडा हुआ है।

सिंधु घाटी सभ्यता के पतन के बाद लगभग 1500 से 500 ईसा पूर्व की वैदिक एवं उतर वैदिक सभ्यता के दैवीय स्तुति वाले अपौरूषेय व निरूक्त वैदिक साहित्य या धार्मिक साहित्य में इस वर्ण का विवेचन या बखान नहीं किया गया है अपितु ब्राह्मण वर्ण या पुजारी या पुरोहित वर्ण या केवल आध्यात्मिक नागरिकों का विवेचन किया गया है जिन्हें श्रुति के रूप में जाना जाता है। श्रुति का अर्थ केवल सुने हुए, से है। इस साहित्य में चार वेदों का उल्लेख मिलता है जिनमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुरवेद और अथर्ववेद प्रमुख है।[1] स्मृति साहित्य की श्रेणी में वेदांग–संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्, पुराण, एपिक्स–महाभारत व रामायण, धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र साहित्य को शामिल किया जाता है। इसके बाद बौद्ध व जैन साहित्य, तमिल साहित्य दिखायी पड़ते है। इन सबके बीच सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हवन, यज्ञ, बलि, जन्म, विवाह, मृत्यु, युद्ध, भोजन सामग्री, दुग्ध, कर इत्यादि में अर्थात् धार्मिक व सामाजिक अनुष्ठानों में शुद्र वर्ण की ही प्रधान आर्थिक भूमिका रही है और आज भी है तथापि उसे साहित्य लेखन में कही भी उल्लेखित नहीं किया गया है। वर्ण व्यवस्था के प्रतिबंधों के कारण जैसे कि द्विज नहीं होने की वजह से, ब्राह्मण साहित्य के अनुसार, इस वर्ण को शिक्षा–दीक्षा से वंचित रखा गया। यही कारण है कि उन्होंने अपना इतिहास स्वयं ही लिखा जिसमें अन्य मानवीय समुह को पहचान नहीं दी गई। यथार्थ यह है कि धार्मिक कार्यो का, सामाजिक कार्यों का एवं आर्थिक प्रणाली का संचालन इस उत्पादक कार्य में लीन वर्ग के बिना न तो इतिहास में कभी संभव रहा है और न ही आज 21 वीं सदी में संभव है तथापि वह लेखन इतिहास का अभिन्न हिस्सा नहीं बन पाया है। उसकों वह स्थान दिलाना होगा जिसका वह हकदार है और इसके लिए उस वर्ण में चेतना जागृत करने की आवश्यकता है।

## सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य में शुद्र वर्ण की भूमिका का ऐतिहासिक विश्लेषण

भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के अध्ययन की व्यवस्थित परंपरा 1784 में स्थापित 'द एशियाटिक सोसायटी आफॅ बंगाल'[2] की स्थापना से होती है। अनेक विद्वानों ने इसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित करने का बीड़ा उठाया जिनमें ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के शोधार्थियों का विशेष योगदान रहा है। इसी कड़ी में प्रथम महायुद्ध के बाद अनेक भारतीय

विद्वानों ने भी अपना योगदान दिया है। इनके लेखन से यह सारांश सामने आया कि भारतीय दर्शन या वैदिक दर्शन या ब्राह्मण दर्शन का आधार धर्ममीमांसा या तत्वमीमांसा अथवा अध्यात्मवाद को माना गया और इसी के आधार पर लेखन को गति प्रदान की गई। भौतिकतावाद अथवा उस काल के सामाजिक व आर्थिक आधार को नजरअंदाज करने की रीति इस अध्ययन परंपरा को अपूर्ण बनाती है।[3] इसका आभास राधाकृष्णन के इस व्यक्तव्य से भी होता है कि ''भौतिकवाद, दर्शन से भी प्राचीन है।[4]

कुछ शोधार्थियों को यह महसूस होता है कि दार्शनिक व्यवस्था और सिद्धांतों को उनकी सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि से परे रहकर ही उचित रूप से समझा जा सकता है जो कि अध्ययन की पद्धति का एक बड़ा दोष है। वैदिक साहित्य एवं ब्राह्मण ग्रंथों की विवेचना में इसे रेखांकित किया जा सकता है जिनमें शुद्र वर्ण की सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में भूमिका को अलग करके केवल स्तुती या दैवीय या आध्यात्मिकता या धर्ममींमासा को विवेचित किया गया है। जर्मन दार्शनिक चिंतक कार्ल मार्क्स लिखते है कि ''भौतिक संसाधनों के उत्पादन का माध्यम अस्तित्व का निर्धारण करता है।'' परिस्थितियां समस्त सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक जीवन का प्रतिरूप होती है। यह व्यक्ति की चेतना नहीं है जो उसके अस्तित्व का निर्धारण करती है, अपितु इसके विपरीत यह सामाजिक अस्तित्व है जो व्यक्ति की चेतना का निर्धारण करता है।[5]

अनेकानेक ऐतिहासिक खोजों से यह साबित हो चुका है कि भारत की प्राचीन सिंधुघाटी सभ्यता ज्ञान की एक विकसित एवं समृद्ध विरासत रही है। मोहनजोदडों, चंदूहडों, हडप्पा, धौलावीरा इत्यादि विकसित स्थल रहे है। भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे प्राचीन लिपि हड़प्पा लिपि है परंतु उसे अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।[6] इस महान विकसित नगरीय सभ्यता का अंत 1500 ईसा पूर्व के आस–पास प्राकृतिक कारणों से या अन्य कारणों से हो जाता है और इसके अंत के साथ ही आर्यों का आगमन होता है और भारत में एक आर्य या वैदिक सभ्यता का उदय होता है।[7] बाहरी दुनिया के लिए सिंधु नदी भारतीय उपमहाद्वीप का प्रतिनिधित्व करती है। 'इण्डिया' 'हिंदू' और 'हिंदुस्तान' जैसे शब्दों की उत्पति इसी नदी के नाम से जुडी हुई है। प्राचीन चीनी स्त्रोत इस भूमि को भोन–तु, यूनानी या ग्रीक ग्रंथों में इसे इण्डिया कहा गया है। अरब और इरान के स्त्रोतों में सिंधु नदी के पार की भारतीय सरजमी के लिए हिंदुस्तान और इस पर रहने वालों के लिए हिदू शब्द का प्रयोग किया गया है।[8] ज्ञातव्य हो कि आधुनिक भारतीय संविधान के भाग एक के अनुच्छेद–1 में हमारे देश का नाम भारत और इण्डिया दोनों है।

एफ ई जेनुअर ने रेखांकित किया है कि सिंधु घाटी सभ्यता 4500 वर्ष पुरानी है। यद्यपि हमारे पास लिखित साक्ष्य बहुत कम है परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि हम निराश हो जाए। हम पुरातत्व विज्ञान, नृजाति–पुरातत्व विज्ञान एवं पुरालेखशास्त्र, मुद्राशास्त्र इत्यादि के माध्यम से विकास क्रम को रेखांकित कर सकते है। आदिमानव अपने उद्‌गम के साथ ही शारीरिक श्रम[9] के माध्यम से अपना पेट भरना आंरभ करता है। आखेट करना एवं कच्चा मांस खाना उसका पहला कार्य रहा है। आखेटक–संग्राहक व शैल चित्रों ने सिंधु घाटी सभ्यता को प्रामाणिकता एवं विकसित स्वरूप में जानने का अवसर प्रदान किया है। पाषण के औजार जो कि पेड काटने, छाल काटने, मांस छीलने इत्यादि के काम आते थे। माइक्रोवियर विश्लेषण विधि के माध्यम से

पत्थरों पर बने निशान के उपयोग का मालूम किया जाता है।[10] ज्ञातव्य हो कि शाकाहारी जैन संस्कृति और गांधीयन वेजेटेरियन विकास की अग्रिम अवस्था की नवीन मानवीय व्याख्या है।

व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के लिए भोजन के संग्रहण, अन्य भौतिक संसाधनों के संग्रहण एवं उत्पादन के माध्यम को ध्यान में रखकर मानव के सामाजिक–आर्थिक विकास की अवस्थाओ का वैज्ञानिक आधार पर निर्धारण किया जा सकता है। उत्पादन का माध्यम से यह मालूम होता है कि उसके पास उत्पादन के लिए कौनसे संसाधन एवं उपकरण या औजार उपलब्ध है।[11] जैसे कि सिंधु घाटी सभ्यता से मिले अवशेष जो कि आज तक गांवों में उत्पादक वर्ग या शुद्र वर्ण के उत्पादन के साधन हल, सतह पत्थर, धातु, हाथी दांत, ताम्र प्रतिमा, ईंट, मृदभाण्ड,[12] शंख, कलाकृतियां, बीज, बावडियां, जल निकासी, तालाब, जल संग्रहण के टांके इत्यादि से समानताएं रखते है जो इस बात का प्रमाण है कि उस विकसित सभ्यता में भी शुद्र वर्ण अर्थात् लोगों का वह समूह जो बडी संख्या में कृषि एवं पशुपालन के कार्य में जुटा हुआ था, का महत्वपूर्ण योगदान था। श्रम के औजार यह तो नहीं बताते कि उसका स्तर क्या था? परंतु इस बात को व्यक्त करते है कि मानवीय श्रम का स्वरूप विद्यमान था। रेबेल ब्रुस फुट ने 1863 में मद्रास व दक्षिणी भारत के बेलेरी क्षेत्र से प्राप्त कंकाल से भारत में आदिमानव के आर्यों के आगमन से हजारों वर्ष पूर्व विद्यमान होने के प्रमाण को प्रस्ततु किया।[13] दूसरी ओर सर जॉन मार्शल[14] ने 1924 में हड़प्पा सभ्यता की खोज कर भारतीय सभ्यता की प्रांरभिक दौर की जानकारी को 2500 वर्ष पीछे ले जाकर मेसोपोटामिया अथवा मिस्त्र की सभ्यताओं के समकक्ष खड़ा कर दिया।

आधुनिक समय में विद्यमान आदिवासी व उत्पादन कार्यों से जुड़े लोगों के परिवार, स्थानीय नायक, आर्थिक, सामाजिक संगठन व संस्थाएं इत्यादि हड़प्पाकालीन स्वरूप के समकक्ष दिखायी पड़ते है। सिंधु घाटी सभ्यता के अधिकांश लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। खेती के औजार तांबे व ब्रास से बने होते थे। जौ, गैहु व कपास मुख्य फसले थी। गांव के लोग नगरों के लिए भोजन व दुग्ध पर्याप्त मात्रा में उत्पादित करते थे। खेत–खलिहान का काम पूरा होने पर कृषिगत समाज के लोग नाच व गायन के माध्यम से उत्सव मनाते थे और उनके पास लकड़ी व चमडे से बने ड्रम व अन्य वाद्य यंत्र होते थे। भारत में आज भी ये लोग उस परंपरा के वाहक एवं प्रतीक बने हुए है।[15] मेरे इस शोध पत्र का मुख्य ध्येय इस तथ्य पर विमर्श डालना है कि सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर आज तक शारीरिक श्रम, कृषि व पशुपालन, जंगल व जमीन से जुडे लोग जिनमें आदिवासी, दलित एवं शुद्र वर्ण के लोग शामिल है या मार्क्स की परिभाषा में सर्वहारा वर्ग के लोग जो न केवल संख्या में अधिक है अपितु आज भी भारत की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक प्रणाली या अधिरचना के आधार के रूप में विद्यमान है, उनकों अपनी पहचान का, अपने हक के न्याय का, मुख्यधारा में आगे आने का सदियों से इंतजार है। किसान, आदिवासी, चरवाहा, नाई, धोबी, कुम्हार, खाती, दलित इत्यादि कामगार समुदाय भारत में मूल उद्योगों के आंत्रप्रेन्योर, इंजिनियर, चिकित्सक, कलाकार, वाद्यक, अभिनेता इत्यादि है। वे सब कुछ है, भारत के वास्तविक सर्जनकर्ता है, भाग्य विधाता है, मतदाता है, राष्ट्रवाद के रक्षक है परंतु वे पुजारी, पाठक, लेखक, व्यापारी, केवल वेजेटेरियन, नीति निर्माता नहीं है। वे केवल शिवाजी, ज्योतिबाराव व सावित्रि बाई फुले, बिरासा मुण्डा, भगतसिंह, पेरियार, भीमराव

अंबेडकर, सरदार पटेल तक सीमित है। लेखन की इस परंपरा को, पहचान के जुनून को, हकदारी के न्याय सिद्धांत को अपने मुकाम पर पहुँचाने के लिए पढ़ने, लिखने, संगठित रहने व संघर्ष की राह पर कदम बढ़ाने होंगें।

## शुद्र वर्ण के बारे में मिथक एवं यथार्थ

शुद्र वर्ण की उत्पति को लेकर अनेकानेक मिथक प्रचलित है। भारतीय धर्मशास्त्रों में उनके शारीरिक कार्यों को निम्न श्रेणी का कार्य बताया गया और उसे अद्विज, अयोग्य, काले, बुद्धिहीन, मोक्ष से वंचित, मंदिर से दूर, गांव से दूर–दराज क्षेत्र में रहने वाले वर्ण के रूप में विविचित किया गया है जो कि पूर्णतया मिथक है। आज भी शुद्र वर्ण के अनेक लोग जो पढ़ते व लिखते नहीं है या उनकें पूर्वजों ने भी ऐसा नहीं किया है जिसकी वजह से वे आज भी उस मनोदशा से बाहर निकलने के लिए जूझ रहे है। वैदिक या धार्मिक साहित्य के असंख्य मिथकों तक पहुँचने से पहले हमें मानवीय सभ्यता के उस सत्यता या यथार्थ को समझना होगा जिसे सुप्रसिद्ध राजनीतिक चिंतक दामोदरन[16] ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन पॉलिटिकल थॉट ए क्रिटिकल सर्वे, 1967 में उल्लेखित किया है अर्थात् ऐतिहासिक तथ्यों एवं प्रमाणों के आधार पर यह पूर्णतया स्पष्ट है कि मानवीय सभ्यता के आरंभिक जीवन में या आदिमानव के समाज में न तो किसी भी प्रकार का कोई दर्शन था और न ही किसी प्रकार कोई पंथ या रिलिजन था। आरंभिक पाषाण युग में शिकार के द्वारा भोजन संग्रहण करने वाले मांसाहारी समाज में देवताओं की प्रार्थनाओं एवं उपासनाओं किसी भी प्रकार की प्रवृतियां विद्यमान नहीं थी और न ही उनके पास इस अनुत्पादक कार्य के लिए फुरसत थी। इस समाज का मुख्य ध्येय परम सता या ईश्वर या ब्राह्मण या ब्रह्मा को प्राप्त करना नहीं था अपितु अपने जीवन यापन के लिए अपरिहार्य कंद, मूल, फल व मांस को संग्रहित व सुरक्षित करना था।

आदिम लोग आदर्शवादी या अध्यात्मवादी या पुजापंथी नहीं थे बल्कि वे प्राकृतिक रूप से भौतिकवादी थे। शारीरिक श्रम व मानसिक श्रम दोनों प्रत्येक मानव में संयोजित थे जिसे बाद में कर्मकाण्डी या दार्शनिक या अध्यात्मवादी लोगों ने शारीरिक श्रम करने वाले समुदाय से छीनकर अपने तक सीमित कर लिया । प्राकृतिक परिघटनाओं के बारे में उसे कुछ भी मालूम न था और उसकी इस अज्ञानता ने उसे अदृश्य सत्ता, भय, अध्यात्मवाद, कर्मकाण्ड, यज्ञ, आहूति, मंदिर की सता की ओर विचलित कर दिया।[17] यदि इसे हम 21 वीं सदी के परिदृश्य में समीक्षित करे तो मालूम होगा कि पुजापंथी समुदाय इसके माध्यम से आर्थिक सम्पति का संग्रहण करता है और सामाजिक वर्चस्व बनाएं रखता है जिसके कारण से आम आदमी की तार्किकता आज भी सुषुप्त अवस्था में बनी हुई है। दूनियाभर में ऐसे मानव समुदाय का कालांतर में उदय हुआ जिसे पुजारी, पादरी, मौलवी या धर्म रक्षक समुदाय के नाम से पहचान मिली और वह आज तक मानवीय शोषण व असमानता के प्रतीक बने हुए है। आदिम मानव के साथ बाद में जुडा अज्ञानता का यह आवरण या पर्दा ज्ञान के माध्यम से ही दूर हो सकता है। मेकियावली, मार्टिन लूथर, राजा राम मोहन राय जैसे विचारकों ने धर्मांधता के आवरण से आमजन को उन्मुक्त करने का प्रयास किया है। भारत में शुद्र वर्ण नायकों में ज्योतिबाराव फुले, सावित्रि बाई फुले, पेरियार, भीमराव अंबेडकर और सरदार वल्लभ भाई पटेल इत्यादि प्रमुख है।

शुद्र वर्ण के बारे में मिथक की कडी धार्मिक साहित्य से आरंभ होती है। वैदिक या धार्मिक या मौखिक साहित्य से लेकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र तक के साहित्य विवेचन में समाज के चार वर्णो की उत्पति की बात कही गई है अर्थात् ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैर से शुद्र का जन्म हुआ है। अब तक के ज्ञात इतिहास के वैज्ञानिक प्रमाणों के अनुसार लगभग 2 मिलियन वर्षों पूर्व अफ्रीका में प्रथम मानव की उत्पति के साक्ष्य मिले है। किसी भी तरह से यह संभव नहीं है कि एक ही ब्रह्म से चार अलग वर्णों का जन्म हो और यदि चार वर्ण एक ही शारीरिक रचना के चार भागों से उत्पन्न है तो फिर अलग कैसे है? एक ही अंश के चार टुकडों में आपस में भेदभाव कैसे? यदि रामायण के राम सबरी से बेर खा सकते है तो फिर मंदिर में पुजारी बनने या प्रवेश के संबंध में भेदभाव कैसे? मंदिर प्रवेश सुधार आंदोलनों की आवश्यकता क्यों? वायकोम सत्याग्रह,1923–24 की आवश्यकता कैसे? ऐसे अनेकानेक यक्ष प्रश्न वर्ण विशेष की काबिलियत के समक्ष उदित होते है जिनका जवाब अनुत्पादक कार्य में रत वर्ण के पास, न था, न है और न हो सकता है।

अंबेडकर की पुस्तक हू व्हेयर दि शुद्राज? के अंतगर्त स्पष्ट किया है कि इण्डो–आर्यन समाज में किस तरह से समाज को मानवीय असमानता पर आाधरित चार वर्णों में विभाजित कर शुद्र या क्षुद्र वर्ण को सबसे निम्न स्थान पर स्थापित किया गया है। भोरिंग ने अपनी पुस्तक हिंदू ट्राइब्स एण्ड कास्ट के अंतगर्त लिखा है कि शुद्र मूलतः आर्यन थे या वे मूल भारतीय थे। अंबेडकर कहते है कि शुद्र मूल अर्थ में किसी विशेष समुदाय से संबंधित था जो मूल अर्थ के स्थान पर निम्न वर्ग के लोगों के समुह के लिए एक सामान्य शब्द बन गया जिनकी इण्डों–आर्यन समाज में अपनी सभ्यता, संस्कृति, सम्मान और प्रस्थिति को कोई पहचान नहीं दी गई थी।[18] यद्यपि यह आर्यों के भारत आगमन से पूर्व इण्डो–अफ्रीकन या सिंधु घाटी सभ्यता में मोहन जोदडों, हड़प्पा व धौलावीरा क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से विद्यमान थी और जिसके साक्ष्य वर्तमान खोजों में मिले है। भविष्य में ओर अधिक प्रमाण मिलने की संभावना है, विशेषकर सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक प्रणाली के बारे में।

ब्रह्माण्ड की उत्पति के बारे में ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरूष सुक्त में वर्णित उदात मिथ्या या झूठ अर्थात् चतुरवर्णा दैवीय उत्पति सहित, को इस बात से भी समझ सकते है कि मिस्त्र में ऐसी ही किवदंती या तत्वमींमासा या मायथोलॉजी का उदाहरण मिलता है जहाँ खुंमू नामक भगवान ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है। इसी के समानांतर ओल्ड टैस्टामैण्ट में ब्रह्माण्ड के सर्जन का मायथोलॉजिकल विवेचन किया गया है।[19] यही कारण है कि इण्डों आर्यन समाज ने पुरूष सुक्त को अपना आदर्श बना लिया और जिसे आज तक भी वे बनाए रखना चाहते है और इसीलिए आर्य समाज या दयानंद सरस्वती ने पुनः वेदों की ओर लौट चलने का आह्वान किया है।

किसी भी ब्राह्मण साहित्य में इसका कोई सबूत नहीं मिला है कि शुद्र कौन थे और वे चौथे वर्ण के रूप में कैसे स्थापित हुए। ज्ञातव्य रहे कि पुरूष सुक्त की सामाजिक व्यवस्था पर गौतम बुद्ध के अलावा किसी ने कभी कोई प्रश्न नहीं उठाया है।[20] यदि हम पश्चिमी विचारकों के लेखन पर दृष्टि डाले तो मालूम होता है कि वैदिक साहित्य के सर्जनकर्ता आर्यन थे और जो कि भारत के बाहर से आए थे और इनके द्वारा ही वर्ण व्यवस्था को स्थापित किया गया।

बाल गंगाधर तिलक ने अपनी पुस्तक 'द आर्कटिक होम इन दि वेदाज' के अतंर्गत आर्यों का मूल स्थान उतरी ध्रुव को बताया है। भारत के मूल निवासी काली प्रजाति के लोग थे, जिन्हें दस्यू कहा जाता था परंतु आर्य सफेद प्रजाति के लोग थे। इसीलिए उनके द्वारा रंग आधारित प्राधान्यता[21] या रंगभेद के सिद्वांत को स्थापित किया जिसमें सूर्य, तारे, ब्रह्मा, प्रकाश, गाय, चावल, दूध, दही, श्रीफल या धार्मिक अनुष्ठान की अधिकांश वस्तुएं अपेक्षाकृत सफेद रखी गई। कांचा अल्लैया शैफर्ड की पुस्तक ''बफैलों नेशनलिज्म'[22] में इसे विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

**शुद्र वर्ण के लिए संभावनाए :**

ज्ञातव्य रहे कि पी.वी. काणे, जॉर्ज डेल्स व बी.बी. लाल ने हड़प्पा के संबंध में वैदिक साहित्य को नकार दिया है क्योंकि वे धार्मिक साहित्य है जिनके रचनाकाल को निर्धारित करना संभव नहीं है[23] और वे वैज्ञानिकता की कसौटी पर साबित नहीं हो सकते है। जिन रचयिताओं ने देवताओं की स्तुति में वैदिक ऋचाओं की रचना की अथवा जिन पुरोहितों ने वैदिक कर्मकाण्डों के संपादन विधि की व्याख्या की, वे कोई इतिहासकार नहीं थे। इसलिए हमको हमेशा यह ध्यान में रखना होगा कि वैदिक ग्रंथों धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ी रचनाएं हैं, इतिहास नहीं।[24]

सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था का संचालनकर्ता होने के बावजूद भी इस वर्ण को आज तक उसकी सही पहचान नहीं मिल पायी है। आध्यात्मिकता के वर्चस्व ने, लेखन के वर्चस्व ने और तथाकथित ज्ञानी समुदाय ने इस वर्ण को केवल श्रम तक सीमित कर दिया। राबर्ट नॉजिक के शब्दों में कहे तो शुद्र वर्ण के संदर्भ में हकदारी का न्याय सिद्धांत लागू नहीं हो पाया है। शिक्षा–दीक्षा एवं लेखन का कार्य जिस वर्ण के प्राधिकार में था उसने अपने ही बारे में विस्तार से लिखा और आज स्वतंत्र भारत में भी वे अधिकांशतया ऐसा ही कर रहे है। सम्पूर्ण व्यवस्था में मात्रात्मक एवं गुणात्मक रूप से अल्प होने के बाद भी इस गैर उत्पादक कार्य करने वाले वर्ण समूह ने सामाजिक–धार्मिक–आर्थिक प्राधान्यता की निरंतरता को वर्ण समनव्य अर्थात् ब्राह्मण–वैश्य कोम्बो या समूह के माध्यम से बनाए रखा है। शुद्र वर्ण को अपनी पहचान बनाने के लिए, अपनी भूमिका को सामने लाने के लिए, आभासी मिथकों को तोडने के लिए और यर्थाथ को दूनिया के सामने लाने के लिए और अपने योगदान को मुख्य धारा में लाने की संभावनाओं को हकीकत में बदलने का एकमात्र पथ या रास्ता ''पढ़ना, लिखना और संगठित होना व संघर्ष करना'' ही है।

**उपसंहार**

यह स्पष्ट रूप से अभिलक्षित होता है कि प्राचीनकाल से वर्तमानकाल तक भारत में उत्पादक कार्यों में निरत शुद्र वर्ण की भूमिका सर्वव्यापक एवं सर्वकालिक रही है। उसका योगदान आधार या नींव के रूप में है जिस पर ही भारत के विकास एवं विद्यमानता की मंजिले विराजमान है। आवश्यकता है तो अपनी योग्यता को, क्षमता को, सामर्थ्य को पहचानने की और उसके अनुरूप काम करने की, जिसे लेखन के रूप में सबके सामने लाया जा सके। उठो, जागों, अपने को पहचानों और अपनी पहचान के लिए पढ़ों, लिखों और संघर्ष करों। विजय पताका आपके इंतजार में तरस रही है। अब वह समय आ गया है जब उत्पादक वर्ग को अपना इतिहास जानना होगा और इसके बारे में अधिक से अधिक लिखना होगा। अपने गौरव को लेखन के

माध्यम से दूनिया तक पहुँचाना होगा। जैसा कि कभी ब्रिटिश गवर्नर जनरल विलियम बैटिंक ने कहा था कि हिंदुस्तान के मैदान जुलाहों की हडिड्यों से सफेद हो रखे है। हम फिर से इन जुलाहों को जगाना होगा और उन्हें कागज पर दर्ज करना होगा।

❒

*सन्दर्भ –*


*1. सिंह, उपिंदर, अनु. हितेन्द्र, (2017), प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इण्डिया, पृ. 16*
*2. दामोदरन, के, (1967), इण्डियन थॉट ए क्रिटिकल सर्वे।*
*3. वही, पृ. 5–6*
*4. राधाकृष्णन, (1927), इण्डियन फिलोसॉफी, वॉल्यूम–1, एलेन एण्ड उन्विन लिमिटेड, वाशिंगटन, पृ. 277*
*5. दामोदरन, के, (1967), इण्डियन थॉट ए क्रिटिकल सर्वे। पृ. 6*
*6. सिंह, उपिंदर, अनु. हितेन्द्र, (2017), प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इण्डिया, पृ. 41*
*7. दामोदरन, के, (1967), इण्डियन थॉट ए क्रिटिकल सर्वे। पृ. 9*
*8. सिंह, उपिंदर, अनु. हितेन्द्र, (2017), प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इण्डिया, पृ. 02*
*9. दामोदरन, के, (1967), इण्डियन थॉट ए क्रिटिकल सर्वे। पृ. 10*
*10. संह, उपिंदर, अनु. हितेन्द्र, (2017), प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इण्डिया, पृ. 58*
*11. दामोदरन, के, (1967), इण्डियन थॉट ए क्रिटिकल सर्वे। पृ. 10*
*12. सिंह, उपिंदर, अनु. हितेन्द्र, (2017), प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इण्डिया, पृ. 41*
*13. दामोदरन, के, (1967), इण्डियन थॉट ए क्रिटिकल सर्वे। पृ. 10*
*14. सिंह, उपिंदर, अनु. हितेन्द्र, (2017), प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इण्डिया, पृ. 136*
*15. दामोदरन, के, (1967), इण्डियन थॉट ए क्रिटिकल सर्वे। पृ. 16*
*16. वही पृ. 17*
*17. वही, पृ. 21*
*18. अम्बेडकर, (1946) हू वर दि शुद्राज?*
*19. वही*
*20. वही*
*21. वही*
*22. शैफर्ड, कांचा अल्लैया, (2018), बफैलों नेशनलिज्म, सेज पब्लिकेशन।*
*23. सिंह, उपिंदर, अनु. हितेन्द्र, (2017), प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इण्डिया, पृ. 186*
*24. वही, पृ. 191*

**पूर्वदेवा**– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 17–22*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# 21 वीं सदी के भारत में लिव इन रिलेशनशिप एक अध्ययन

**डॉ. हसमुख पाँचाल**
सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवविज्ञान विभाग,
महादेव देसाई समाजसेवा यूनिट महात्मा गाँधी केम्पस, गुजरात विद्या पीठ, अहमदाबाद–380009.
Email – hasmukhp13@gmail.com Mob. - 8780259982,

**सारांश**

*भारत में कुटुंब रचना का प्रथम कदम विवाह है। विवाह स्त्री–पुरुष के जातीय जीवन का समाज मान्य संबंध है। 21 वीं सदी के दशक में संबंधो की नयी विभावना उभर आयी है, जिसे लिव–इन–रिलेशनशिप (Live-in relationships) से जाना जाता है। यह ऐसा संबंध है, इस में एक स्त्री एवं पुरुष लिविंग एग्रीमेन्ट करते है, जिसमें युगल अविवाहीत होते है और कानूनन विवाह किए बिना, विवाह किए हुए युगल की तरह लंबे समय से संबंध में एक साथ, एक ही घर में रहते है। हिंदू धर्म में लिव इन रिलेशनशिप की यह विभावना को अवैध संबंध माना जाता है। भारत में नये विचारों की वृद्धि हुई और विवाह के विकल्प की खोज की, युवा पीढी ने विवाह के समग्र ख्याल को बोज मानना शुरु किया। इसलिए समुदाय में साथ मे रहने में यह मुख्य बदलाव देखने को मिला। इस संबंध में विवाह के अधिकार एवं जिम्मेदारी का निर्माण नही है। इस संबंध में दोनों एक दूसरे के लिए किसी प्रकार की जिम्मेदारी अदा करने का बंधन नही है। इसलिए समाज में इसके कानूनन एवं स्वीकृति के अभाव के लिए इस ख्याल की निंदा और चर्चा होती है। 21 वीं सदी के भारत में नए संबंधो की स्थिति का प्रस्तुत अभ्यास है।*

**मुख्य शब्द**– भारत, लिव इन रिलेशनशिप, विवाह, सहवास, कानून

**प्रस्तावना –**

विश्व में विवाह एक सार्वत्रिक घटना है। भारतीय समाज में विवाह मानव संबंधो की सबसे जटिल घटना है। वह सामाजिक रिवाज और कानून द्वारा व्याख्यायित संस्कार में महिला एवं पुरुष का संयोजन माना जाता है, जो उनके साथ स्पष्ट जातिय, सामाजिक, आर्थिक और बालसंभाल की जिम्मेदारीयों को स्वीकार करते है। विवाह के प्रमाण सर्व प्रथम 2350 बी.सी. मे मेसोपोटेमीया मे मिले थे। उत्कांति के सिद्धांत में कई विद्वानों ने विविध ख्यालों को स्थापित

किए है। टायलर के मत अनुसार संस्कृति तीन तबक्काओं के द्वारा उत्क्रांत हुई है। जैसे कि Savagery - Barbarism – Civilization ,oa cspksQsu ds erkuqlkj Hetaerism - Matriarchy - Patriarchy द्वारा समाज के विकास को समझाते है (बेनरजीः 2022)[1] इस सिद्धांतो के जरीए प्राचीन समय में वहां कुदरती मानव रहते थे, जहां जातीय संयम को अनुमति थी। आदिकाल के लोगों में नर और मादा के बीच लंबे समय के बंधन का अस्तित्व नहीं था। वो कई पार्टनरों के साथ जुडते थे। औद्योगिक समाज से आए बदलावों से पुरुष और स्त्री के बीच अंतरक्रिया में बदलाव आया है। वर्तमान में विवाह युगलों के बिच बदलाव आए है और तलाक की संख्या में वृद्धि हुई है। इस स्थिति में माना जाता है कि तलाक से बहेतर लिव इन रिलेशनशिप है। हिन्दु धर्म के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, जीवन में यह चार आदर्शो को प्राप्त करने के लिए पुरुष एवं स्त्री को विवाह करना आवश्यक है। पाश्चात्य समाज में विवाह को प्रेम, गृह निर्माण और सहजीवन के साथ संबंधित अंगत बाबत में गिनती होती है। किन्तु भारतीय व्यक्ति विवाह को धार्मिक संस्कार एवं परिवार और समाज प्रत्येक की जिम्मेदारी निभाने के लिए करते है। इसलिए लिव इन रिलेशनशिप की विभावना जो हिन्दु धार्मिक मान्यता में विवाह का धार्मिक महत्व से विरुद्ध है। उसे भारत में रहते सामान्य लोगों की ओर से नाराजगी का सामना करना पडता है। औद्योगिकरण, पाश्चात्यकरण और वैश्विकरण के कारण आधुनिकता का तेजी से विस्तरण के कारण भारतीय समाज में परंपरागत नैतिकता में से आधुनिकता की सुविधा की ओर बदलाव देखने को मिलता है। संबंधो का यह नया स्वरूप वास्तव में आवश्यक एवं ज्यादा महत्वपूर्ण है ? या अपने परंपरागत मूल्यों की पवित्रता को बरबाद करने वाला पश्चिमीकरण का दूसरा पहलू है ? क्या लिव इन रिलेशनशिप बढ रहा है ? यह समझना आवश्यक है।

भारत में पुरूष और महिला के बिच संबंधो की पेटर्न इसके परंपरागत मूल्यों को बदलते है। अहमदाबाद, बोम्बे, बैंग्लोर, दिल्ही जैसे मेट्रो शहरों में जहाँ नोकरी की ज्यादा उपलब्धता के कारण अलग–अलग स्थलो से लोग प्रवासीत हुए है। इसलिए युवाओ में लिव इन रिलेशनशिप को बल मिला है। क्योकिं एक दुसरे के प्रति प्रतिबद्धता कम होती है, एक दुसरे के साथ रहना पसंद न करने पर सरलता से अलग हो सकते है, किन्तु गाँवो में लिव इन रिलेशनशिप आज भी मात–पिता के द्वारा अस्वीकृत है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संस्कृति के परंपरागत मूल्यो युवा पेढी में लुप्त होते जा रहा है। विवाह के ऐसे अस्थिर स्वरूपो की अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक असर होती है। जिसकी सामाजिक धारणा पर होती असर को सरलता से बदल नहीं सकते। प्रस्तुत शोध पत्र में विवाह की ऐसी अस्थिर स्वरुप की प्रकृति को समझने के लिये लिव इन रिलेशनशिप को समझने का प्रयास है।

**उदेश्य** – (1). लिव इन रिलेशनशीप के ख्याल को समझना

(2). 21 वी सदी के भारत में लिव इन रिलेशनशिप का अध्ययन

**शोध प्रविधि**– वर्णनात्मक पद्धतिसे सेकन्डरी डाटा के आधार पर कार्य किए है। अध्ययन मे एहेवाल, रिसर्च पेपर, किताबो का उपयोग किया है। अध्ययन के प्रथम विभाग में विषयवस्तु, दुसरे विभाग में शोध प्रविधि, तीसरे विभाग में वर्गीकरण एवं विश्लेषण और चोथे विभाग में निष्कर्ष निरुपण किया है।

## 1. लिव–इन रिलेशनशिप की विभावना

लिव–इन रिलेशनशिप जीवन जीनेकी एक रीत है, जहाँ अपरिणीत युगल विवाह जैसे संबंधो को स्थापित करने के लिए साथ में रहते है। यह एक व्यवस्था है, जहाँ दो व्यक्ति लंबे समय तक या स्नेह संबंध में हंमेशा के लिये, जातिय संबंधो के साथ, रहना पसंद करते है। लिव–इन रिलेशनशिप को सहवास, मैत्री करार, कोमन–लो मेरेज, डि फेक्टो रिलेशनशिप, आदत अनुरुप विवाह, डीम्ड मेरेज, आदि से पहचाना जाता है। केम्ब्रिज डिक्शनरी लिव–इन पार्टनर को एसे व्यक्तियों के रूप में व्याख्यायित करती है, जो एक घर में रहते है और विवाह किए बिना जातीय संबंध रखते है (सविता और खान, 2020)[2] विवाह जैसी औपचारिक संस्था में बिना प्रवेश किए साथ में रहने के लिए दो विजातीय व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक व्यवस्था का संबंध।

## 2. लिव इन रिलेशनशिप–एक आंतर्राष्ट्रीय स्थिति

विश्व में कई देशो में लिव इन रिलेशनशिप को कानूनन मान्यता मिली है। युनाइटेड स्टेट्स में सहवास करार का दस्तावेज प्रचलित है। जिस में लिव इन रिलेशनशिप के दरमियान पक्षकार की जिम्मेदारियाँ और उनकी स्पष्टता है। केलिफोर्निया की सर्वोच्च अदालत ने पेलिमोनी शब्द बनाया, जिसका अर्थ है कि एक महिला कोई पुरुष के साथ बिना विवाह किये निश्चित समय अवधि मे रहती हो, तब उसको रख रखाव मिलना चाहिए। चीन में लिव इन रिलेशनशिप में जुडने से पहले युगल एक करार पर दस्तखत करते है और इस संबंध से जन्मे हुए बालक को, विवाह के बाद जन्मे हुए बालक जितना ही वारिश एवं उत्तराधिकारी का अधिकार है। फ्रान्स में समान या विरोधी लिंग के युगल, रद्द कर सके ऐसे जीवंत–संबंध करार में प्रवेश कर सकते है। नागरिक एकता करार प्रसार किये है। युनाइटेड किंगडम में युगल कानूनन प्रतिबंधो का आनंद नहीं उठाते। फिर भी संतान विवाहित हो या न हो उनके उछेर करने की जिम्मेवारी मात–पिता की है। स्वीडन अकेला देश है, जिसने सहवासियों के मालिकी हकों को नियंत्रित करने के लिए सहवासियों का कानून 2003 निर्माण किया है। सहवासी एक दंपती है, जो एक साथ परिवार में लंबे समय तक जातीय संबंध से जुडे हुए, हमेशा के लिए रहते है। सहवासियो में विवाहित रजिस्टर्ड भागीदारों का समावेश नहीं होता। केनेडा में कॉमन लॉ मेरेज में जो युगल सतत दो साल तक साथ में रहते हो, उसे कानूनन विवाह की मान्यता मिलती है (श्रीयान्शी, 2022)[3]।

## 3. लिव इन रिलेशनशिप–भारतीय स्थिति

लिव इन रिलेशनशिप कोई नया विचार नहीं है। इतिहास में एडम और इव्स प्रथम अविवाहीत युगल है। उस समय में विवाह संस्था अस्तित्व में नहीं थी। इसलिये आदम और इव्स उनके संबंधो से बेखबर थे। सर्वाइवल ऑफ फीटेस्ट थियरी और परस्पर निर्भरता से दोनों को साथ में रहने की ओर ले गये। विवाह की कोई विधि, विवाह के प्रतीक जैसे मंगलसूत्र, वींटी, पंजीकरण आदि ने उनके संबंधो को चिन्हित नही किया (भूषण, 2017)[4]। मानव ने बाद में जब भावनात्मक जोडाण प्राप्त जूथो में रहना पसंद किया, तब समाज का विकास साथीदारी की ओर ले जाता है और इस इच्छा से विवाह संस्था का जन्म होता है। विवाह संस्था को सार्वत्रिक स्वीकृति होने से, सभी देश का अपना कौटुंबिक कानून होते है। भारत मे हिन्दु मेरेज एक्ट 1955, क्रिश्चियन मेरेज एक्ट 1872 आदी, जो कोई भी धर्म, जाति, ज्ञाति, संप्रदाय को ध्यान में लिए बिना ही दो व्यक्तियों को एक साथ बांधता है, जो प्रेम है (चोपरा, 2021)[5]। विवाह संस्था

महत्वपूर्ण है, जो समाज के व्यक्तिओं के समर्थन, साहचर्य एवं सुरक्षा प्रदान करता है और बालकों के उछेर में भी महत्व की भूमिका है। जिसमें विवाह युगलों पर नैतिक और कानूनी जिम्मेदारीयाँ पूर्ण करते है। किन्तु वर्तमान में तलाक की संख्या बढ रही है, जो विवाह संस्था को झटका देता है। विवाह एक अविभाज्य जोडाण था, किन्तु बदलाव ने कुटुंब रचना की नयी रीत लिव इन संबंधो ने भारतीय समाज में अपना स्थान बनाया है।

लिव इन रिलेशनशिप एक पुराना ख्याल है। वेद में आठ प्रकार के विवाह मे से एक गांधर्व विवाह का स्वरुप वर्तमान लिव इन रिलेशनशिप जैसा ही है। वैदिक समय नारी गौरव का युग था, जहां नारी पुरुषो की समकक्ष रहती थी। मध्ययुगीन भारत में जब कोई विवाहीत महिला बालक को जन्म नहीं दे सकती तब उप–पत्नी से संतान प्राप्त होती थी। दो अविवाहीत लोगों के बीच उपपत्नी सामान्य विवाह कानून जैसी थी। आधुनिक भारत में सामाजिक सुधारणा आंदोलन और ब्रिटिश भारतीय कानून के परिणाम उपपत्नी जैसी कुप्रथाओ को दूर करने में आयी थी। हाँ, आज भी मैत्री करार गुजरात मे प्रचलित है। मैत्री करार के मुताबीक महिला मित्रता के दोरान पुरुष पार्टनर पर कोई अधिकार का दावा नहीं कर सकती थी। इसमें महिला अपरणित थी और पुरूष परणित था जिसमें उनके पैतृक परिवार को पालने के जिम्मेदारी थी (भूषणः2017)[6]। फिर भी विवाह एक पवित्र प्रसंग है किन्तु यह संस्था संक्रमण में है। हिन्दु विवाह अब पवित्र होने के अलावा करार आधारित बन गया है। विवाह एक अविभाज्य बंधन था किन्तु तलाक के किस्से बढ रहे है। इसी के साथ कौटुंबिक रचना की अन्य रितों की तरह लिव इन संबंधो ने भारतीय समाज में अपना स्थान बनाया है।

**4. भारत में धर्म और नैतिकता –**

संस्कृति जीवन जीना सिखाती है। कानून और धर्म दोनों अलग–अलग खडे नहीं रह सकते, कानून के मुद्दों में उनका अमलीकरण और निर्णय में समान रूप से गिनती होती है। सभी धार्मिक समुदाय की अपनी–अपनी विचारधाराऐ, परंपराऐं और संस्कृति होती है। इसलिए लिव–इन रिलेशनशिप के बारे में सभी धर्म में विभिन्न मत रहे है।

**हिंदू धर्म**– हिंदू ग्रंथो में विवाह को पवित्र बंधन माना है। किन्तु लिव–इन संबंधो की अवगणना नहीं की है क्योंकि गांधर्व विवाह में स्त्री को जीवन साथी पसंद करने की परवानगी देते है, जिसमें युगल परस्पर सहमति से गांधर्व विवाह में प्रवेश कर सकते है। हिंदू धर्म में विवाह के पहले का जातीय जीवन एवं सहवास को निषेध नही मानते। जिस में एक शर्त है कि कुटुंब रचना के सभी स्वरूपों से धर्म के मार्ग को जुडे रहना है। धर्म के मार्ग में विचलन इसे अनैतिक बनायेंगे। वर्तमान में हिंदू विवाह इसके संस्कार स्वभाव को गवा दिया है और अब वह करार के आधारित बन गया है। एक समय में अविभाज्य विवाह अब परस्पर सहमति से तलाक के योग्य बन गया है। इस्लाम धर्म– कुरान लिव–इन रिलेशनशिप या विवाह पहले का जातीय जीवन को प्रतिबंधित करता है। फर्ज के बिना आनंद के लिए संबंधो का अस्तित्व नहीं है। निकाह एक सामाजिक करार है। युगल में से कोई एक अपना धर्म बदल दे तब यह करार समाप्त होता है। वहां उसे तलाक की मंजूरी है। स्त्री औक पुरूष दोनों में समानता है, दोनो मनुष्य है। ख्रिस्ती धर्म – भारतीय क्रिश्चियन मेरेज एक्ट, 1872 विवाह को संस्कार मानते है। ख्रिस्ती धर्म भी लिव–इन रिलेशनशिप को अनुमति नहीं देता है। विवाह, कुटुंब की रचना की मान्य रीत है, जो जातीय आनंद को नियंत्रित करता है। यह धर्म तलाक को अनुमति देता है किन्तु

भारतीय विवाह–विच्छेदन अधिनियम 1869 विवाह–विच्छेदन की प्रक्रिया को नियंत्रित करता है।(सरकारः 2015)[7]

भारत एक वैविध्य से भरा देश है, जहां विभिन्न धर्मो एवं संस्कृति के लोग सुमेल से रहते है। कई देशो में लिव–इन कानूनी है किन्तु विभिन्न देशो में आज भी स्वीकार्य नहीं है। जो समुदाय अपने रीती–रिवाज एवं परंपराओ पर निर्भर है वह अपनी मान्यताओं को बदलता नही, वह निष्क्रिय समाज जैसा है। यह बात मानवजाति की उत्क्रांति के सिद्धांत को नकारती है। कानून और नैतिकता, एक ही सिक्के के दो पहलू है। दोनों शून्यावकाश में काम नहीं कर सकते। लिव–इन ओर विवाह की पसंदगी मात्र व्यक्ति की अंगत धारणा है। भारत का संविधान इसके लिए स्वतंत्रता देता है, नागरिकों को दबाव नहीं डालता। स्पष्ट संबंध उनके लिए नैतिक है या नहीं यह तय करने के लिए युगल की इच्छा आवश्यक है। पंजाब और हरियाणा हाईकोर्ट ने सुनाया कि लिव–इन रिलेशनशीप की सामाजिक स्वीकृति दिन ब दिन बढती जा रही है। संरक्षण की खोज में विवाहीत या अविवाहीत युगलों के बीच कोइ भेद नहीं है।(उपाध्यायः 2021)[8]

### 3.5 लिव–इन रिलेशनशिप में वृद्धि के कारण

21 वीं सदी के भारत में लिव–इन रिलेशनशिप की पसंदगी संपूर्ण रूप से व्यक्ति की पसंदगी है। इस के अलावा वहां ज्यादा लालच है, जो व्यक्ति को जीवन जीने की यह रीत को पसंद करने के लिये प्रेरित करते है। एक संशोधन पोल में कहा है की 80 प्रतिशत भारतीय लोग लिव–इन रिलेशनशीप को पसंद करते है। (ब्युरोः 2018)[9]

- लिव–इन संबंध, युगल के साथ कोई सामाजिक दबाव नहीं डालता। युगल पारिवारिक दखल बिना उनका जीवन जी सकते है।
- युगल एक दुसरे को आर्थिक रूप से सहयोगी बनते है और समानता सुनिश्चित करके संतुलित जीवन जी सकते है।
- युगल का सहवास दोनों के बीच गहन बंधन के लिए प्रोत्साहित करता है क्योंकि लोगों को उनके समझोतें के अनुरूप जीवन की रीत पसंद करने का अवसर मिलता है।
- जीवनसाथी पसंद करने की सुगमता, जीवन की रीत और महिलाओं को अनुरूपता के साथ–साथ उनकी कारकिर्दी बनाने में लिव–इन महत्वपूर्ण है।
- स्त्री शिक्षा और उनकी व्यवसायिक स्वतंत्रता में वृद्धि, स्त्री की किंग–साइझ प्रसार करने के लिए निर्णायक भूमिका निभाने में लिव–इन महत्वपूर्ण है।
- विवाह का अर्थ है, परम्परागतता, बंधन, कुटुंब के लिए कारकिर्दी को छोडना, यह स्त्री सशक्तिकरण की वर्तमान आधुनिक एवं तकनीकी दुनिया में अनुकूल नहीं है।
- वर्तमान में विवाह–विच्छेदन के बढते किस्सों से युवा के मन क्षीण हो रहे है।
- भावनात्मक, बौद्धिक, शारीरिक और शाश्वत, यह सुसंगतता के चार प्रकार है। लिव–इन संबंध युगलो को औपचारिक संबंध अपनाने से पहले एक दुसरों के साथ उनकी सुसंगतता को जाँच करने के लिये सक्षम बनाते है।

डेमोग्राफिक ट्रान्झिशन थियरी के अनुसार, सुसंगत विवाह से, प्रेम विवाह से, विवाह की तय उम्र से बिना–वैवाहिक सहवास में बदलाव, लिव–इन संबंधो मे वृद्धि के लिए जिम्मेवार है।

संतान प्राप्ति को प्रधान्य देते परिवारों में से दुगुनि आय बिना के युगलों की कल्पना की ओर बदलाव आया है। गर्भनिरोधक की विभावना ने युगलों के जातीय आनंद और संतुष्टि को प्राथमिकता देने में सक्षम बनाये है। (भूषणः2017)[10]

युगल निःसंतान रहने के नये दोर में लिव–इन को पसंद करते है।

भारतीय संविधान की कलम 21 भारत के नागरिकों को गौरव के साथ जीवन जीने का अधिकार देता है। भारत मे कोई कानून पुख्ता रूप से लोगों को साथ में रहने पर प्रतिबंधीत नही है। समाज लिव इन संबंधो को अनैतिक मानते है, किन्तु वह गुनाहा नहीं है। लिव इन विकसित हो रहा है और न्यायतंत्र द्वारा उसे समर्थन मिल रहा है।

**निष्कर्ष**

21 वीं सदी के भारत में लिव इन रिलेशनशीप, नया ख्याल है। भारत के विकसित नगर और विश्व के विकसित देशों में लिव इन ट्रेन्ड बढ रहा है। भारत में लिव इन अनैतिक माना जाता है, लेकिन यह गैरकानूनी नहीं है। हाल ही में भारत के उत्तराखंड ने न्ब्ब बिल में लिव इन में रहने वालों को रजिस्ट्रेशन करवाना अनिवार्य है और यह जानकारी उनके माता–पिता को देना आवश्यक है। भारत में मेट्रों नगरों में लिव इन रिलेशनशीप का प्रमाण ज्यादा देखने को मिलेगा। जिसके द्वारा पुख्ता युगलों को कोइ भी जिम्मेवारी या प्रतिबद्धता लिए बिना भी उनके भागीदारो को सही पसंदगी करने की स्वंतत्रता मिलती है। किन्तु विवाह की विभावना आज भी समाज में अपना स्थान बनाये है क्योंकि पुख्ता युगल के लिए सभी इमोशन, जिम्मेवारी और एक दूसरो के प्रति आदर के साथ रहना यह एक सार्वत्रिक घटना है। आज भी भारतीय संस्कृति में लिव इन रिलेशनशिप कुछ संजोगो में ठीक हो सकते है किन्तु सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए विवाह संस्था का महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

❐


*सन्दर्भ –*

1. *Benaraji Kasturi (2022), Live in Relationship and marriage pattern in India – A Study, Vol 27, Issue 4, Series 5, Pages 59-62*
2. *Savita and Khan A.G (2020) Studies on Sociological Impact of Live-In Relationship: A Critical Review. IOSR Journal Of Humanities And Social Sciences 25(2): 36-37.*
3. *Shriyanshi (2022), Brillopedia, Blog, Amity University, Lucknow.*
4. *Bhushan S (2017) Live-In Relationship And Its Impact In India. Shodhganga.*
5. *Chopra P (2021) Emerging Trends of Live-In Relationships under Family Law. Jus Corpus Law Journal 1(3): 22.*
6. *Bhushan S (2017) Live-In Relationship And Its Impact In India. Shodhganga.*
7. *Sarkar A (2015) Law, Religion and Conjugal Ties: A Study of 'Live-in-Relationships' in Contemporary Indian Society. IJHRLR 1(1): 27-28.*
8. *Upadhyay S (2021) Social Acceptance For Live- In- Relationships On Rise, No Difference Between Married & Live In Coupe Seeking Protection: Punjab & Haryana HC. LIVE LAW, 20 May.*
9. *Bureau NH (2018) 80 percent Indian youths support live in relationships: Study reveals. Lifestyle News, 24 May.*
10. *Bhushan S (2017) Live-In Relationship And Its Impact In India. Shodhganga.*

**पूर्वदेवा**– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 23–29*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# बाबा साहब डॉ.अम्बेडकर का संविधान निर्माण करने में योगदान

**मयंक प्रताप**
सहायक आचार्य, विधि विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
E-mail- mayankprataplaw@gmail.com

## सारांश

*अम्बेडकर का मत था कि एक न्यायनिष्ठ सामाजिक प्रणाली ही लोकतंत्र के आदर्शों को प्रतिबिम्बित कर सकती है। इस उद्देश्य से उन्होंने भारत में सामाजिक संस्थाओं और राजनीतिक संविधान के मध्य तारतम्य स्थापित किया जाना आवश्यक माना। उन्होंने कहा कि समानता स्वतंत्रता और भ्रातृत्व के मूल्यों पर आधारित एक ऐसी उपयुक्त सामाजिक प्रणाली में ही लोकतंत्र का आदर्श चरितार्थ हो सकता है जिसमें सामाजिक हितों को प्रोत्साहित व संरक्षण देने के लिए समाज की उपलब्ध समस्त क्षमताओं और विवेक का बिना भेदभाव के उपयोग किया जा सके। अम्बेडकर ने भारत में विद्यमान सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक विभिन्नताओं में समन्वय स्थापित करके एक एकताबद्ध सामाजिक प्रणाली की स्थापना के लिए धार्मिक विश्वासों सामाजिक परंपराओं और रीति–रिवाजों आदि में से कट्टरता संकीर्णता और रूढ़िवादिता को समाप्त करने की आवश्यकता अनुभव की। भारत के संविधान निर्माताओं ने हमारे देश की ऐतिहासिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए संविधान तैयार किया है. उनका लक्ष्य मात्र लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना था। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए उन्होंने संविधान की प्रस्तावना में संविधान के आदर्शों को भी समझाया है. हमारे भारतीय संविधान की अपनी खुद की विशिष्टताएं हैं जो इसे दुनिया के अन्य संविधानों से अलग करती है।*

*डॉ.अंबेडकर का संविधान निर्माण करने में अतुलनीय योगदान रहा। अस्वस्थ होने के बाद भी इतने कम समय (2 वर्ष, 11 माह, 18 दिन) में संविधान बनाकर उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। वह उनका विधि व कानूनी ज्ञान ही था कि कांग्रेस व गांधी के कटु आलोचक होने के बाद भी उन्हें कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार ने देश का पहले कानून मंत्री के रूप में सेवा करने के लिए आमंत्रित किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। 29 अगस्त, 1947 को अंबेडकर को स्वतंत्र भारत के नए संविधान*

*की रचना के लिए बनी संविधान मसौदा समिति के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया। अंबेडकर ने मसौदा तैयार करने के इस काम में अपने सहयोगियों और समकालीन प्रेक्षकों की प्रशंसा अर्जित की।*

**प्रस्तावना**

14 अप्रैल सन् 1891 में मध्यप्रदेश के महू में जन्मे डॉ. भीमराव अम्बेडकर को बाबा साहब भी कहा जाता है। उन्होंने अपना पूरा जीवन भारतीय समाज की जातीय व्यवस्था और हिंदू धर्म की कुरूतियों के खिलाफ संघर्ष करते हुए बीता दिया। भारतीय समाज में व्याप्त असमानता और जातिवाद के चरम दौर में डॉ. भीमराव अंबेडकर का अवतरण किसी क्रांति और अभ्युदय से कमतर नहीं आंका जा सकता। अंबेडकर के पिता सेना में थे। उस समय सैनिकों के बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा की विशेष व्यवस्था हुआ करती थी। इस कारण अंबेडकर की स्कूली पढ़ाई सामान्य तरीके से संभव हो पायी। अन्यथा तो दलित वर्ग के बच्चों के लिए स्कूल में पानी के नल को हाथ लगाना भी वर्जित माना जाता था। उनका जीवन खास तौर पर दलितों और पिछड़ों को उनके अधिकार दिलाने के लिए संघर्षशील रहा। भीमराव अम्बेडकर मूलतः एक समाज सुधारक अथवा समाजिक चिंतक थे। वह हिन्दु समाज द्वारा स्थापित समाजिक व्यवस्था से काफी असंतुष्ट थे और उन में सुधार की मांग करते थे ताकि सर्व धर्म सम्भाव पर आधारित समाज की स्थापना की जा सके। अम्बेडकर ने अस्पृश्यता के उन्मूलन और अस्पृश्यों की भौतिक प्रगति के लिए अथक प्रयास किये। वे 1924 से जीवन पर्यन्त अस्पृश्यों का आंदोलन चलाते रहे। उनका दृढ विश्वास था कि अस्पृश्यता के उन्मूलन के बिना देश की प्रगति नहीं हो सकती। अम्बेडकर का मानना था कि अस्पृश्यता का उन्मूलन जाति–व्यवस्था की समाप्ति के साथ जुड़ा हुआ है और जाति व्यवस्था धार्मिक अवधारणा से संबद्ध है। समय की करवटों के साथ अंबेडकर ने देश और विदेश में पढ़ाई पूर्ण कर कानून की डिग्री हासिल कर ली। अपने एक देशस्त ब्राह्मण शिक्षक महादेव अंबेडकर के कहने पर अंबेडकर ने अपने नाम से सकपाल हटाकर अंबेडकर जोड़ लिया, जो उनके गांव के नाम 'अंबावडे' पर आधारित था। रामजी सकपाल ने 1898 में पुनर्विवाह कर लिया और परिवार के साथ मुंबई चले आये। अंबेडकर के राजनीतिक जीवन की शुरूआत 1935 से मानी जाती है।

**समाजिक आंदोलन**

डॉ बी. आर. अंबेडकर ने इतनी असमानताओं का सामना करने के बाद सामाजिक सुधार का मोर्चा उठाया। अंबेडकर जी ने ऑल इंडिया क्लासेज एसोसिएशन का संगठन किया। सामाजिक सुधार को लेकर वह बहुत प्रयत्नशील थे। ब्राह्मणों द्वारा छुआछूत की प्रथा को मानना, मंदिरों में प्रवेश ना करने देना, दलितों से भेदभाव, शिक्षकों द्वारा भेदभाव आदि सामाजिक सुधार करने का प्रयत्न किया। परंतु विदेशी शासन काल होने कारण यह ज्यादा सफल नहीं हो पाया। विदेशी शासकों को यह डर था कि यदि यह लोग एक हो जाएंगे तो परंपरावादी और रूढ़िवादी वर्ग उनका विरोधी हो जाएगा। डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारत के प्रथम कानून मंत्री भी थे। उन्हें दलितों और पिछड़े वर्ग के लोगों के मसीहा के रूप में जाना जाता है। उन्होंने 1956 में समाजिक, राजनीतिक आंदोलन और दलित बौद्ध आंदोलन चलाया। जिसमें देश के लाखों दलित बहुजनों ने हिस्सा लिया। उन्होंने मूर्ति पूजा का हमेशा विरोध किया। उन्होंने पूजा पाठ को हिंदू समाज

का दोष बताया। उन्होंने कहा कि हिंदू धर्म, उसका पालन, पूजा पाठ लोगों को कमजोर बनाता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने महिलाओं को उनके अधिकार दिलाने के लिए पूरी हिंदू व्यवस्था और समाज से लंबी लड़ाई लड़ी। उन्होंने हमेशा ही महिलाओं को समानता, शिक्षा, सम्मान, अधिकार और अपनी समर्थता को समझने पर जोर दिया। उन्होंने महिलाओं को मनुवादी सोच से निकाला। उनकी समाज में बराबरी के लिए कानून बनाया। उन्हें हर क्षेत्र में जगह मिल सके ऐसी व्यवस्था बनाई।

अम्बेडकर के विचारों में उदारवाद एवं समाजवाद दोनों के दर्शन होते हैं। यही कारण है कि अम्बेडकर एक ऐसा राज्य चाहते हैं जो व्यक्ति के स्वतंत्रता एवं गरिमा का सम्मान करते हुए लोककल्याण के मार्ग को प्रशस्त करे। समाजवादी विचारों से व्यक्ति को साध्य मानते हैं, इसलिए वे व्यक्ति की स्वतंत्रता को संकट में डालकर लोककल्याण नही चाहते हैं। वे कुल मिलाकर उदारवादियों की तरह राज्य के सकारात्मक भूमिका को स्वीकारते हैं किंतु व्यक्ति स्वातंत्रेय का क्षरण न हो। लोक कल्याणकारी राज्य में ही सर्वांगीण विकास एवं समस्त नागरिकों की प्रगति संभव है।

अम्बेडकर चाहते थे कि राज्य का संचालन नियंत्रण एवं संतुलन सिद्धान्त पर आधारित संसदीय प्रणाली के माध्यम से हो। ताकि शासन के तीन अंग संयमित एवं मर्यादित रहें। वे अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर बहुमत के अतिक्रमण होने की संभावना के प्रति सचेत करते थे। अम्बेडकर मिल की भाँति स्वतंत्रता के परम उपासक थे। अम्बेडकर के विचारों में लोकप्रिय सरकार का अर्थ केवल जनता के लिए सरकार से नहीं है, बल्कि जनता की सरकार से भी है।[1] इसलिए वे एक उत्तरदायी शासन व्यवस्था की स्थापना हेतु वयस्क मताधिकार की वकालत करते थे। वे मताधिकार हेतु आयु के अतिरिक्त किसी अन्य प्रतिबंध के हिमायती न थे।

## संविधान निर्माण करने में योगदान

संविधान यह एक मात्र वकीलों का दस्तावेज नहीं। यह जीवन का एक माध्यम है। भारतीय संविधान बाबा साहेब की अमूल्य देन हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का स्थान आधुनिक सामाजिक विचारकों में महत्वपूर्ण हैं। सन् 1945 में जब द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ, उसके बाद भारत को सत्ता सौंपने का मसला खड़ा हो गया। 24 मार्च, 1946 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉर्ड एटली ने ब्रिटिश मंत्रीमंडल के तीन सदस्य– लॉर्ड पेथिक लॉरेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स और ए.बी. एलेग्जेंडर को भारत में राजनीतिक गतिरोध को रोकने व भारत को सत्ता सौंपने के उद्देश्य से भारत भेजा। इसे "केबीनेट मिशन" कहा गया। मिशन ने भारत के तथाकथित प्रमुख नेताओं से मुलाकात की, उसके बाद 5 अप्रेल, 1946 को उन्होंने अंबेडकर और मास्टर तारासिंह से भी मुलाकात की, जिसमें अंबेडकर ने सदियों से शोषित व वंचित वर्ग के लिए पृथक चुनाव, पृथक आवास और नये संविधान में उनके सुरक्षा संबंधित मांगे प्रस्तुत की, जिन पर पूर्णतः ध्यान नहीं दिया गया। केबीनेट मिशन ने जब संविधान सभा व अंतःकालीन सरकार की रूपरेखा संबंधी योजना की घोषणा कर दी। जिसमें अंबेडकर के द्वारा रखी गई कथित दलितों के लिए मांगों की उपेक्षा की गई। फलतः उन्होंने संगठित होकर आंदोलन कर दिया। जिसके चलते सवर्ण हिन्दुओं और दलितों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई और सवर्णों ने अंबेडकर के "भारत भूषण" प्रेस को आग लगा दी जिसका संचालन अंबेडकर के पुत्र "यशवंतराव अंबेडकर" करते थे।

उसके बाद केबीनेट मिशन ने हिन्दू–मुस्लिम समान प्रतिनिधित्व के आधार पर अंतःकालीन सरकार की रूपरेखा संबंधी योजना की घोषणा की, जिसमें 14 सदस्य थे, 5 कांग्रेसी सवर्ण हिन्दू, 1 कांग्रेसी दलित, 5 मुस्लिम लीगी और पारसी, सिख तथा ईसाई का एक–एक प्रतिनिधि। लेकिन हिन्दू–मुस्लिम मतभेदों के चलते इस योजना को स्वीकार नहीं किया गया। उधर डॉ. अंबेडकर ने दलित वर्गों की उपेक्षा किए जाने पर अहिंसात्मक संघर्ष करने की घोषणा कर दी।

डॉ. अंबेडकर ने पूना से अपना आंदोलन प्रारम्भ कर दिया और बताया कि दलितों के हितों की केबीनेट मिशन द्वारा पूर्णतः उपेक्षा की गई है। बम्बई में 7 जुलाई, 1946 को विरोध प्रदर्शन किया गया और भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय के समक्ष भी नारेबाजी की गई। उसके बाद प्रदर्शनकारियों का जुलूस पास के एक मैदान में सभा में बदल गया। जहाँ दादा साहेब गायकवाड़, बापू साहेब, राजभोज आदि नेताओं ने अपने भाषणों में मिशन योजना, कांग्रेस नीति तथा सरकार द्वारा दलितों की उपेक्षा की कड़ी आलोचना की।

बंगाल से "जोगेन्द्र नाथ मंडल" ने उन्हें बंगाल से चुनाव लड़ने के लिए आमंत्रित किया। अंबेडकर ने बंगाल विधानसभा परिषद से अपना नामज़दगी पत्र भरा। अनुसूचित जातियों के लिए अलग से कोई स्थान न होने के कारण हिन्दुओं के साथ जोड़ दिया गया। 27 हिन्दू और 33 मुस्लिम प्रतिनिधियों का यहाँ चुनाव होना था।

डॉ. अंबेडकर के लिए यह चुनाव जीवन–मरण का सवाल बन चुका था। बंगाल में उनके साथ बुद्धसिंह, करपालसिंह, बच्चूसिंह और जोगेन्द्रनाथ मंडल ने जमकर मेहनत की। यहाँ भी कांग्रेस ने उन्हें हराने के लिए पूरी दमखम लगा दी, पर 20 जुलाई, 1946 को जब परिणाम घोषित हुआ तो शहर नाच उठा। पंजाब से आए उनके शुभचिंतकों का भांगड़ा शुरु हो गया। ढोल पर ताबड़तोड़ डंडे बरस रहे थे और चारों तरफ उनकी जय जयकार के नारे गूँज रहे थे क्योंकि अंबेडकर एंग्लो इंडियन सदस्य, निर्दलीय दलित सदस्य और सम्भवतः मुस्लिम लीग के सदस्यों की मदद से चुनाव जीत गए थे।

अंबेडकर का संविधान निर्माण करने में अतुलनीय योगदान रहा। अस्वस्थ होने के बाद भी इतने कम समय (2 वर्ष, 11 माह, 18 दिन) में संविधान बनाकर उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। वह उनका विधि व कानूनी ज्ञान ही था कि कांग्रेस व गांधी के कटु आलोचक होने के बाद भी उन्हें कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार ने देश का पहले कानून मंत्री के रूप में सेवा करने के लिए आमंत्रित किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। 29 अगस्त, 1947 को अंबेडकर को स्वतंत्र भारत के नए संविधान की रचना के लिए बनी संविधान मसौदा समिति के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया। अंबेडकर ने मसौदा तैयार करने के इस काम में अपने सहयोगियों और समकालीन प्रेक्षकों की प्रशंसा अर्जित की। इस कार्य में अंबेडकर का शुरूआती बौद्ध संघ रीतियों और अन्य बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन बहुत काम आया। संघ रीति में मतपत्र द्वारा मतदान, बहस के नियम, पूर्ववर्तिता और कार्यसूची के प्रयोग, समितियां और काम करने के लिए प्रस्ताव लाना शामिल है। संघ रीतियां स्वयं प्राचीन गणराज्यों जैसे शाक्य और लिच्छवि की शासन प्रणाली के निर्देश (मॉडल) पर आधारित थीं। अंबेडकर ने संविधान को आकार देने के

लिए पश्चिमी मॉडल इस्तेमाल किया है, इसमें ब्रिटिश, आयरलैंड, अमेरिका, कनाडा और फ्रांस सहित विभिन्न देशों के संविधान प्रावधान लिए गये पर उसकी भावना भारतीय है।[2]

संविधान सभा में पहुँच जाने के बाद अंबेडकर ने राष्ट्रीय घोषणा पत्र आदि तैयार करने में कांग्रसियों के साथ मिलकर काम किया और साथ ही उन्होंने अपने काम से कई सदस्यों को प्रभावित भी किया। लेकिन कांग्रेस ने फिर भी एक कुटिल चाल चल दी और जैसुर–खुलना जहाँ से अंबेडकर चुनाव जीते थे उसे पूर्वी बंगाल को दे दिया जिसके कारण अंबेडकर पाकिस्तान संविधान सभा के सदस्य बन गए। विभाजन के लिए तय नियमानुसार बंगाल प्रांत के जिस निर्वाचन क्षेत्र की आबादी 50 प्रतिशत से ज्यादा हो पाकिस्तान/पूर्वी बंगाल को दिया जाना चाहिए था जबकि जैसुर–खुलना में मुस्लिमों की आबादी 48 प्रतिशत ही थी। जिसके कारण अंबेडकर को वहाँ से इस्तीफा देना पड़ा। डॉ. अंबेडकर ने इस विषय से संबंधित ब्रिटिश प्रधानमंत्री से मुलाकात की और उन्होंने कांग्रेस के द्वारा चली गई कुत्सित चाल से अवगत कराया। ब्रिटिश सरकार ने इसे गम्भीरता से लिया क्योंकि वो भी समझ गए थे कि अंबेडकर को रोकना मुश्किल है वो पहले से केबीनेट मिशन की योजना से असंतुष्ट थे और इस बार तो उनके साथ सीधा–सीधा अन्याय किया जा रहा है।[3] जिसके चलते ब्रिटिश सरकार ने नेहरू को सूचित किया कि जैसुर–खुलना को भारत में रहने दिया जाए अथवा डॉ. अंबेडकर को किसी अन्य स्थान से संविधान सभा में भेजने की व्यवस्था की जाए।

इस तरह तमाम दबाबों के चलते कांग्रेस को उन्हें संविधान सभा में उन्हें बम्बई से चुनकर भेजना पड़ा। इसके अलावा 1946 के कार्यकाल में संविधान सभा के कुछ सदस्य जो उनके ज्ञान से परिचित हो गए थे वो उनके साथ काम करने के इच्छुक थे। डॉ. अंबेडकर की पुस्तक "स्टेट्स एंड मायनारिटीज" जिसकी रचना उन्होंने संयुक्त गणराज्य के संविधान के रूप में की थी। इसकी प्रतियां भी संविधान सभा में सभी के पास पहुँच चुकी थी जिसे पढ़कर सभी उनके उत्कृष्ट ज्ञान के कायल हो गए थे। दूसरी तरफ नेहरू किसी संविधान विशेषज्ञ की तलाश में थे ऐसी स्थिति में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने 30 जून, 1947 को बम्बई के प्रधानमंत्री बी.जी. खेर को पत्र लिखकर संविधान सभा में डॉ. अंबेडकर का चुनाव सुनिश्चित करने का निर्देश दिया।

इस पत्र में उन्होंने लिखा –

"अन्य बातों के अलावा हमने यह (भी) अनुभव किया है कि संविधान सभा और विभिन्न समितियों जिनमें उन्हें नियुक्त किया गया, दोनों जगह डॉ. अंबेडकर के काम का स्तर इतने उच्च कोटि का रहा है कि हम उनकी सेवाओं से स्वयं को वंचित नहीं कर सकते। जैसा कि आपको पता है वह बंगाल से चुने गए थे और उस प्रांत के विभाजन के कारण अब वह संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे। मेरी प्रबल इच्छा है कि उन्हें संविधान सभा के लिए निर्वासित कराएं ताकि 14 जुलाई, 1947 से शुरु होने वाले अधिवेशन में निर्वाचित होकर संविधान संरचना में योगदान दे सकें।"[4]

बाद में 29 अगस्त, 1947 को जब संविधान सभा ने संविधान–प्रारूप समिति का गठन किया जिसमें डॉ. अंबेडकर को प्रारूप समीति का अध्यक्ष बनाया गया। इस प्रारूप समिति में सात सदस्य थे, एन. गोपाला स्वामी आयंगर, सर अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर, के.एम. मुंशी, सर मुहम्मद शादुल्ला, एन. माधव मेनन एवं डी.पी. खेतान।

डॉ. अंबेडकर ने संविधान सभा में प्रारूप समिति के अध्यक्ष होते हुए अथाह मेहनत की जबकि उनकी हालत लगातार बिगड़ती जा रही थी, उनका स्वास्थ्य खराब हो रहा था, उनके पैरों में भी दर्द रहता था और वह मधुमेह से पीड़ित भी थे। अंबेडकर को पाकिस्तान में जो दलित थे उनकी भी लगातार चिंता थी और उन्होंने नेहरू से भी अपील की कि उन्हें वापस भारत बुलाने का कोई ठोस कदम उठाया जाए पर नेहरू ने उनकी इस अपील को अनसुना कर दिया और इस पर कोई कदम नहीं उठाया गया।

डॉ. अंबेडकर ने संविधान रचना में कितना परिश्रम किया इस बात का अंदाजा 4 नवम्बर, 1948 को दिए गए "टी.टी. कृष्णामाचारी" के संविधान सभा में वक्तव्य से लगाया जा सकता है। उन्होंने कहा– "मैं उस परिश्रम और उत्साह को जानता हूँ, जिससे उन्होंने संविधान सभा का प्रारूप को तैयार किया। संविधान सभा में सात सदस्य मनोनीत थे। उनमें से एक ने संविधान सभा से त्याग पत्र दे दिया, जिसकी पूर्ति कर दी गई, एक सदस्य का देहांत हो गया। उसका स्थान नहीं भरा गया। एक अमेरिका चला गया और स्थान खाली बना रहा। एक अन्य सदस्य राजकीय कार्यों में व्यस्त रहा और उनका स्थान भी खाली रहा। एक या दो सदस्य दिल्ली से बाहर रहे और शायद स्वास्थ्य के कारण उपस्थित नहीं हो सके। हुआ यह कि संविधान बनाने का सारा भार डॉ. अंबेडकर के कंधों पर आ पड़ा। इसमें मुझे संदेह नहीं कि जिस ढंग से उन्होंने संविधान तैयार किया, हम उसके लिए कृतज्ञ हैं। यह निस्संदेह प्रशंसनीय कार्य है।"

26 नवम्बर, 1949 को आखिरकार डॉ. अंबेडकर ने भारतीय संविधान को 2 वर्ष, 11 माह और 18 दिन में देश को समर्पित कर दिया। इसलिए इस दिन को "संविधान दिवस" के रूप में मनाया जाता है। गणतंत्र भारत में संविधान को 26 जनवरी, 1950 को अमल में लाया गया। इस अवसर पर "डॉ. राजेन्द्र प्रसाद" ने कहा था –

"सभापति के आसन पर बैठकर, मैं प्रतिदिन की कार्यवाही को ध्यानपूर्वक देखता रहा और इसलिए, प्रारूप समिति के सदस्यों, विशेषकर डॉ. अंबेडकर ने जिस निष्ठा और उत्साह से अपना कार्य पूरा किया, इसकी कल्पना औरों की अपेक्षा मुझे अधिक है। डॉ. अंबेडकर को प्रारूप समिति में शामिल करने और उसका अध्यक्ष नियुक्त करने से बढ़कर कोई और अच्छा हम दूसरा काम न कर सके। उन्होंने अपने चुनाव को न केवल न्यायोचित ठहराया है, बल्कि उस काम में कांति का योगदान दिया है जिसे उन्होंने सम्पन्न किया है।"

**मूल्यांकन**

निश्चित तौर पर बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर ने संविधान बनाने में बहुत परिश्रम किया था। हालांकि वो इससे भी बहुत अधिक चाहते थे। तब जाकर उन्होंने हमें एक ऐसा संविधान दिया जो जाति, लिंग, नस्ल, धर्म और जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव को निषेध करता है बल्कि सदियों से शोषित–वंचित वर्गों को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक रूप से मुख्यधारा में लाने का अवसर प्रदान करता है। अंबेडकर आजादी के पक्षधर जरूर थे, लेकिन वे देश के बंटवारे के खिलाफ थे। अपनी पुस्तक में अंबेडकर ने बंटवारे की कड़ी भर्त्सना और विरोध किया है। धर्म के प्रति अंबेडकर आस्तिक प्रवृत्ति के थे। जहां मार्क्सवाद विचारधारा धर्म को अफीम मानकर इसका कट्टर विरोध कर रही थी, वहीं इससे अप्रभावित अंबेडकर की नजरों

में धर्म को लेकर अलग ही सोच थी। उनके विचारों में धर्म वह जो सर्वजनों को समान अधिकार प्रदान करे। कुरीतियों को मिटाकर एक साफ–सुथरे समाज का निर्माण करे। यह धर्म संविधान ही था। जिसके अंबेडकर स्वयं कर्ता–धर्ता थे। आजीवन गरीबों और दलितों के हक के लिए लड़ने वाले, फटे कोट और मैली टाई में भी उच्च सपनों को बुनने वाले, सबके आत्मीय और अजीज अंबेडकर लंबे समय तक बीमारी से जूझते हुए अलविदा कह गये। इस प्रकार अम्बेडकर ने आधुनिक भारतीयों के मध्य विधि का शासन, बंधुता, समानता और स्वतंत्रता को समाविष्ट किया। उनके कार्य एवं सिद्धांत एक यथार्थ और समतामूलक समाज के संदर्भ में आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

अंबेडकर के जाने के लगभग सात दशक बाद भी हम अंबेडकर के आदर्शों का भारत बनाने में पूर्णता सफल नहीं हो पाए हैं। संवैधानिक अधिकारों के बलबूते पर आज दलित और पिछड़ों को समाज की मुख्यधारा में आने का अवसर तो जरूर मिला है, लेकिन उनके प्रति समाज के लोगों की सदियों से ग्रस्त मानसिकता अब भी नहीं बदल पायी है।

❐

***सन्दर्भ*** –


1. *डॉ.भीमराव अम्बेडकर, संवैधानिक सुधार एवं आर्थिक समस्याएँ*
2. *देवेन्द्रराज सुथार, डॉ. भीमराव अंबेडकर का संविधान निर्माण करने में अतुलनीय योगदान 2022*
3. *सत्येंद्र सिंह, भारतीय संविधान और बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर, 2017*
4. *डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने 30 जून, 1947*

**पूर्वदेवा**– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 30–41*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका

**डॉ गायत्री**
सह–आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर (राज.)
E-mail: <drgayatrinirwan@gmail.com>

**सारांश**

*इस शोध पत्र में, भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका का राजनीतिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया हैं। अक्सर मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ बुलाया जाता है, इसे जनहित का संरक्षक और लोगों के बीच के सेतु के रूप में देखा जाता है, मीडिया एक स्वस्थ लोकतंत्र को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मेरे इस शोध पत्र में मैंने शुरुआती दौर में मीडिया को परिभाषित किया है। फिर मीडिया के प्रकार बताए है। प्रिंट मीडिया, प्रसारण मीडिया तथा इंटरनेट मीडिया के इन माध्यमों की चर्चा की गई। इसके पश्चात् लोकतंत्र एवं मीडिया एक स्वस्थ लोकतंत्र को बनाए रखने में मीडिया की भूमिका पर चर्चा की है। जिसमें 18 वीं शताब्दी के बाद अमेरिका फ्रांस आदि देशों में लोकतंत्र में मीडिया कैसे चौथे स्तंभ के रूप में उभरा उसकी चर्चा की है। भारत का संदर्भ भी बताया है ।*

*प्रिंट मीडिया से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में परिवर्तन सकारात्मक है या नकारात्मक है इसके बारे में बताया है। भारत में मीडिया को मजबूत करने में सरकार की क्या क्या भूमिका रही है। संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए )इसके तहत बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बारे में चर्चा की है लोकतंत्र में मीडिया की तीन जिम्मेदारियां हैं पहला, सत्तारूढ़ लोगों पर कड़ी नज़र रखना दूसरा ,समाज को पूरे दिन की महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर विश्वसनीय जानकारी प्रदान करना तीसरा, केवल निष्कर्ष तथ्यों को उजागर करना मीडिया की बदली भूमिका में बढ़ते हुए व्यवसायीकरण के कारण जो कड़ी प्रतिस्पर्धा मीडिया में देखने को मिल रही है उसका प्रभाव किस प्रकार से मीडिया पर पड़ता है। साथ ही मीडिया के विनियमन पर भी बात की गई है। लोकतंत्र में संसद और मीडिया एक दूसरे के सहयोगी हैं दोनों ही संस्थान जन भावनाओं को व्यक्त करते हैं। वर्तमान में मीडिया को प्रभावित करने वाले मुद्दों के बारे में भी बताया है और अंत में निष्कर्ष में की मीडिया को संवैधानिक नियमों और सीमाओं*

*में बांधने की आवश्यकता हैस ताकि मीडिया अपनी स्वतंत्रता का अनुचित उपयोग ना कर सके ।*

**मुख्य शब्द** : लोकतंत्र, मीडिया, मीडिया विनियमन, प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, पेड न्यूज़

**प्रस्तावना**

मीडिया शब्द का उद्भव मीडियम (Medium) शब्द से हुआ है इसका अर्थ है माध्यम से मीडिया का उपयोग एक विशाल जनसमूह तक पहुंचने के लिए किया जाता है, यह वैयक्तिक सम्प्रेषण का माध्यम है जो कि लिखित विजुयल (दृष्टि) या सुनने अथवा इन सबके मिले–जुले स्वरूप हो सकते हैं। इसके तहत दर्शकों को सीधे तौर पर सूचना, संदेश या विचार भेजे जाते हैं । सरल शब्दों में "मीडिया" शब्द का अर्थ है विशाल जन समुदाय के साथ सम्प्रेषण जो कि लिखित रूप में शब्दों द्वारा या देखने के माध्यम से किया जाता है। यह वह समूह है जो लोगों के साथ सूचना और समाचार साझा करते हैं। टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र, मैगजीन, वीडियो, ऑडियो चलचित्र आदि मीडिया के उदाहरण हैं।

मीडिया की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि यह सूचना प्रसारित करने का व्यवस्थित साधन है। इसके माध्यम से एक बड़े जनसमूह के साथ समय–समय पर शीघ्र कुशलता से पहुंचा जा सकता है स मीडिया की विशेषता है –

- यह लाखों लोगों तक बहुत कम समय में पहुंच जाता है।
- अशिक्षित और नेत्रहीन लोगों के लिए ऑडियो मीडिया लाभदायक है।
- बहुभाषी अशिक्षित समाज में विजुअल मीडिया बहुत प्रभावकारी है।
- यह कम लागत और प्रयोक्ता के लिए मैत्रीपूर्ण है ।
- मीडिया सम्प्रेषण का एकतरफा साधन है आजकल संपादक को पत्र, जनमत सर्वेक्षण तथा स्वतंत्र संपादकीय प्रचलन में है जो मीडिया को परस्पर संवादात्मक बनाता है फिर भी यह सम्मान अभी सीमित है।[1]

**मीडिया के प्रकार**

मीडिया का एक प्रमुख कार्य है जनता के विभिन्न मुद्दों को लेकर विधि शासन (Rule of low) के प्रति जागृति उत्पन्न कराना तथा लोगों को सूचनाएं उपलब्ध कराना, चाहे वह कार्यकारी या प्रशासनिक कार्यवाही लेख आदि हो। अधिकांश लोगों को सरकार, समाज, समसामयिकी की जानकारी मीडिया से मिलती है। मीडिया मुख्यतः तीन प्रकार का होता है प्रिंट मीडिया, प्रसारण मीडिया, और इंटरनेट।

1. **प्रिंट मीडिया** (Print Medi):

यह मीडिया का सबसे पुरातन स्वरूप है। समाचार पत्र, मैगजीन, जनरल, ब्रोशर, न्यूजलेटर, पुस्तक, पत्रक और पर्चो को सामूहिक रूप से प्रिंट मीडिया कहा जाता है। हम में से अधिकांश लोग अपना दिन समाचार पत्र के साथ प्रारंभ करते हैं। छपाई (प्रिंट ) मीडिया बहुत

महत्वपूर्ण है। प्रिंट मीडिया के नियमित पाठक कई मुद्दों पर सतर्क को अवगत रहते हैं। अन्य स्रोतों के मुकाबले प्रिंट मीडिया अधिक विस्तृत रिपोर्टिंग करता है। टीवी पर बहुत से समाचार, समाचार पत्र में छपे समाचार की अनुवर्ती कहानी होती हैं। यद्यपि यह कहा जा रहा है कि इलेक्ट्रोनिक और नई मीडिया ने प्रिंट मीडिया का स्थान ले लिया है परंतु आज भी बहुत सारे दर्शक हैं जो समाचार पत्र को प्राथमिकता देते हैं।

2. **प्रसारण मीडिया** (Broadcast Media):

इस संचार मीडिया में टेलीविजन, रेडियो और अन्य इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जैसे चलचित्र सीडी और डीवीडी तथा नए यंत्र सम्मिलित है। टेलीविजन(1950) अविष्कार रेडियो प्रसारण ही समाचार का प्रमुख स्रोत था। स्थानीय समाचार स्टेशन के दर्शक बहुत होते हैं क्योंकि वह स्थानीय मौसम, यातायात और अन्य घटनाओं की पूर्ण खबर प्रसारित करते हैं। टेलीविजन का प्रदर्शन प्रभावी होता है, और आकर्षक दृश्य दिखाए जाते हैं।

3. **इंटरनेट** (Internet):

तकनीक के विकास का परिणाम इंटरनेट है, इंटरनेट अधिक प्रभावी और गति भी तीव्र है, इसमें ऑडियो और वीडियो दोनों ही होते हैं, मोबाइल फोन कंप्यूटर और इंटरनेट को यह नए युग के मीडिया की संज्ञा दी जाती है। जनसंचार के नए द्वार खोल दिए हैं जैसे ईमेल, वेब ब्लॉग आदि। आज लोग प्रिंट एवं संचार मीडिया के स्थान के बजाय ऑन वेब पोर्टल, पोड कास्ट, समाचार समूह और फीड्स (web portal. Podcast.news group and feeds) से ही अपना समाचार और सूचना अपने आवश्यकता अनुसार प्राप्त करते हैं। दर्शक अपने विचारों टिप्पणियां ऑनलाइन देते हैं।

## लोकतंत्र एवं मीडिया

महत्वपूर्ण चर्चा और नीतियों को सार्वजनिक तौर पर फैलाने के लिए मीडिया महत्वपूर्ण है। "भ्रष्टाचार वित्तीय लापरवाही और छलपूर्ण व्यवहार को रोकने में मीडिया एक अहम भूमिका अदा करती है"–अमर्त्य सेन।[2] अक्सर मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ बुलाया जाता है मीडिया के लिए लोकतंत्र कि एक प्राथमिक आवश्यकता है और यह भी सच है कि मीडिया के बिना लोकतंत्र वैसे ही है जैसे चक्की बिना गाड़ी लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका को थॉमस जेफरसन (Thomas Jefferson) के कथन में स्पष्ट किया है, "यदि मुझे यह चुनाव दिया जाए कि सरकार बिना समाचार पत्र अथवा समाचार पत्र बिना सरकार तो मैं निश्चित ही द्वितीय विकल्प का चुनाव करूंगा"।[3]

मीडिया एक स्वस्थ लोकतंत्र को आकार देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह तर्पण की तरह जीवन के कड़वे सत्य कठोरता शिक्षाओं को प्रतिबिंबित करता है जनता में जागरूकता मीडिया तरह लाई जाती है और सामाजिक परिवर्तन के लिए नॉरिस (Norris-2006) के अनुसार "लोकतंत्र सुशासन में मीडिया की तीन प्रमुख भूमिकाएं हैं, पहला सत्ताधारी पर लगाम लगाना, जवाबदेहीता को बढ़ावा देना पारदर्शिता और सार्वजनिक जांच यह सब मीडिया के महत्वपूर्ण कार्य हैं। मीडिया का दूसरा प्रमुख कार्य है। राजनीतिक बहस के लिए नागरिक मंच उपलब्ध कराना, सूचित चुनावी विकल्प और कार्यों को सुविधाजनक बनाना और तीसरा कार्य है नीति निर्माता के लिए विषय उपलब्ध कराने हेतु सामाजिक समस्याओं के लिए सरकार को जवाबदेही को बढ़ाना।[4]

लोकतंत्र का आधार जनता की सहभागिता है मीडिया जनता को सरकार के कार्यक्रमों और कार्यों की जानकारी देकर तथा उन्हें संगठित कर शासन का भाग बनाए रखता है। लोकतंत्र तभी सही रूप में कार्य कर सकता है जब उसमें जनता की सहभागिता अधिकतम होगी। जनता को सही मुद्दों की निष्पक्ष जानकारी देना शासन में वर्तमान में क्या चल रहा है। इसकी जानकारी तथा सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों को लेकर सजग होना ही उनकी सहभागिता को बढ़ाता है यह जानकारी जनता तक मीडिया ही पहुंचाता है इस जानकारी से लोग शासन की प्रशंसा या आलोचना कर सकते हैं और नीतियों के समर्थन का विरोध करते हैं मीडिया संप्रेक्षण का भी एक माध्यम है। जिसके द्वारा जनता आवाज उठाती है अपनी चिंताओं अपनी समस्याएं सरकार तक पहुंचाती है। कई बार यह देखा गया है कि जनता द्वारा उठाई गई आवाज के कारण सरकार ने दबाव में आकर अपनी नीति संशोधित या परिवर्तित भी की है। इस प्रकार से मीडिया सुशासन हेतु आधार बनाता है। उदाहरण के लिए भारत में अन्ना हजारे द्वारा लोकपाल बिल के लिए किए गए आंदोलन को मीडिया ने समर्थन दिया था इस समाचार और कवरेज ने देश की संपूर्ण जनता को भ्रष्टाचार के खिलाफ एक कर दिया और सरकार पर लोकपाल बिल संसद में पेश करने हेतु दबाव बना। इसी प्रकार नए कृषि कानूनों का भी जनता द्वारा विरोध किया गया और अंततोगत्वा सरकार को नवीन कृषि कानूनों को वापस लेना पड़ा लगातार यह देखने को मिल रहा है कि जनता विभिन्न मुद्दों पर आंदोलित हो रही है अतः मीडिया की भूमिका और गंभीर हो गई है।

मीडिया ने पूरी दुनिया में लोकतंत्र की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 18 वीं शताब्दी के बाद से विशेष रूप से अमेरिका स्वतंत्रता आंदोलन और फ्रांसीसी क्रांति के समय से मीडिया जनता तक पहुंचने और उन्हें ज्ञान के साथ सक्षम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। लोकतांत्रिक देशों में विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका ने कामकाज की निगरानी के लिए मीडिया को चौथे स्तंभ के रूप में जाना जाता है। क्योंकि स्वतंत्र मीडिया लोकतंत्र प्रणाली के बिना अपना अस्तित्व समाप्त नहीं कर सकता। मीडिया भारत के औपनिवेशिक नागरिकों के लिए सूचना का एक स्रोत बन गया है। नई शक्ति दी गई क्योंकि लाखों भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई में नेताओं के रूप में शामिल हुए 1975 से 2014 की लोकसभा चुनाव में प्रेस सेंसरशिप के दिनों में भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका में व्यापक रूप से परिवर्तन देखा गया हैं।[5]

26 जून 1975 को इंदिरा गांधी ने देश में आपातकाल लागू किया और नियंत्रण के लिए सभी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं को बंद कर दिया गया। कई पत्रों ने अपनी शैली में इसका विरोध किया लेकिन यह विरोध लंबे समय तक नहीं चला। यह शर्म की बात है कि कई पत्रों के संपादक को जिन्हें बडा कहा जाता है उन्होंने जुलूस निकाला और इसका समर्थन किया। उस समय के दौरान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं ने गुप्त रूप से 500 से 1000 संकलन वाले सैकड़ों पत्र प्रकाशित किए। यह पत्र अंगारा, सौगंध, स्वतंत्रता आदि नामों के तहत एक शहर या जिले तक सीमित है। यह एक हाथ से बने साइक्लोस्टाइल मशीन पर मुद्रित होते थे। जबकि कुछ साहसी प्रेस मालिकों ने रात में बड़ी मशीनों पर भी छाप दी। उस समय भी जनपक्ष इन स्थानीय पत्रों द्वारा ही पूरा होता था तथा कथित बड़े पत्रों द्वारा नहीं, आपातकाल

हटाए जाने के बाद पत्रों ने स्वतंत्रता प्राप्ति की। एक कांग्रेसी नेता ने कहा कि हमने उन्हें सिर्फ झुकने के लिए कहा था लेकिन वह तो लेट गए और पूजा करने लगे बड़े पत्रों की। इस सिप्नल्समेनेस का कारण यह था कि सभी बड़े पत्र पूंजीपति वर्ग और वर्ग के थे और पूंजीपति कभी भी सरकार का विरोध नहीं कर सकते। काल की स्थिति आज भी वैसे ही थी बड़े कहे जाने वाले अंग्रेजी और भारतीय पत्रों के मालिक अभी भी बड़े व्यापारी हैं इनका मुख्य व्यवसाय कुछ और है, और पत्र उनके व्यवसाय के लिए मीडिया शील्ड प्रदान करते हैं।[6]

## प्रिंट मीडिया से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में परिवर्तन

भारतीय मीडिया ने वर्तमान युग में अखबार और रेडियो से लेकर टेलीविजन और सोशल मीडिया के दिनों तक एक लंबा सफर तय किया है। 1990 के दशक में मीडिया धरानो में निवेश भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से प्रभावित हुआ था क्योंकि बड़े कॉर्पोरेट धरानों व्यवसायों राजनीतिक कुलीनों और उद्योगपतियों से अपनी ब्रांड छवि को सुधारने के लिए एक सुविधा के रूप में इस्तेमाल किया। समाचार चैनल वर्तमान में शो व्यवसाय में शामिल थे। जिसके करण टीआरपी समाचार घरों के लिए प्रतिद्वंदता थी। समाचार जो लोग मुद्दों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए पढ़ते थे जो समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण था और अब पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण का स्रोत बन गया है। मीडिया की भूमिका समाज को उनके लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति जागरूक करना और लोकतंत्र के तीन संस्थाओं के खिलाफ विरोध करना है जब सरकारी संस्थान भ्रष्ट निरंकुश हो जाते हैं या जब वे समाज से जुड़े मुद्दों की ओर अपना ध्यान आकर्षित करते हैं तो मीडिया लाखों नागरिकों की आवाज के साथ मिलकर आवाज उठाता है। आज के भारत में विभिन्न राजनीतिक संगठनों और व्यावसायिक समूह के लिए मीडिया मुख्य पात्र बन गया हैं। वे इस तरह की प्रभावशाली आंकड़ों के लिए लिपिकार के रूप में कार्य करते रहे हैं क्योंकि उनका व्यापार ऐसे संगठनों के समर्थन पर सुचारू रूप से चलता है।

## भारत में मीडिया को मजबूत करने में सरकार की भूमिका

भारत जैसे जीवंत लोकतंत्र में स्वतंत्र और नियंत्रण मुक्त प्रेस की आवश्यकता वास्तव में आवश्यक है। जब से हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान का निर्माण शुरू किया है। तब से मीडिया की भूमिका भारत सरकार के दृष्टिकोण पर निर्भर हो गई है। भारत में मीडिया की स्थितियां भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के तहत यह प्रेस की स्वतंत्रता के बारे में एक भ्रम था, समिति के अध्यक्ष डॉ अम्बेडकर ने महसुस किया कि स्वतंत्र प्रेस के लिए अलग से प्रावधान करने की आवश्यकता नहीं है लेकिन तर्क दिया की "प्रेस किसी व्यक्ति या नागरिक का वर्णन करने का एक और तरीका है, इस प्रकार प्रेस का अधिकार अनुच्छेद 19 (1) ए के तहत बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का हिस्सा बन गया है। रिपोर्टर्स द्वारा बॉर्डर्स के साथ प्रकाशित वर्ल्ड प्रेस फ्रीडम इंडेक्स में 180 देशों में से भारत का 136 वां स्थान दिया गया था। देश में इसे पत्रकारों के लिए उपलब्ध स्वतंत्रता का स्तर भारत की रैंकिंग में गिरावट बढ़ती हिंदू राष्ट्रवादियों से जुड़ी है जो राष्ट्रीय मीडिया के राष्ट्र विरोधी विचारों को खारिज करने की कोशिश कर रहे हैं जो मीडिया को एक नकारात्मक भूमिका के रूप में दर्शाता है।

भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका पर कोई विस्तृत कानून होना मुश्किल है। डॉक्टर अंबेडकर ने कहा था न्यूज़ ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन एनबीए एक सरकारी निकाय है जिसने दर्शकों के बीच सूचना प्रकाशित करने के लिए मीडिया हाउसों द्वारा पालन किए जाने के लिए दिशा निर्देश तैयार किए हैं निष्पक्षता के साथ जनता के लिए विश्वसनीय समाचार सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। लोकतंत्र में मीडिया की तीन जिम्मेदारियां हैं पहला सत्तारूढ़ लोगों पर कड़ी नजर रखना दूसरा समाज को पूरे दिन की महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर विश्वसनीय जानकारी प्रदान करना तीसरा केवल निष्पक्ष तथ्यों को उजागर करना। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ बुलाया जाता है इसे जनहित का संरक्षक और लोगों के बीच के सेतु के रूप में देखा जाता है। महत्वपूर्ण चर्चाओं और नीतियों को सार्वजनिक तौर पर फैलाने के लिए मीडिया महत्वपूर्ण है। भ्रष्टाचार, वित्तीय लापरवाही और छलपूर्ण व्यवहार को रोकने में मीडिया एक अहम भूमिका अदा करती है।

## मीडिया की बदली हुई भूमिका

दुर्भाग्यवश बढ़ते व्यवसायीकरण के कारण मीडिया में एक दूसरे के प्रति कड़ी प्रतिस्पर्धा पैदा हो गई है मीडिया जिम्मेदार पत्रकारिता पर ध्यान केंद्रित न करके खुले तौर से पेडन्यूज और घटिया पत्रकारिता को बढ़ावा दे रही है यह और भी ज्यादा दुखद है कि भारत में मीडिया अब कुछ व्यापारियों और राजनैतिक हितों के नियंत्रण में आ गया है इसलिए सामाजिक हितों को व्यापारिक और राजनीतिक हितों के नीचे दबाया जा रहा है यह कहना गलत नहीं होगा कि आजकल मीडिया हाउस का मुख्य उद्देश्य लोकतंत्र की सेवा नहीं बल्कि अधिक से अधिक धन कमाना है कुछ जगहों पर मीडिया को दो विरोधी राजनीतिक दलों के बीच में लड़ाई करवाने के लिए उपयोग किया जाता है इतना ही नहीं बल्कि मीडिया को गलत तरीके से प्रयोग करके लोगों के बीच मतभेद पैदा किया जाता है और विश्वास बढ़ाने की जगह संदेह उत्पन्न किया जाता है। मीडिया का प्रभाव बहुत ही महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे जनता का वैचारिक निर्माण होता है मुद्दों को बहुत ज्यादा उछाल कर या दबाकर मीडिया किसी भी मुददे को महत्वपूर्ण बना सकती है या फिर उसे पूरी तरह खत्म कर सकती है।

उपराष्ट्रपति श्री हामिद अंसारी ने कहा है कि पेड न्यूज़ ने स्वच्छ चुनाव करवाने के लिए कोई रास्ता नहीं छोड़ा है और लोगों में व्याप्त मीडिया में विश्वास को नष्ट किया है मैक्सेस पुरस्कार विजेता पी साईनाथ के अनुसार पेडन्यूज एक व्यापार है जिसे मीडिया हाउस के मालिक चलाते हैं परन्तु मीडिया और पत्रकारिता दो अलग चीज़ है मीडिया बिज़नेस है परंतु पत्रकारिता नहीं लेकिन अब सब कुछ कॉर्पोरेट पावर के बारे में है किसी भी बड़े मीडिया हाउस के बोर्ड ऑफ मेंबर्स को देखें तो सबसे बड़े व्यापारी मौजूद हैं हमने शिक्षा का व्यापारीकरण किया फिर चिकित्सा का और उसके बाद खेल का अब मीडिया का व्यापारीकरण हो रहा है साईनाथ ने यह दुख व्यक्त किया कि सिर्फ चुनाव आयोग ने ही पेड़ न्यूज़ के खिलाफ़ प्रतिक्रिया जताई और मीडिया ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।[7]

## वर्तमान मीडिया स्थिति

मीडिया पूरी तरह से बाजार के चंगुल में है। इसे वर्तमान पत्रों की भाषा में समझा जा सकता है। 80 के दशक में जब राजीव गाँधी और उनकी दून मंडली सत्ता में आई दो देश में

अंग्रेजी प्रभुत्व बढ़ने लगा धीरे धीरे हिंदी माध्यम के स्कूलों ने भी अपने बोर्ड बदल दिए और उन पर अंग्रेजी माध्यम लिख दिए। आज इस बात को 25 साल हो गए हैं और अब एक ऐसी पीढ़ी अस्तित्व में आई है। जो न तो ठीक से हिंदी जानती है और न ठीक से अंग्रेजी। हिंदी अंकावली लगभग पूरी तरह से गायब हो गई है।

इस पीढ़ी तक पहुंचने के लिए, कई हिंदी पत्रों ने अपनी भाषा में जबरन अंग्रेजी शब्दों और रोमन लिपि में घुसपैठ की है। कई पत्रों ने अंग्रेजी में शीर्षक लिखना शुरू कर दिया है। एक समय था जब लोग इन पत्रों के माध्यम से अपनी भाषा में सुधार करते थे, लेकिन अब वही मीडिया भाषा को खराब करने की कोशिश कर रहा है। दूरदर्शन के समाचारों और नीचे दिए गए पाठ में हिंदी के दुर्व्यवहार को देखकर, उसके मन में एक इच्छा जागी। यह स्पष्ट है कि मीडिया का उद्देश्य केवल इस समय पैसा कमाना है।

लेखकों और साहित्यकारों को पत्रिकाओं से एक पहचान मिलती है। पहले कई पत्रों में नए और युवा लेखकों को प्रोत्साहित करने की कोशिश की गई लेकिन अब ज्यादातर पत्र किसी न किसी गुट से बंधे हैं। वे केवल उस समूह के लेखकों को रखते हैं। विरोध या तटस्थ लेखकों की रचनाएँ अच्छी होने पर भी फेंक दी जाती हैं। यहां तक कि उन्हें जवाब भी नहीं दिया जाता। कई पत्र अंग्रेजी लेखकों की अनुवाद सेवा में प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। वे भूल जाते है कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में लिखने वाले कम नहीं हैं, लेकिन जब उद्देश्य केवल पैसा है, तो हम उस पर कैस ध्यान दे सकते हैं ?

उनके दृष्टिकोण के अलावा, इस मानसिकता के कारण संस्थानों के कार्यक्रमों का बहिष्कार करने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। 27 फरवरी को दिल्ली के रामलीला मैदान में एक लाख लोग बाबा रामदेव और अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं को सुनने आए। न केवल सरकारी दूरदर्शन ने इसकी रिपोर्ट की बल्कि दिल्ली के अधिकांश पत्रों ने इसे दूसरे–तीसरे पृष्ठ पर भी स्थान दिया। यह एक उदाहरण है कि कैसे लालची मीडिया विज्ञापन से डराता है।

इस बाजारवाद ने पेड न्यूज का चलन बढ़ा दिया है। चुनाव के समय यह प्रवृत्ति बहुत तीव्र हो जाती है। 100 लोगों की एक सभा को एक विशाल सभा के रूप में वर्णित करना और एक विशाल सभा की खबर को गायब करना इस दुर्भावना का हिस्सा है। दुर्भाग्य से केवल वे ही अखबार इस प्रतियोगिता में लगे हैं, जिनके मालिकों के पास अकूत संपत्ति है। उनके लापरवाह छोटे अखबार भी इसकी नकल कर रहे हैं। हालांकि कुछ पत्रकारों और संगठनों ने इसके खिलाफ आवाज उठाई है, जो एक अच्छा संकेत है।

मीडिया में समाचार और राय दो अलग–अलग धारणाएं हैं। यदि कोई रिपोर्टर या संपादक किसी समाचार के पक्ष या विपक्ष में विचार देना चाहता है, तो उसके लिए संपादकीय पृष्ठ का उपयोग किया जाता है। कुछ पत्र इस नीति का पालन करते हैं, लेकिन ज्यादातर में इसकी कमी है। रिपोर्टर अपने विचारों के अनुसार समाचार को ट्विस्ट करता है। इससे पत्र की विश्वसनीयता कम हो जाती है।

जब समाज में नीचे की ओर रुझान होता है, तो मीडिया पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। शासन अखबारों को पूरा विज्ञापन देता है। इस लालच मे हजारों रजिस्टर्ड

कागजात केवल सौ प्रतियाँ छापकर खुद को जीवित रखते हैं। यह उस पार्टी की नीति है जिसके शासन की प्रशंसा की जानी है, और विज्ञापन देना है। पति संपादक, पत्नी प्रबंधक, पुत्र मुख्य संवाददाता और बेटी विज्ञापन प्रबंधक। इस तरह के पत्र मीडिया की प्रतिष्ठा को नीचा दिखाते हैं, लेकिन कोई सख्त कानून नहीं होने के कारण ऐसे दलाल लगातार बढ़ रहे हैं। ये पत्र लोकतंत्र और सार्वजनिक प्रवचन दोनों के लिए हानिकारक हैं।

नए मीडिया की एक नई लहर भी इन दिनों गति पकड़ रही है। बड़ी संख्या में लेखक और पत्रकार BLOG लिख रहे हैं। यह अपने विचारों को फैलाने का एक सशक्त माध्यम बन गया है। इसलिए, सभी समाचार पत्र उन्हें जगह दे रहे हैं, लेकिन एक ओर, नियंत्रण न होने के कारण, जहाँ इसकी विश्वसनीयता संदेह के दायरे में है, भाषा की गरिमा का उल्लंघन भी अत्यधिक हो रहा है। चूंकि यह अपनी प्रारंभिक अवस्था में है, इसलिए यह कहना मुश्किल है कि इसका भविष्य क्या होगा।

इंटरनेट और मोबाइल मेल ने ट्विटर और फेसबुक को एक मजबूत सामाजिक मंच बना दिया है जहां लोग अपने विचार साझा कर सकते हैं। यह एक दोधारी तलवार है, जो दूसरों से टकराती है। भारत में पूर्व विदेश राज्य मंत्री शशि थरूर और क्रिकेट व्यापारी ललित मोदी को ट्विटर पर की गई टिप्पणियों के पद छोड़ना पड़ा। मीडिया एक निरंतर बहने वाली संस्था है। इसने कई बार अपना रंग और रूप बदला है। एक समय था जब उत्तर से दक्षिण तक की खबरें पहुंचने में छह महीने लगते थे, लेकिन आज छह सेकंड में यह शब्द पूरी दुनिया में फैल गया। इस उछाल के कारण, लोकतंत्र और जन जागरूकता के प्रति इसकी जिम्मेदारी भी बढ़ गई है, लेकिन इसे ठीक से पूरा नहीं किया जा रहा है। अपराधी केवल मीडिया प्रणाली नहीं है, बल्कि संपूर्ण समाज और राजनीतिक वातावरण है।

चुनावों में हर बार लाखों नए मतदाता बनते हैं। नया होने के नाते ,उनका प्रशिक्षण आवश्यक है। युवा पीढ़ी नई और सोच वाली है। इसलिए मीडिया इस क्षेत्र में एक बड़ी भूमिका निभा सकता है। यह नए लोगों को जाति, क्षेत्र, भाषा और प्रांत की राजनीति से मुक्त करने और वंशवादी, भ्रष्ट और आपराधिक उम्मीदवारों का विरोध करने के लिए प्रेरित कर सकता है; लेकिन अक्सर मीडिया इस बारे में चुप रहता है। कहीं विज्ञापन उनके मुंह बंद कर देते हैं ,कहीं उम्मीदवार के डर से। परिणामस्वरूप, वह भी प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के जाति और धार्मिक समीकरणों को ध्यान में रखकर अपना कर्तव्य पूरा करता है। यह आम अच्छे के बजाय जाति और धार्मिक राजनीति को मजबूत करता है। यही वजह है कि 60 साल के होने के बाद भी भारतीय लोकतंत्र लोगों की आकांक्षाओं को पूरा कर पा रहा है।

किसी भी वस्तु के निर्माण में कच्चे माल और मशीनों की गुणवत्ता बहुत महत्वपूर्ण है। यह मीडिया की स्थिति है। इस समाज से पत्रकार भी आ रहे हैं। वे भौतिकता की प्रतिस्पर्धा और राजनीति की चमक से भी प्रभावित हैं। उन्हें अपने परिवार के लिए कार, घर, मनोरंजन और बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा और अन्य सुविधाओं की भी आवश्यकता है। खाली पेट साइकिल पर चलना अब पत्रकारिता नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में वे मिट जाएंगे। हाल ही में राडिया राजा प्रकरण से यह पता चला कि पत्रकार जगत के कितने बड़े लोग कीचड़ में फंसे हैं।

जिस तरह से समाज में भ्रष्टाचार सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और स्वीकार्य हो गया है वह आश्चर्यजनक है। राजनीति काली थी। लेकिन अब सेना और न्यायपालिका में भ्र टाचार की कहानियां भी खुल रही हैं।ऐसे में किसी को मीडियाकर्मियों से ज्यादा उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। यद्यपि मीडिया द्वारा न्यायपालिका और सेना के भ्रष्टाचार को भी उजागर किया गया है। इसलिए ,उनकी सर्वोच्च जिम्मेदारी है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि मीडिया भी समाज का एक हिस्सा है। समाज और उसके नेताओं को लोकतंत्र और लोकतंत्र की कसौटी पर खरा उतरने से पहले खुद को परखना होगा। भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था ,पैसे कमाने की मशीन बनाने वाली अनैतिक शिक्षा और ईमानदार पत्रकारों के लिए अनुशासनहीन समाज की खोज निरर्थक है।

**मीडिया विनियमन**

बढ़ते हुए व्यापार, उपभोक्तावादी सोच, सन सिंग पेड़ न्यूज़ और पत्रकारों और मीडिया घरानों में नैतिक मूल्यों के निरंतर अध पतन मीडिया विनियमन के मुददे को महत्वपूर्ण बना दिया है। वर्तमान में ज्यादातर मीडिया आत्म नियंत्रित है। पत्रकार भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आश्वस्त करने वाली भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1) (क) में आश्रय लेते है कि आत्म नियमन पर ज़ोर देते हैं पिछले कुछ वर्षों में प्रमुख व्यक्ति जैसे न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू, पूर्व चेयरमैन प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया और कांग्रेस नेता मीनाक्षी नटराजन प्रिंट प्रसारण और वेब मीडिया से संबंधित सभी विषयों पर सार्वजनिक नियमन की मांग कर रहे हैं। नटराजन ने प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए नियमन विधेयक 2012 प्रस्तुत करने का नोटिस भी दिया लेकिन यह योजना रद्द कर दी गई हालांकि इस मुद्दे पर अभी तक बिना किसी निष्कर्ष बहस की जा रही है। कानूनी रिपोर्टिंग अथवा न्यायाधीन मामलों पर सितंबर 2012 में सहारा इंडिया से भी सेबी मामले में सुप्रीम कोर्ट ने मीडिया के लिए कोई भी दिशा निर्देश देने के खिलाफ़ फैसला किया था लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने पत्रकारों को समझाया कि वह अपनी सीमाओं का उल्लंघन न करें।

महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री श्री अशोक शंकरराव चौहान के पेड़ न्यूज़ मामले में सुप्रीम कोर्ट ने मई 2014 में अपने निर्णय में कहा कि चुनाव आयोग को यह अधिकार है कि ऐसे उम्मीदवारों की सदस्यता रद्द कर सके जो अनुच्छेद 10(क) के तहत, अपना चुनावी व्यय गलत घोषित करते हैं। इसी के फलस्वरूप चुनाव आयोग ने 13 जुलाई 2014 को एक आदेश पारित किया और श्री अशोक शंकरराव चौहान को कारण बताओ नोटिस जारी किया लेकिन दिल्ली हाईकोर्ट ने इस पर स्थायी रोक लगा दी। मीडिया के विनियमन के लिए मौजूदा इकाइयों जैसे प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया जो एक संवैधानिक इकाई है, समाचार प्रसारण मानक प्राधिकारी जो एक स्वयं विनियामक संगठन है इस मुद्दे पर मानक ज़ाहिर करते हैं जो की निर्देश के रूप में होते हैं।

पी.सी.आई. के पास पत्रकारिता के आदर्शों के उल्लंघन और कदाचार के मामलों में संपादक या पत्रकार के खिलाफ़ शिकायत स्वीकार करने का अधिकार है जिसके पश्चात वह मामलों की जांच करता है जांच के दौरान वह गवाहों को बुला सकता है सार्वजनिक रिकॉर्ड की प्रतियों की मांग कर सकता है सबूत हासिल कर सकता है और अखबार समाचार एजेंसी

संपादक या पत्रकार को चेतावनी भी जारी कर सकता है साथ ही पी.सी.आई. जांच के विवरण को प्रकाशित करने की आज्ञा भी समाचार पत्रों को दे सकता है पी.सी.आई. का निर्णय अंतिम होता है और इसके खिलाफ़ उच्च न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती। लेकिन पी.सी.आई. की शक्तियां दो तरह से प्रतिबंधित है।

- जारी दिशा निर्देशों को लागू करने का उनका अधिकार सीमित है उल्लंघन के मामलों में वह समाचार पत्रों एजेंसियों संपादकों और पत्रकारों को दंडित नहीं कर सकता।

- पी.सी.आई. प्रेस के कामकाज का बस ऊपरी निरीक्षण करता है। समाचार पत्रों पत्रिकाओं और प्रिंट मीडिया पर तो मानक लागू कर सकता है मगर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जैसे रेडियो टीवी और इंटरनेट की समीक्षा नहीं कर सकता। एनबीए ने टेलीविजन के कार्यक्रम के लिए एक आचार संहिता तैयार की है एनबीए के समाचार प्रसारण मानक प्राधिकरण के पास यह अधिकार है कि किसी भी उल्लंघन के खिलाफ़ वह चेतावनी दे सके और उसके प्रसारण को अस्वीकार कर सके और साथ ही, 1,00,000 तक की राशि का जुर्माना लगा सके। ऐसा ही एक और संगठन प्रसारण संपादकों का एसोसिएशन है भारतीय विज्ञापन मानक परिषद अपने विज्ञापन से संबंधित सामग्रियों पर दिशा निर्देश जारी किए हैं लेकिन ये सारे संगठन समझौतों के माध्यम से काम करते हैं और इनके पास कोई वैधानिक अधिकार नहीं है।[8]

**मीडिया स्वस्थ लोकतंत्र का न केवल एक अंग है, बल्कि यह अपरिहार्य शर्त भी है :**

लोकतंत्र में संसद और मीडिया एक दूसरे के सहयोगी हैं। दोनों ही संस्थान जन भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं। आज जब हम बढ़ती और बदलती जन अपेक्षाओं के युग में रह रहे हैं। तब आवश्यक है कि हम भी अपने स्थापित पूर्वाग्रहों को त्यागे और जन अपेक्षाओं को स्वर दें जिसे विकासवादी सकारात्मक राजनीति का वाहक बनना होगा मीडिया सरकारों और राजनीतिक दलों की जवाबदेही अवश्य तय करें परंतु उसके केंद्र में जन सरोकार हो न की सत्ता, संस्थान, मीडिया यथा स्थितिवादी राजनीति में बदलाव का कारक बने, मीडिया को दलीय राजनीति से ऊपर उठकर जन केंद्रित मुद्दे उठाने चाहिए, मीडिया में लोकतांत्रिक संस्कारों को धारण करना है तो पत्रकारिता के केंद्र में जन सरोकारों को रखना होगा। यहां स्थानीय समाचार पत्रों की महती भूमिका रहती है। स्थानीय समाचार पत्र ने केवल स्थानीय अपेक्षाओं को प्रतिबिंबित करते हैं बल्कि भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने के कारण जन आकांक्षाओं के अधिक निकट भी है झारखंड में पहाड़ की तलहटी में बसे 2 गांवों–आरा और केरम के निवासियों द्वारा किए गए जल संरक्षण के प्रयासों को देश के अन्य भागों तक मीडिया ने ही पहुँचाया है जन सरोकार के इन विषयों पर जन शिक्षण करना आज पत्रकारिता का तकाजा है।[9]

**वर्तमान समय में मीडिया को प्रभावित करने वाले प्रमुख मुद्दे :**

- भारतीय मीडिया में फर्जी खबरों की समस्या मौजूद है, जिसके कारण लोग गलत सूचना प्राप्त करते हैं और बड़े पैमाने पर अफवाह और भ्रम फैलाते हैं।

- कभी–कभी यह गैर जिम्मेदार रिपोर्टिंग में भी लिप्त हो जाता है और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए संवेदनशील जानकारी लीक कर देता है। उदाहरण के लिए, मुंबई में 26/11 के

आतंकवादी हमले के मामले मे गैर जिम्मेदाराना रिपोर्टिंग करना और कभी–कभी भीड़ की भावनाओं को भड़काकर कानून–व्यवस्था की समस्या पैदा करना ।

- मीडिया उच्च टीआरपी प्रतियोगिता में सनसनीखेज समाचार दिखाता है जो सार्वजनिक मुद्दों से संबंधित समाचारों के महत्व को कम करता है।
- मीडिया में पेड न्यूज की भी समस्या है जो लोगों को भ्रमित करती है।
- भारत में बढ़ते मीडिया ट्रायल की घटनाओं ने न्याय का उपहास उड़ाया है।
- भारत में मीडिया की विविधता और गुणवत्ता मीडिया समावेश और लाभ–संचालित हितों जैसी समस्याओं से प्रभावित हो रही है। इस पृष्ठभूमि के खिलाफ,भारत में मीडिया को सशक्त बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय करना समय की आवश्यकता है।
- पेड न्यूज को मोटे तौर पर कानून द्वारा परिभाषित किया जाना चाहिए और इस संबंध में दंडात्मक उपाय किए जाने चाहिए।
- प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में टर्फ युद्ध से बचने के लिए ,उनके पास एक एकल ि नियामक होना चाहिए।
- भारतीय प्रेस परिषद को कानून द्वारा दंडात्मक शक्तियाँ दी जानी चाहिए।
- समाचार प्रसारण मानक प्राधिकरण जैसे स्व–नियामक निकायों को सशक्त बनाया जाना चाहिए।

**निष्कर्ष :**

मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तंभ हो सकता है, लेकिन नियमन के बिना यह भारत में लोकतंत्र के लिए अपमानजनक भी हो सकता है। इसे संवैधानिक सीमाओं और नियमों के भीतर उचित स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए। मीडिया भी समाज का एक हिस्सा है। समाज और उसके नेताओं को लोकतंत्र और लोकतंत्र की कसौटी पर खरा उतरने से पहले खुद को परखना होगा। ईमानदार पत्रकारों की खोज, एक भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था, अनैतिक शिक्षा, जो पैसा बनाने की मशीन और एक अनुशासनहीन समाज है से निरर्थक है। वर्तमान युवाओं को दुनिया में तेजी से बढ़ती प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया में रुचि है। इस प्रकार, मीडिया के लिए यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण हो जाता है कि टीआरपी चैनलों को बढ़ावा देने के लिए प्रसारित की जा रही सूचना को पक्षपाती या हेरफेर न किया जाए।

**उद्देश्य :**

- भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की स्थिति का अध्ययन किया गया है।
- भारतीय राजनीति में मीडिया के विकास की विवेचना की गई है।
- भारतीय लोकतंत्र में मीडिया के प्रभावों का वर्णन किया गया है।

**परिकल्पना**

- भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।
- भारतीय राजनीति में मीडिया के प्रभाव में वृद्धि होती रही है।

**अध्ययन पद्धतिः**

प्रस्तुत अध्ययन के लिए ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया है इस अध्ययन हेतु राजनीतिक  दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन में प्राथमिक और द्वितीयक दोनों ही प्रकार के आंकड़ों का समावेश किया गया है

❐


*सन्दर्भ –*

1. *https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/68127/1/unit-9.pdf.*
2. *Shakuntala Rao & Kanchan K. Malik (2019) Conversing Ethics in India's News Media, Journalism Practice, 13:4, 509-523, DOI: 10.1080/17512786.2018.1491321*
3. *Newspapers without a government Thomas Jefferson <https://conversational-leadership.net/quotation/newspapers-without-government/>.*
4. *Norris, p. 2006: the role of repress in promoting democratization, good governance and human development meguire lecture in comparative politics Harvard University Cambridge MA.*
5. *भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका & Ignited Minds Journals https://ignited.in/I/a/293304.*
6. *लोकतंत्र में सोशल मीडिया की भूमिका & Drishti IAS https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily news editorials/role of social media in democracy.*
7. *Media Bias and Democracy in India - Stimson Center https://www.stimson.org/2021/media-bias-and-democracy-in-india.*
8. *मीडिया स्वस्थ लोकतंत्र का न केवल एक अंग है, बल्कि अपरिहार्य शर्त भी है https://www.prabhasakshi. com/amp/news/media is not only a part of healthy democracy but also indispensable-condition.*
9. *मीडिया एक स्वस्थ लोकतंत्र को आकार देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है https://adrindia.org/sites/default/files/The: 20Media: 20round: 20background : 20 note_Hindi.pdf.*

**पूर्वदेवा**– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 42–48*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# बिहार में नील की खेती और 1857 का विद्रोह

**ओमकार नाथ पाण्डेय**
शोधार्थी, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005
E-mail: omkarpandeybest@gmail.com Mob. 8052513812

**सारांश**

*नील के रंग का प्रयोग कपड़ों को रंगीन बनाने के लिए किया जाता है किन्तु इसी रंग ने उन्नीसवीं शताब्दी में बिहार के किसानों के जीवन को बदरंग कर दिया था। नील की खेती बिहार में किसानों के लिए आर्थिक विपन्नता, दमन, शोषण, उत्पीड़न और अमानवीयता और संवेदनहीनता को प्रतीक बन गयी थी जिसकी क्रूर गाथा इतिहास के पन्नों में दर्ज है। सरकार, जमींदार और निलहों के शोषण के त्रिकोण में फँसे किसान मुश्किल से अपने न्यूनतम आवश्यकता को पूरा कर पाते थे। नील की खेती औपनिवेशिक शोषण का एक जरिया था जिसने किसानों की हालत दासो जैसी कर दिया था। किसानों का जीवन अनेक प्रकार के लगानों एवं प्रतिबन्धों के साये में बीत रहा था। न फसल उगाने की आजादी न आने–जाने की, उल्टा लटकाकर छोड़ देना, कोड़े मारना, जुर्माना, किसानों की फसल कटवा लेना, पशुओं को अपने कब्जे में ले लेना जैसी घटनाएँ किसानों के आम जिन्दगी का हिस्सा बन गयी थी। नील की खेती का विस्तार धीरे–धीरे सम्पूर्ण बिहार में हो गया था। खेती के विस्तार के साथ निलहो का शोषण भी बढ़ता गया। निलहो के नीतियों और सरकार के रवैये से किसानों में असंतोष पनपने लगा। शुरूवाती दौर में किसानों ने सरकार के पास अपनी अर्जिया लगायी, प्रार्थना पत्र दिया, अपने आवेदन पत्रों में अपनी पीड़ा व्यक्त किया किन्तु सरकार ने निलहों का पक्ष लिया और निलहों के पक्ष में कानून बनाकर निलहों का हाथ कानूनी रूप से और मजबूत कर दिया था।*

*ब्रिटिश सेना में काम करने वाले अधिकांश सिपाही किसान पृष्ठभूमि से आते थे जिसके कारण किसानों की समस्याओं से इनका सीधा वास्ता था और किसान तथा सिपाही अपने समाजिक सम्बन्धों से एक–दूसरे के पूरक थे इसलिए 1857 में बिहार में सिपाहियों ने बगावत किया तब किसानों ने घृणा और शोषण के प्रतीक बन चुके निलहों के कारखानों को बर्बाद कर दिया तथा बगावत में भाग लिया था।*

*1857 के दौरान किसानों के भय से निलहों को अपना इलाका छोड़कर पटना और दानापुर में शरण लेनी पड़ी थी। 1857 के बगावत को नील के किसानों ने मुक्ति का संग्राम समझा और सिपाहियों के समर्थन में हथियार उठा लिया, किसानों के इसी असंतोष ने बिहार में 1857 के बगावत को जन–संघर्ष का स्वरूप प्रदान किया। इस दौरान पूरे बिहार में नील की खेती नहीं हुई जिसके कारण निलहों को 7 लाख रूपये का नुकसान हुआ था। सिपाही संख्या में सीमित थे इन्होंने बगावत की चिंगारी लगायी जिसकी आग को किसानों ने गाँव–गाँव तक फैलाकर बगावत को जनसंघर्ष में तब्दील कर दिया था।*

**मूल शब्द** – नील, किसान, बगावत, निलहें, जमींदार, 1857

## परिचय

भारत में नील की खेती का अत्यंत ही प्राचीन इतिहास रहा है। सिंधु घाटी सभ्यता से प्राप्त कपड़ों से नील का साक्ष्य प्राप्त हुआ है। यूरोपियन लोगों को नील की जानकारी सर्वप्रथम मार्कोपोलो के यात्रा वृतांत से हुआ था। मध्यकाल में शासकों का प्रोत्साहन पाकर नील का व्यवसाय भारत का प्रमुख उद्योग बन गया। वस्त्र उद्योग में निरंतर वृद्धि ने रंगाई के लिए नील की माँग को बढ़ावा दिया जिसके कारण नील की खेती भारत में खूब फैला। अबुल–फजल के आइन–ए–अकबरी में उत्तम कोटि के नील का वर्णन मिलता है। नील की फसल में शासक और किसान दोनों को आय मुद्रा के रूप में प्राप्त होती थी जिसके कारण मुद्रा अर्थव्यवस्था का तीव्र गति से विकास हुआ था। इतावली यात्री मनूकी ने भारत से निर्यात होने वाले चार भू–उत्पादों का वर्णन किया है जिसमें कपास, शहतूत, अफीम के साथ नील का भी नाम है।[1] नील मुख्य रूप से आगरा, मालवा और गुजरात के प्रांतो में उगाया जाता था। सरखेज, बयाना, कोल, अहमदाबाद नील रंगाई के प्रमुख केन्द्र थे। नील न केवल किसानों को आय के अतिरिक्त अवसर प्रदान कर रहा था बल्कि शहरों में विकसित रंगाई उद्योग से मजदूरों का पेट भरने का काम भी कर रहा था। मुगल भारत में नील बनाने का व्यवसाय इतना विस्तृत हुआ की इस पर आधारित नीलगर (नील बनाने वाले) नामक सामाजिक समूह का उदय हुआ जिसका मुख्य व्यवसाय नील बनाना था।[2]

18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी, स्पेनिष, पूर्तगाली और अंग्रेज लोगों ने भी भारत में नील की खेती का काम शुरू कर दिया जिसके कारण नील की खेती का विस्तार बिहार में हुआ। प्लासी विजय के बाद अंग्रेजों ने नील की खेती के लिए बिहार और बंगाल को सबसे उपयुक्त समझा क्योंकि राजनीतिक सत्ता पर अंग्रेजों का प्रभुत्व था।

## मुख्य भाग

नील का पौधा बिहार में अंग्रेजी राज के औपनिवेशिक शोषण का प्रतीक चिन्ह है जिसने अंग्रेजों के खिलाफ सर्वप्रथम किसानों के संगठित प्रतिरोध को जन्म दिया था। इसी शोषणकारी व्यवस्था के प्रतिरोध के लिए संगठित किसानों ने जन–चेतना के मार्ग को प्रशस्त किया जिसने क्षेत्रीय स्तर पर निलहों और जमींदारों से वैधानिक और गैर–वैधानिक तरीको से तत्कालिक व्यवस्था का विरोध करके उपनिवेषिक नीतियों को चुनौती प्रस्तुत किया था।

इंग्लैण्ड में वस्त्र उद्योग के विस्तार ने नील की माँग को बढ़ा दिया था। माँग में उत्पन्न इस व द्धि को पूरा करने के लिए भारत में नील के उत्पादन को बढ़ावा देने की नीति भाासन की ओर से अपनाया गया इसी बीच 1776 ई. में अमेरिका और ब्रिटेन में युद्ध शुरू हो जाने के कारण अमेरिका से नील का सप्लाई बन्द हो गया था। वेस्टइंडीज में नील की खेती करने वाले गुलामों के विद्रोह ने स्थिति को और दयनिय बना दिया ऐसी परिस्थिति में अंग्रेजों को दूसरे दे ाों से नील का आयात करना पड़ रहा था। ऐसी स्थिति में भारत में प्रभुत्व वाले क्षेत्र में नील की खेती कराना कम्पनी सरकार को ज्यादा कारगर लगा।

सर्वप्रथम 1782 ई. में यूरोपीय पद्धति से नील की खेती तिरहुत के कलेक्टर एम.एफ. ग्रैण्ड द्वारा शुरू करवाया गया था उसी समय से नील की खेती एक उद्योग के रूप में विकसित होने लगी। प्रांत के कई इलाकों में नील की खेती का विस्तार होने लगा था।[3] 1788 ई. तक पाँच नील फैक्ट्रीयों की स्थापना हो चुकी थी। 1793 ई. में राजस्व वसूली के लिए अपनाये गये स्थायी बंदोबस्त की पद्धति इसके लिए काफी अनुकूल सिद्ध हुई क्योंकि सभी किसानों से करार करने की अपेक्षा इलाके के जमींदार से करार करना ज्यादा आसान था। जमींदारों को निलहें किसानों की अपेक्षा ज्यादा देते थे इसलिए सरकारी प्रोत्साहन से किसानों के शोषण के लिए निलहों और जमींदारों की जोड़ी तैयार हो गई। 1810 में तिरहुत जिला कलेक्टर की रिपोर्ट के अनुसार तिरहुत जिले से हर साल दस हजार मन नील कलकत्ता भेजा जा रहा था। नील की खेती के फायदे के कारण वेस्टइण्डीज से प्लांटर बिहार में नील की खेती कराने लगे जिसमें सरकार ने उनका सहयोग दिया।[4]

सरकारी प्रोत्साहन पाकर नील की खेती शीघ्र ही बिहार के सम्पूर्ण भाग में फैल गया। 1830 तक पूर्णिया में 65, भागलपुर में 32, मुँगेर में 17, तिरहुत में 48 नील कारखानों की स्थापना हो चुकी थी।[5] जैसे–जैसे नील की खेती का विस्तार बढ़ता गया सरकार निलहों का हाथ कानूनी रूप से मजबूत करती गयी 1813 के चार्टर के बाद भारत में वाणिज्यवाद के प्रसार ने अहस्तेक्षप की नीति को बढ़ावा दिया एवं भारत में व्यापार का द्वार ब्रिटेन के सभी लोगों के लिए खोल दिया गया फलतः लोगों का हुजूम ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए भारत की तरफ दौड़ा। 1823 ई. में बने कानून के अनुसार निलहें जिस जमीन पर ऋण देते थे उस पर उगाई जाने वाली फसल पर उन्हें अधिकार मिल गया। इसी वर्ष कानून बनाकर सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह इस मामले कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी। इस काननू के माध्यम से सरकार ने शोषण के लिए निलहों को खुली छूट दे दिया था। 1830 के रेगुलेशन एक्ट किसानों के लिए और विनाशकारी सिद्ध हुआ। इसमें करार के उल्लंघन करने पर रैय्यतों पर फौजदारी मुकदमा चलाकर जेल भेजने की व्यवस्था कर दी गई। 1833 का अधिनियम नील की खेती के लिए निलहों को जमीन खरीदने का अधिकार दे दिया जिसके कारण निलहों की जमींदारिया भी बिहार के अनेक क्षेत्रों में स्थापित हो गई थी।[6] सरकार द्वारा नील की खेती करने वाले किसानों के सम्बन्ध में बने कानूनों का विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि सरकार की मंशा क्या थी? सरकार किसानों के शोषण के लिए एक नया वर्ग तैयार कर रही थी और कानूनी रूप से उसे मजबूत कर रही थी। बुकानन का सर्वे रिपोर्ट बताता है कि पूर्णिया में किसान नील की खेती से संतुष्ट नहीं थे। शाहाबाद में नील के खेती के लिए किसानों को कम रकम दी जाती थी,

तिरहुत, सारण और चम्पारण में किसानों से जबरन नील की खेती कराये जाने पर सरकार का ध्यान आकृष्ट कराया गया था। तिरहुत के जज ने 20 मई 1854 को अपने पत्र में लिखा कि उसके पास रैय्यतों से जबरन नील की खेती कराने के 15 केस आये।[7]

किसानों को नील की खेती के लिए निलहों के करींदो द्वारा मारा–पीटा जाता था किसान इस मामले में बिल्कुल असहाय था। नील की खेती के लिए जो समझौता रैय्यतों से कराया जाता था वह जबरदस्ती उनकी इच्छा के खिलाफ कराया जाता था इस मामले में उनकी इच्छा के विरूद्ध ददनी (अग्रीम ऋण) भी दे दिया जाता था ताकि किसान उनका कर्जदार हो जाये। नील के खेती में किसानों को अपना बहुमूल्य समय देना पड़ता था जबकि उस समय वह अपने खाद्यन फसलों को प्राथमिकता देना चाहते थे। किसानों की सबसे अच्छी जमीन उनसे नील की खेती के लिए लिया जाता था।[8] नील की खेती किसानों के लिए किसी भी स्थिति में लाभप्रद नहीं था दूसरे फसलों से किसानों को प्रति बीघा 13 रूपये 8 आने मिलते थे जबकि नील की खेती से होने वाला लाभ प्रति बीघा 9 रूपये से भी कम था। नील की खेती में साल में एक ही फसल उगायी जा सकती थी जबकि अन्य फसलों में वर्ष में दो फसल आसानी से उगाये जा सकते थे। नील की खेती में जमीन की उर्वरा भाक्ति 3–4 वर्ष में समाप्त हो जाती थी।[9] ऐसा नहीं है कि बेदम कर देने वाली इस शोषणकारी व्यवस्था के खिलाफ किसानों ने संघर्ष नहीं किया। किसान संगठित होकर संघर्ष कर रहे थे और शासन से संरक्षण की गुहार लगा रहे थे। अर्जियाँ, प्रार्थना पत्र, आवेदन पत्रों में अपनी पीड़ा किसान शासन से व्यक्त कर रहे थे किन्तु शासन चिकना घड़ा (बेशर्म) साबित हो रहा था। भागलपुर के कमिश्नर ने नील की खेती से सम्बन्धित भेजे गये रिपोर्ट में हवाला दिया है कि भागलपुर में 2, पूर्णिया में 2 और तिरहुत में निलहों के खिलाफ रैय्यतों ने 38 शिकायते दर्ज करवाई थी। इन शिकायतों से कानून व्यवस्था भंग होने का कोई खतरा नहीं था इसलिए सरकार ने इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया सरकार की आँख तब खुली जब 1855 ई. के संस्थाल विद्रोह और 1857 के बगावत में किसानों ने हथियार उठा लिया था।

बिहार में किसानों के दमन के कारण उपजे असंतोष ने 1857 के बगावत को जनोन्मुखी स्वरूप प्रदान किया था। किसानों को ऐसा लगा कि बगावत सफल होने पर उन्हें नील की खेती से मुक्ति मिल जायेगी इसलिए किसान बगावत में सिपाहियों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर काम कर रहे थे। सिपाही भी कृषक पृष्ठभूमि से आते थे इसलिए किसान और सिपाही का सामाजिक आधार एक ही था। किसान के रूप में निलहों से शोषित होने वाले लोग सिपाहियों के भाई–बन्धु ही थे इसलिए दुःख की दोनों को समान अनुभूति थी। अंग्रेज विद्वान एरिक स्टोक्स ने इसी किसान–सिपाही संदर्भ को आधार बनाकर 1857 की घटना को कृषक सेना का विद्रोह कहा है और विद्रोह के कारण को कृषक समाजिक ढाँचे और ग्रामीण समाज में खोजा है। किसानों के समर्थन ने इस विद्रोह को सैन्य विद्रोह को नागरिक विद्रोह में तब्दील कर दिया था।[10] बिहार में नील की खेती से बेदम किसानों ने 1857 के बगावत में खुलकर भाग लिया था। सिपाहियों के हौसले ने किसानों के अन्दर प्रतिरोध का जज्बा पैदा कर दिया और निलहों को 1857 में अपने क्षेत्र से भागने के लिए मजबूर कर दिया था। चम्पारण जिले का सुगौली में बगावत की चिंगारी सर्वप्रथम भड़की जहाँ मेजर होम्स के सैन्य कानून से लोग परेशान थे इसने

गोरखपुर से पटना तक के क्षेत्र में सैन्य कानून लागू कर दिया था। इस आतंक से तंग आकर होम्स का परिवार समेत कत्ल कर दिया गया।[11]

बिहार में बगावत की शुरूआत पटना के नजदीक दानापुर छावनी से 25 जुलाई 1857 को हुआ था। दानापुर से आरा के लिए सैनिको ने जब प्रस्थान किया तब रास्ते में सरकारी प्रतिष्ठानों को वे नष्ट करते हुए आगे बढ़ रहे थे इसी क्रम में सोन नदी के किनारे स्थित नील के कारखाने को भी नष्ट किया गया था। सोन नदी के तट पर नानसागर में स्थित नील फैक्ट्री का मालिक डोरमंड गाँव में छुपकर अपनी जान बचाया। डोरमंड की फैक्ट्री को लूट लिया गया और तरारी में आर. सोलानो, शाहाबाद में मूर की फैक्ट्री, बक्सर में मैथ्यू की फैक्ट्री कोईलवर में आर. प्लेन की सम्पति को तथा नवलागढ़ स्थित डोरमंड की नील फैक्ट्री को विद्रोहियों ने बर्बाद कर दिया था।[12] मेरठ में 10 मई की घटना के बाद से ही अंग्रेजों को यह अंदेशा हो गया था कि बिहार भी इससे अछुता नहीं रहेगा। सर्तकता की कार्यवाईयाँ सरकार कर रही थी। अधिकारियों को पत्र लिखकर सभी आवश्यक तैयारी के निर्देश दिये जा रहे थे विभिन्न जिलों से सरकारी खजाना पटना पहुँचाया जा रहा था। विषम परिस्थिति से निपटने के लिए अंग्रेज शहरों में मजबूत अवास तैयार कर रहे थे जहाँ विषम परिस्थिति में छिपा जा सके। सरकार अधिकारियों, यूरोपिय व्यापारियों समेत सभी गैर भारतीय लोगों को संभावित खतरे से आगाह कर रही थी और मदत भी माँग रही थी। दिनांक 3 जुलाई को मुजफ्फपुर के मजिस्ट्रेट एच. रिचार्डसन ने पटना के आयुक्त को लिखे पत्र में संभावित बगावत से निपटने के लिए किये जा रहे संभावित तैयारियों का ब्योरा दिया है। पत्र में इस बात को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है कि निलहे साहबो को सरकार के काम में सभी तरह के सहायता देने का आदेश दिया गया है।[13] पत्र से स्पष्ट है कि सरकार और निलहों के बीच अत्यंत ही सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे और सरकार के सहयोग से निलहे, किसानों का शोषण कर रहे थे अब सरकार को निलहों की जरूरत पड़ी थी तो निलहों को सहायता देने के लिए कहा गया था। निलहों ने इस बगावत में सरकार का भरपूर साथ दिया तिरहुत के जमादार वारिस अली को पकड़ने के लिए निलहे लोग ही गये थे। वारिस अली गिरफ्तारी के समय बगावत के लिए अली करीम को पत्र लिख रहे थे। निलहों ने वारिस अली को गिरफ्तार करके पटना भेज दिया जहाँ वारिस अली को विलियम टेलर की अदालत ने फाँसी की सजा सुनाया। बगावत के दौरान निलहों को मानद मजिस्ट्रेट का दर्जा भी दिया गया था ताकि गिरफ्तार लोगों को तुरन्त सजा दिया जा सके और उन्हें जज के सामने पेश करने की जरूरत न पड़े।

तिरहुत और चम्पारण नील की खेती के बाहुल्य वाले क्षेत्र थे। बगावत के शुरूवात होते ही निलहे यहाँ भयभित हो गये थे। चम्पारण के निलहों ने 29 जुलाई 1857 को दानापुर कमाण्डर को लिखे अपने पत्र में बताया कि जिले में भारी खतरा उत्पन्न हो गया है। यह एक बड़ा जिला है और विद्रोह होने पर पूरे जिले में फैल सकता है। पूरा प्रशासन पूसा में सिमट कर रह गया है। उनके कारखानों को ध्वस्त करे जला दिया गया है। पचास अथवा तीस यूरोपियन सैनिकों की टुकड़ी स्थिति पर काबू पा सकती है हमें विश्वास है कि हमारे परिवार को दानापुर ले जाने के लिए एस्कार्ट पार्टी की व्यवस्था की जायेगी।[14] स्पष्ट है कि निलहे अपने के सदस्यों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना चाह रहे थे क्योंकि विद्रोह जनयुद्ध बन गया था। सिपाही तथा

किसान निलहे और उनके नील के कारखानों को निशाना बना रहे थे। 31 जुलाई 1857 को तिरहुत के नाजुक स्थिति को देखते हुए निलहों को जिला छोड़ने का निर्देश जारी कर दिया गया। यहाँ गाँवों में इस अफवाह ने जोर पकड़ लिया की अंग्रेजी राज खत्म हो गया है। गाँव के लोग सरकार के कानूनों का उल्लंघन कर रहे थे अंग्रेज लोग ऐसे गाँवों को चिन्हित करके लोगों को सजा दे रहे थे ताकि लोगों में इस बात का खौफ बना रहे कि राज अभी भी कायम है। गाँव के लोगों ने यूरोपियन लोगों पर हमले किये और उनके घरों में डकैती का प्रयास किया इस मामलें में सभी आरोपी ग्रामीण थे। जिले का बेलसड़ और बड़कागाँव में लोगों को राजद्रोहात्मक भाषा के प्रयोग करने के आरोप में सात लोगों को कालापानी की सजा दी गई। विद्रोह की तीव्रता को देखते हुए शीघ्र ही सरकार ने यहाँ गोरखा रेजिमेंट को बुला लिया था तब जाकर विद्रोह पर काबू पाया जा सका था।[15] सारण में भी विद्रोहियों के डर से निलहे परेशान थे इन्होंने अपने सुरक्षा एवं सरकार की मदत के लिए तिरहुत एवं छपरा के 53 चयनित लोगों को मिलाकर बिहार हौर्स नामक वॉलंटरी संगठन बनाया जिसका उद्देश्य बागियों से निलहों की सुरक्षा करना था। निलहों ने सारण में विद्रोह से निपटने में सरकार को सहायता प्रदान किया।[16]

बगावत में किसानों के शामिल होने के अपने स्थानिय एवं व्यक्तिगत कारण थे जिसके केन्द्र में नील के खेती से उपजे हुए हालात थे। बड़कागाँव में किसानों द्वारा निलहों के रोड पर बैलगाड़ी चलाने के आरोप में कार्यवाही हुई जिसके कारण किसान विद्रोह पर उतारू हो गये। निलहों के अत्याचारों से जिन किसानों की जमीन–जायदाद चली गई थी, ऐसे लोगों ने राज के खिलाफ हथियार उठाया था। शाहाबाद का नील किसान सरनाम सिंह ने गिरफ्तारी के बाद सुनवाई के दौरान बताया कि मैंने सरकार के खिलाफ सिर्फ इसलिए बगावत किया था कि एक नील की खेती करने वाले ने मेरे खिलाफ मुकदमा दायर किया जिसके कारण मेरा घर लूटा और जला दिया गया। सरनाम सिंह पर तेलकप और चंद्रपुर नील फैक्ट्री जलाने का आरोप था। सुनवाई के दौरान सरनाम सिंह ने स्वीकार किया कि उसके परिवार वालो ने इस घटना को अंजाम दिया और वह रोहतास के लोगों के कृपा से इतने दिनों तक बचा रहा।[17] बगावत के दौरान इस तरह के अनेको मामले देखे गये जिसमें किसान निलहों के शोषण से तंग आकर बगावत में शामिल हो गये ऐसे लोगों को स्थानीय लोगों का समर्थन भी प्राप्त था क्योंकि लोग पीड़ित लोगों के साथ हो रहे अन्याय के साक्षी थे। इन्हीं लोगों के मदद से नील फैक्ट्रीयों और निलहों पर हमला बोलने वाले किसान महीनों तक सरकार के नजर से बचे रहे। सरनाम सिंह ने बयान में स्वयं इस बात को स्वीकार किया था।

## निष्कर्ष

बिहार में 1857 का संघर्ष सभी समुदाय के लोगों का मिला–जुला संघर्ष था जिसमें सभी असंतुष्ट समुदाय के लोगों ने भाग लिया था परन्तु सिपाहियों और किसानों की भूमिका इसमें अग्रणी थी। सिपाहियों की संख्या सीमित थी उन्होंने बगावत की शुरूवात किया था। शोषित किसान संख्या में ज्यादा थे इन्होंने बगावत में शामिल होकर इसे गाँव–गाँव तक इसे फैलाया जिससे बगावत जनसंघर्ष में तब्दील हो गया था। एरिक स्टोक्स ने इसी सिपाही–किसान गठजोड़ को आधार बनाकर कृषक सेना के विद्रोह का विचार प्रतिपादित किया था। जय जवान,

जय किसान की भावना बिहार में इस बगावत के समय साकार हो रही थी। नील के खेती से उत्पन्न असंतोष ने बगावत के अग्नि में घी का काम किया जवान (सिपाही) और किसान की एकता देश के तकदीर और तस्वीर दोनों बदल सकती है इस उक्ति को बिहार में 1857 के बगावत में चरितार्थ किया गया जब अंग्रेज और निलहे अपनी जान बचाने के लिए बिहार के विभिन्न भागों से पटना एवं दानापुर भाग रहे थे। पटना के कमिश्नर विलियम टेलर ने स्वयं निर्देश जारी किया कि केन्द्रिय शक्ति की रक्षा के लिए सर्वस्व बलिदान करने का समय आ गया है, सभी लोग पटना पहुँचो। 1857 का संघर्ष सरकार के दमनकारी शक्ति के समक्ष नहीं टिक पाया और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल हो गया क्योंकि देशी राजनीतिक ताकतों ने ब्रिटिश हुकूमत का साथ दिया था किन्तु 1857 के संघर्ष ने बता दिया कि जन चेतना अब जागृत हो चुकी है और किसी भी तरह के अन्याय का प्रतिकार संगठित होकर किया जायेगा। किसान 1857 के बाद राजनीतिक रूप से संगठित होकर राजनीतिक रूप से मजबूत होकर शोषणकारी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करते रहे और 1917 में नील के दाग को अपने जीवन से मिटाया।

❒

*सन्दर्भ –*


1. *वर्मा, हरिश्चन्द्र (2015), मध्यकालीन भारत भाग–2 (1540–1761), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, पृ. 399.*
2. *वर्मा, हरिश्चन्द्र (2015), मध्यकालीन भारत भाग–2 (1540–1761), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, पृ. 356.*
3. *संह, मुरली मनोहर प्रसाद एवं चौहान, चंचल (2010), 1857 इतिहास कला साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई ि दल्ली, पृ. 53.*
4. *पुष्यमित्र (2020), जब नील का दाग मिटा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 25.*
5. *Singh, N.P. (1981), The Indigo Industry of Bihar and The Oppression of Ryots (1833-58), p.503.*
6. *शुक्ल, प्रभात कुमार (2022), नील की खेती और अंग्रेजी राज, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 18.*
7. *Singh, N.P. (1981), The Indigo Industry of Bihar and The Oppression of Ryots (1833-58), p. 505-06.*
8. *श्रीवास्तव, उदय कुमार एवं पराशर अभिशेक (2019), नील की खेती और चम्पारण सत्याग्रह, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 16.*
9. *शुक्ल, प्रभात कुमार (2022), नील की खेती और अंग्रेजी राज, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 109.*
10. *सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद एवं चौहान, चंचल (2010), 1857 इतिहास कला साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 47.*
11. *श्रीवास्तव, उदय कुमार एवं पराशर अभिषेक (2019), नील की खेती और चम्पारण सत्याग्रह, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 34.*
12. *यादव, डॉ. मनीता कुमारी (2014), बिहारकी जनता और 1857 ई. का विद्रोह, जानकी प्रकाशन, पटना, पृ. 58.*
13. *दत्त, के.के. (2014), बिहार में स्वातंत्र्य आन्दोलन का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ. 28.*
14. *29 जुलाई 1857 को निलहों द्वारा दानापुर के कमाण्डर को लिखा गया पत्र।*
15. *चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत (2015), 1857 बिहार में महायुद्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 246.*
16. *चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत (2015), 1857 बिहार में महायुद्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 255.*
17. *चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत (2015), 1857 बिहार में महायुद्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 276.*

**पूर्वदेवा**– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 49–64*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# गोंड जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक जीवन एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद के विशेष सन्दर्भ में)

**डॉ. दीपक कुमार खरवार**
पोस्ट–डाक्टरल फेलो (ICSSR), समाजशास्त्र विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ
E-mail - dkbhu9454@gmail.com

**सारांश**

*गोंड समुदाय की सामाजिक संरचना काफी पुरानी और अनूठी है। यह व्यवस्था अपने अनोखेपन के साथ अभी तक चल रही है। समय–समय पर दूसरे समुदायों द्वारा कई तरह के हस्तक्षेप का सामना करने के बावजूद गोंड समुदाय अपनी परम्पराओं के साथ जीवन–यापन कर रहा है। गोंड समुदाय से जुड़ी सामाजिक व्यवस्था के अध्ययन से पता चलता है कि यह समुदाय अब अपने सामाजिक विकास के शुरूआती चरण से काफी आगे बढ़ चुका है, जबकि इससे जुड़े कुछ तबके सभ्यता के अपेक्षाकृत आधुनिक चरण से भी जुड़ चुके है।*[1]

*प्रस्तुत शोध पत्र गोंड जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक जीवन : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन में उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद की गोंड़ जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति के विश्लेशण पर आधारित है। इस शोध पत्र में प्राथमिक तथ्यों के आधार पर समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से यह जानने का प्रयास किया गया है कि स्वतंत्रता के सात दशक बाद जब देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है तब आधुनिकता के इस दौर में गोंड जनजातीय समुदाय की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों में कितना सकारात्मक परिवर्तन हुआ है या आज भी गोंड जनजाति वाछिंत परिवर्तन से कितना अछूते हैं? उपरोक्त पृष्ठभूमि में यह शोध पत्र गोंड जनजातीय समुदाय और विकास के इस क्रम में उनके सामाजिक, आर्थिक जीवन में कितना परिवर्तन हुआ है को नये परिप्रेक्ष्य से समझने में सहायक होगा।*

**मुख्य शब्दः** जनजाति, गोंड, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, विकास।

## प्रस्तावना

व्यक्ति की सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि का सार्वभौमिक प्रभाव मानव जीवन की सम्पूर्णता को प्रस्तुत करता है। सामाजिक दृष्टि से देखा जाय तो किसी भी व्यक्ति का

सामाजिक अस्तित्व उसके व्यक्तिव, विचारधाराओं तथा मूल्यों को निर्धारित करता है। भारत विविधताओं का देश है, जिसमें विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, जाति आदि समुदाय के लोग रहते है और सबकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व्यवस्थाएं एक–दूसरे से भिन्न है। जिनमें से आदिवासी समाज भी एक है। जो बृहत्तर भारतीय समाज से पृथक हमेशा प्राकृतिक क्षेत्रों में निवास करते रहे है और इनकी भी मुख्यधारा के समाज से अलग अपनी पृथक संस्कृति, भाषा, धर्म, रीति–रिवाज एवं व्यवस्था रही है। सदियों से उनका भूमि, वन और अन्य संसाधनों पर नियंत्रण रहा है और वे स्वयं के कानूनों, परम्पराओं और रीति–रिवाजो से शासित रहे है। वे अपना विकास स्वयं करते रहे है। लेकिन विकास के क्रम में जहाँ एक तरफ कुछ जनजातीय समुदायों ने विकास के साथ स्वयं को समाज की मुख्यधारा के साथ अपने आप को समायोजित कर लिया है, वहीं दूसरी तरफ कुछ ऐसी जनजातियाँ है जो आज भी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं अन्य दृष्टि से बहुत पिछड़ी हुई है। लेकिन समय के विकासक्रम एवं परिवर्तन के परिणामस्वरूप जनजातीय समाज परिवर्तन के चक्र से अछूता नहीं रह सका है और विकास एवं आधुनिकीकरण के कारण इनकी मूल संरचना प्रभावित हुई है। जिसके कारण इसके सामाजिक एवं आर्थिक प्रतिमानों में व्यापक रूप से परिवर्तन हुआ है। जिसके क्रम में उत्तर प्रदेश के सोनभद्र के गोंड़ जनजातीय समुदाय भी इससे अछूता नहीं रहा है तथा विकास एवं आधुनिकीकरण के कारण इनकी जीवनशैली एवं आर्थिक संरचना में परिवर्तन हुआ है जिसका व्यापक प्रभाव सोनभद्र के गोंड जनजातीय समुदाय के सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था पर देखा जा सकता है। यहां के जनजातीय समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी सरकार के द्वारा आदिवासियों के विकास के लिए किए जा रहे निरंतर प्रयास के बावजूद शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, चिकित्सा, परिवहन जैसी मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। इस शोध पत्र में मुख्य रूप से गोड़ जनजाति समाज को केन्द्रित किया गया है जो भारत के विविध राज्यों में पायी जाती है। सोनभद्र के सन्दर्भ में देखा जाए तो इनकी स्थिति ठीक नहीं है और ये आज भी विभिन्न समस्याओं से घिरे हुए है और गरीबी में जीवन यापन करने के लिए मजबूर है।

## साहित्य समीक्षा

**एल्विन (2007)**[2] ने अपनी पुस्तक **"एक गोंड गांव में जीवन"** में जिसे वर्ष 1932 में मध्य प्रदेश के मंडला जिले में करंजिया गाँव का सहभागी अवलोकन प्रविधि द्वारा गोंड आदिवासियों के जीवन के सभी पहलुओं (सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक) का विस्तृत वर्णन किया है। अपने अध्ययन में वनों और पहाड़ों के निकट रहने वाले गोंड आदिवासियों की प्रथाओं, परम्पराओं और जीवनशैली का सरलतम रूप में उल्लेख किया है, जिससे गोंडों को जानने व समझने में आसानी होती है। एल्विन द्वारा करंजिया गाँव को ही अध्ययन के लिए चयन करना भी उनकी दूरदर्शिता को दर्शाता है, जो बिलकुल प्रकृति के निकट तथा अन्य समाज से कटा हुआ है। उनकी आजीविका के निर्वाह का स्तर अत्यंत निम्न होने का एक प्रमुख कारण यह है, कि उनकी उत्पादित वस्तुओं का बाजार में साहूकारों द्वारा उचित मूल्य नहीं देना तथा वन विभाग द्वारा आदिवासियों से बेगारी कराना है, तथा उनमें कृषि कार्यों के प्रति जानकारी का अभाव होना

और केवल भरण–पोषण के लिए ही ऊपज करना तथा शेष समय में मनोरंजन और महुए की शराब का सेवन व नृत्य करना है। इस प्रकार इस दोहरी शोषणकारी व्यवस्था से उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय बनी रहती है, जिससे उनकी सामाजिक और स्वास्थ्यगत स्थिति भी निम्न होती है, जिसके फलस्वरूप उनमें कुपोषण, कुष्ठ रोग और अन्य बीमारियां व्याप्त हैं तथा इन बीमारियों के प्रति जागरूकता का पूर्णतया अभाव भी है। अपनी बीमारियों को वे ईश्वर का अभिशाप मानते हैं तथा अपना इलाज ओझाओं व पंडा बाबा की सहायता से करते हैं तथा प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का भी अनुसरण करते हैं।

**मधुकर (2014)**[3] ने अपने लेख **"झारखण्ड की जनजातियां"** में कहते है कि झारखण्ड की जनजातियों को विकास का उतना लाभ नहीं मिला जितना धन उनपर खर्च किया गया। इसका प्रमुख कारण जनजातियों के सोच और दृष्टि के मुताबिक विकास नहीं करना हो सकता हैं। आगे वे कहते है कि आदिम जनजातियों की लगभग 95 फीसदी से भी अधिक आबादी आज भी शिक्षा से वंचित है। हालाकिं इन क्षेत्रों में सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम चलाए जा रहे है। बिरिजिया, असुर और कोरबा जैसी हुनर वाली जनजातियां अब बेरोजगार हो गयी है क्योंकि अब गाँवों में कारखानों से बने सामान सस्ते कीमत पर पहुँचने लगे है। अब इनका जीवन पास के जंगल से छोटे–मोटे शिकार और शराब पर टिका हुआ है। मधुकर कहते है कि आदिम जनजातियों की इच्छा, जरूरत और उनकी गति से जब तक विकास तय नही किया जायेगा और जब तक उनके द्वारा ही विकास कार्य नही करवाया जायेगा तब तक विकास की राशि बिचौलिए खाते रहेंगे और यह माना जाता रहेगा कि उनका विकास किया जा रहा है।

**सिंह (2008)**[4] ने अपनी पुस्तक **"ट्राइब्ल डेव्लपमेंट इन इंडिया"** में आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप जनजातीय अर्थव्यवस्था में हुए बदलावों का अध्ययन किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आधुनिकीकरण और विकास की सामाजिक–आर्थिक ताकतों के कारण सम्बन्धित क्षेत्रों के लोगों को कुछ लाभ मिले हैं लेकिन उनसे मिलने वाले लाभों से कहीं ज्यादा उससे नुकसान हुआ है। विकास प्रेरित विस्थापन, अनैच्छिक प्रवासन और पुनर्वास ने जनजातियों के हाशिए को जन्म दिया है और उनके सामने बड़ी समस्याएं खड़ी कर दी है। नई आर्थिक पद्धति ने अर्थव्यवस्था के निजीकरण और बाजारीकरण का नेतृत्व किया है जिसको आदिवासी समुदायों के अस्तित्व के लिए वृहद खतरा माना गया है।

**कोरेति (2022)**[5] ने अपने लेख **"गोंड समुदाय की समृद्ध विरासत"** में कहते है कि भारत के जनजातीय समूहों की सामाजिक–सांस्कृतिक बारीकियों को प्रमुखता से पेश करने की जरूरत है, खास तौर पर मध्य भारत के गोंड समुदाय के सांस्कृतिक पहलुओं के बारे में भी बताया जाना चाहिए। वे बताते है कि गोंड समुदाय में कई उप–जनजातियाँ हैं। हालांकि, सांस्कृतिक और नस्लीय तौर पर ये सभी एक जैसी हैं। गोंड समुदाय की सामाजिक संरचना काफी पुरानी और अनुठी है। यह सामाजिक व्यवस्था इस समुदाय के मार्गदर्शक और गुरू पहाँदी कुपार लिंगों द्वारा स्थापित की गई थी। यह व्यवस्था अपने अनोखेपन के साथ अभी तक चल रही है। आगे वे कहते है कि गोंड समुदाय ने अपनी सामाजिक संरचना में खुद की

सांस्कृतिक परम्परा विकसित की है और इसमें अन्य संस्कृति का ज्यादा प्रभाव नहीं है। उनकी सांस्कृतिक परम्पराएँ सरल हैं और वाचिक परम्परा के जरिए इन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के बीच पहुँचाया जाता है।

**कुलकर्णी, एस0 (1994)**[6] ने अपनी लेख *"ट्राइबल कम्यूनिटीज इन इंडियाः टुडे एंड टुमारो"* में भारत के जनजाति समुदायों को वर्तमान एंव भविष्य दोनों दृष्टियों से देखने का प्रयास किया हैं। वे जनजाति समुदायों द्वारा सघर्ष की जाने वाली मुख्य समस्याओं जैसे– गरीबी, भूमि से अलगाव, वनों पर से उनके अधिकारों का हनन, शोषण एंव उनके प्राकृतिक कार्यक्षेत्रों से विस्थापन आदि का वर्णन–विश्लेषण किया हैं। दूसरी तरफ जनजातियों की स्थितियों के सकारात्मक पक्ष जैसे शिक्षा और नौकरियों में आरक्षण, सफल जनजाति–विशिष्ट आर्थिक नियोजन और सरकार के साथ–साथ स्वैच्छिक संगठनो द्वारा उठाए गए अन्य विकास गतिविधियों पर भी ध्यान केन्द्रित किया हैं। कुलकर्णी अपने इस लेख में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं को संतुलित करके जनजातियों की स्थिति पर बहुत ही अच्छा विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

**दुबे, श्यामाचरण (1996)**[7] ने अपनी पुस्तक *"समय और संस्कृति"* में आदिवासी और उनके स्थानीय प्राकृतिक परिवेश में हो रहे विषम विकास की व्याख्या को प्रस्तुत किया हैं। उनका मानना है कि वन राष्ट्रीय संपदा हैं लेकिन हजारों वर्षो से जंगलो में आदिवासी रहते हुए आये हैं। जिसके परिणामस्वरुप इनके संस्कृतियों का विकास स्थानीय प्राकृतिक परिवेश के अनुसार हुआ हैं। विशेषकर आदिवासियों की अर्थव्यवस्था वनों पर निर्भर रही है। इसलिए विकास या वनों की रक्षा के नाम पर हम उन्हें अपने पारंपरिक अधिकारो से वचिंत नही कर सकते। लेकिन प्रायः यह देखने को मिलता हैं कि आदिवासी क्षेत्रों में बहुमूल्य समझे जाने वाले खनिज संपदा का भण्डार होता हैं इसलिए इन क्षेत्रों में बड़े–बड़े उद्योग स्थापित किये जाते है। व्यापक सामाजिक हित के लिए यह जरुरी तो हैं लेकिन इसके साथ–साथ आदिवासियों के हितों का ध्यान रखना भी उतना ही जरुरी हैं। लेकिन अब तक ये प्रयत्न दुर्बल और अप्रभावी रहे हैं। इसलिए आदिवासियों के लिए विकल्प की तलाश हमें सहानुभूति और दूरदर्शिता से करना हैं। प्रयास यह करना हैं कि विकास या औद्योगीकरण की प्रक्रिया उनके लिए अप्रिय और विघटनकारी न हो।

उपर्युक्त साहित्य समीक्षा के विश्लेषण के आधार पर देखा जाये तो आदिवासी क्षेत्रों में हुए विकास कार्यों या सरकारी योजनाओं व कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के उपरांत भी शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, जीविकोपार्जन जैसी बुनियादि आवश्यकताओं से वंचित है। उनके सामाजिक–आर्थिक स्थितियों में कुछ खास परिवर्तन नहीं हुआ है। वे आज भी गरीबी में जीनें के लिए मजबूर है।

## शोध के उद्देश्य

1. गोंड जनजातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति एवं उनके पिछड़ेपन के मुख्य कारणों का पता लगाना।

**अध्ययन पद्धति**

प्रस्तुत शोध पत्र हेतु उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श के आधार पर उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद का चयन किया गया है। सोनभद्र जनपद में कुल 8 विकासखण्ड है। अध्ययन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु बभनी विकासखण्ड का चयन किया गया है। असंभावनामूलक प्रतिचयन (Non-Probability Sampling) के अन्तर्गत उद्देश्यात्मक प्रतिचयन (Purposive Sampling) के माध्यम से बभनी ग्राम पंचायत से 100 गोंड जनजातियों को अध्ययन के लिए चुना गया है। अध्ययन की प्रकृति व उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वर्णनात्मक (Descriptive) शोध पद्धति का उपयोग किया गया है, जिससे अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं के बारे में सही–सही जानकारी प्राप्त हो सके।[8] इस अध्ययन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों पद्धतियों का भी उपयोग कर चयनित उत्तरदाताओं से साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त तथ्यों के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

**उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि : अध्ययन क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में**

किसी भी शोध विषय में उत्तरदाताओं की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का ज्ञान आवश्यक होता है क्योंकि पृष्ठभूमि के माध्यम से ही उत्तरदाताओं एवं उनके परिवार के विचारों, मनोवृत्तियों, मूल्यों, विश्वासों व आर्थिक स्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता है, जिससे शोध विषय से सम्बन्धित विषयों के महत्वपूर्ण जानकारी हासिल करने में सहायता मिलती है। इसलिए प्रस्तुत शोध पत्र के अन्तर्गत चयनित गोंड़ जनजातीय परिवारों में से परिवार के सबसे बुजुर्ग सदस्य से सम्पर्क किया गया है। जिससे हमें गोंड जनजातीय समाज से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी मिल सके। इसके साथ ही सम्बन्धित तथ्यों का विवेचन व तथ्यपूर्ण विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

**परिवार में उच्चतम शैक्षिक स्तर**

आदिवासी जनजीवन सामान्यतः अपनी विशिष्ट संस्कृति और परंपराओं के लिए जाना जाता है। आधुनिक शिक्षा का प्रसार और सभी तक पहुँच ही आदिवासियों को जीवन में समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए अतिआवश्यक है। इसलिए मानव संसाधन विकास के लिए शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण साधनों में एक है क्योंकि यह बच्चों के बुनियादी विचारों, आदतों और दृष्टिकोणों को अच्छी तरह से संतुलित व्यक्तियों के निर्माण की दृष्टि से ढालने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आदिवासियों के लिए नई तालीम की आवश्यकता को बहुत पहले से ही महसूस किया था और इसके लिए उन्होनें आजादी के बाद आश्रम शालाओं जैसी अवधाराणा को बढ़ावा दिया ताकि दूरदराज के पहाड़ी और आदिवासी क्षेत्रों के बच्चों को भी बेहतर शिक्षा मिल सके।[9] शिक्षा किसी भी व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सामुदायिक जीवन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा सामाजिकरण की प्रक्रिया ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों को दूसरी पीढ़ियों तक पहुँचानें तथा विभिन्न समस्याओं का सर्वोत्तम हल ढूँढ़ने का भी सबसे अच्छा माध्यम है। इसी सन्दर्भ में सोनभद्र की गोंड़ जनजातियों में अधिकतम शैक्षिक स्थिति को निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

**तालिका क्रमांक : 1**
**परिवार में उच्चतम शैक्षिक स्तर की स्थिति**

| क्र. | उच्चतम शैक्षिक स्थिति | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | अशिक्षित | 2 | 2.0 |
| 2. | प्राथमिक | 20 | 20.0 |
| 3. | माध्यमिक | 39 | 39.0 |
| 4. | हाईस्कूल | 15 | 15.0 |
| 5. | इण्टरमीडिएट | 11 | 11.0 |
| 6. | स्नातक | 13 | 13.0 |
| 7. | डिप्लोमा | 0 | 0.0 |
| | **योग** | 100 | 100.0 |

**स्रोत**–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 1 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 2.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में लोग अशिक्षित है, 20.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में लोग अधिकतम शिक्षा प्राथमिक तक, 39.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में लोग अधिकतम शिक्षा माध्यमिक तक, 15.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में लोग अधिकतम शिक्षा हाईस्कूल तक, 11.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में लोग अधिकतम शिक्षा इण्टरमीडिएट तक, 13.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में लोग अधिकतम शिक्षा स्नातक तक प्राप्त किए है तथा डिप्लोमा करने वाला कोई भी सदस्य उत्तरदाताओं के परिवार में कोई नहीं है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अधिकांशत 39.0 प्रतिशत गोंड जनजाति के परिवार में लोग वर्तमान में अधिकतम शिक्षा माध्यमिक तक ही ग्रहण कर पाये है। हाईस्कूल, इण्टरमीटिएट और स्नातक तक शिक्षा प्राप्त करने वाले गोंड समुदाय में लोगों की संख्या अभी भी बहुत कम है। जहां एक तरफ विज्ञान चाद और मंगल ग्रह पर जीवन तलाश रहा है वहीं दूसरी तरफ स्वतंत्रता के लगभग 70 साल बाद भी जनजातीय समाज में शिक्षा की स्थिति बहुत दयनीय बनी हुई है। इसका कारण उनके स्थानीय निकायों में स्कूल, महाविद्यालयों का न होना। इनकी शिक्षा के लिए सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं का अच्छे से लागू न होना तथा गरीबी आदि समस्याओं का मौजूद होना है।

### परिवार की कुल मासिक आय

वर्तमान समय में तकनीकी परिवर्तन से जनजातियों के समक्ष अस्तित्वगत चुनौती खड़ी हो चुकी है। आज उनका परम्परागत आजीविका का साधन छिन गया है। इससे सबसे बड़ी समस्या रोजगार की उत्पन्न हो गयी है।[10] विकास, विस्थापन, वनोन्मुलन व गरीबी जैसी अनेक समस्याओं ने जनजातीय समाज के सामने विषम परिस्थिति को खड़ा कर दिया है। यद्यपि परिवार की आर्थिक स्थिति न केवल परिवार के सामाजिक स्तर, आर्थिक क्षमता तथा राजनैतिक स्तर के निर्धारण में सहायक होता है बल्कि इसके आधार पर परिवार में व्यक्ति स्वास्थ्य, शिक्षा, दो जून की रोटी जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होता है।

**तालिका क्रमांक : 2**

**उत्तरदाताओं के परिवार की कुल मासिक आय**

| क्रं. | परिवार की कुल आय | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | 1000–5000 | 28 | 28.0 |
| 2. | 6000–10000 | 33 | 33.0 |
| 3. | 11000–15000 | 32 | 32.0 |
| 4. | 16000–20000 | 5 | 5.0 |
| 5. | 21000 या अधिक | 2 | 2.0 |
| | **योग** | 100 | 100.0 |

**स्रोत**–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 2 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 28.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार की कुल आय 1000–5000 रूपये के मध्य है, 33.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार की कुल आय 6000–10000 रूपये के मध्य है, 32.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार की कुल आय 11000–15000 रूपये के मध्य है, 5.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार की कुल आय 16000–20000 रूपये के मध्य है तथा 2.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार की कुल आय 21000 या इससे अधिक है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सोनभद्र के अधिकांशतः 33.0 प्रतिशत तथा 32.0 प्रतिशत गोंड़ समुदाय ऐसे है जिनके परिवार की कुल मासिक आय क्रमशः 6000–10,000 रूपये तथा 11,000–15,000 के मध्य है तथा शेष ऐसे बहुत कम उत्तरदाता है जिनके परिवार की कुल मासिक आय 1000–5000 रूपये के मध्य, 16000–20000 रूपये के मध्य या 21000 या इससे अधिक की है। इससें यह प्रतित होता है कि इस मंहगाई के दौर में एक गोंड समुदाय के व्यक्ति को अपना परिवार का भरण–पोषण करना कितना कठिन होता होगा। क्योंकि सोनभद्र के गोंड आदिवासी में आज भी संयुक्त परिवार विद्यमान है और परिवार में सदस्यों की संख्या लगभग 6 से 7 लोग होते है। इतने कम आय में परिवार के सदस्यों का शिक्षा, स्वास्थ्य और दो वक्त का आजीविका उपलब्ध करा पाना अपने आप में एक चुनौतिपूर्ण कार्य है।

**आय के साधन**

हमारा व्यवसाय हमारे जीवन की दिनचर्या को काफी हद तक प्रभावित करता है। हमारा सामाजिक आदान–प्रदान और जीवन शैली भी इससे प्रभावित होती है। इसलिए व्यवसाय, समाज में हमारी प्रस्थिति का एक महत्वपूर्ण घटक होता है तथा साथ ही यह हमारी आर्थिक क्षमता को भी निर्धारित करता है। आर्थिक स्थिति के आधार पर ही हमारी क्रय व उपभोग शक्ति निर्भर करती है। हमारा व्यवसाय हमारे व्यवहार के स्वरूप तथा अन्तः क्रिया के प्रतिमानों को भी प्रभावित करता है। एक ओर जहाँ हमारी व्यवसायिक स्थिति तथा आर्थिक क्षमता प्रत्यक्ष रूप से हमारे जीवन शैली एवं स्तर को निर्धारित करती है, वहीं दूसरी ओर यह विभिन्न व्यवसायों की प्रकृति और कार्य की दशाओं को भी प्रभावित करती है।

**तालिका क्रमांक : 3**

उत्तरदाताओं के आय के साधन

| क्र. | काम करने का स्वरूप | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | कृषि एवं पशुपालन | 26 | 26.0 |
| 2. | मजदूरी | 2 | 2.0 |
| 3. | कृषि, पशुपालन एवं मजदूरी | 55 | 55.0 |
| 4. | व्यवसाय | 8 | 8.0 |
| 5. | प्रा. नौकरी | 3 | 3.0 |
| 6. | स. नौकरी | 1 | 1.0 |
| 7. | अन्य | 5 | 5.0 |
| | **योग** | **100** | **100.0** |

**स्रोत**–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 3 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 26.0 प्रतिशत गोंड उत्तरदाता कृषि एवं पशुपालन करते है, 2.0 प्रतिशत मजदूरी करते है, 55.0 प्रतिशत कृषि, पशुपालन एवं मजदूरी तीनों काम करते है, 8.0 प्रतिशत व्यवसाय करते हैं, 3.0 प्रतिशत प्राइवेट नौकरी करते है, 1.0 प्रतिशत सरकारी नौकरी करते है तथा 5.0 प्रतिशत गोंड उत्तरदाता अन्य (ठेला चलाते है या डाइवर का काम) काम करते है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सर्वाधिक 55.0 प्रतिशत गोंड उत्तरदाताओं के यहां जीवन–यापन के लिए कृषि, पशुपालन एवं मजदूरी तीनों कार्य किया जाता है तथा इसके बाद अधिकांश 26.0 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जो जीवन यापन करने के लिए सिर्फ कृषि एवं पशुपालन करते है। ऐसे बहुत कम उत्तरदाता है जो प्राइवेट नौकरी, सरकारी नौकरी, व्यवसाय तथा अन्य काम करते है। यहां अन्य काम का तात्पर्य ठेला चलाना, सिलाई का काम, ड्राइवर आदि का काम करने से है। इससे तो यही प्रतीत होता है कि सोनभद्र क्षेत्र के गोंड जनजाति के सामने व्यवसाय या काम से सम्बन्धित समस्याएं मौजूद है। समकालीन समय में भी उन्हें वह काम करना पड़ रहा है जिससे वह आज भी अपने परिवार का दैनिक जीविकोपार्जन भी ठकि से नहीं कर सकते है।

**तालिका क्रमांक : 4**

उत्तरदाताओं को वर्ष में कार्य मिलने की उपलब्ता

| क्र. | वर्ष में हर समय काम मिलने की उपलब्ता | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | हाँ | 15 | 15.0 |
| 2. | नहीं | 63 | 63.0 |
| 3. | काम नहीं करते है | 22 | 22.0 |
| | **योग** | **100** | **100.0** |

**स्रोत**–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 4 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 15 प्रतिशत उत्तरदाताओं को वर्ष में हर समय काम मिल जाता है, 63.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को वर्ष में हर समय काम नहीं मिलता है तथा 22.0 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जो किसी कारण से काम नहीं करते हैं।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सर्वाधिक 68.3 प्रतिशत सोनभद्र के गोंड आदिवासी समाज के लोगों के सामने रोजगार या काम की उपलब्धता की कमी रहती है जिससें उन्हें साल में हर समय काम नहीं मिलता है। बहुत ही कम उत्तरदाताओं को वर्ष में हर समय काम मिलता है तथा शेष उत्तरदाता ऐसे है जो काम नहीं करते है। जिनको काम नहीं मिलता है उनसे साक्षात्कार के दौरान ज्ञात हुआ कि यह कोई निर्धारित नहीं है कि कब काम मिलेगा और कब नहीं मिलेगा। मनरेगा का काम कभी बरसात के मौसम में भी मिल जाता है और कभी ठण्डी के मौसम में भी मिल जाता है। गांव में किसी के यहां मकान बन रहा होता है तो वहां कुछ समय के लिए काम मिल जाता है। जिनको साल में हर समय काम मिल जाता है उनमें ऐसे उत्तरदाता है जो स्वयं का व्यवसाय करते है या दुकान चलाते है या ठेला चलाने का काम करते है। जिनको साल में हर समय काम नहीं मिलता है, उनसे पूछने पर कि जब आपको काम मिलता है तब आप कौन सा काम करते है तो ज्ञात हुआ कि सर्वाधिक गोंड जनजाति के लोग ऐसे है जो मजदूरी करते है। जिसमें मनरेगा में मजदूरी करना, ठेला चलाना एवं दूसरे का मकान बन रहा हो वहां मिस्त्री का काम करना या सिर्फ मजदूरी करना आदि शामिल है। उपरोक्त आकड़ों से यही प्रतित होता है कि सोनभद्र के गोंड समुदाय के सामने काम या रोजगार नहीं मिलने की समस्या है जिससे वहां के स्थानीय लोग रोजगार की तलाश में शहरों के तरफ जाने के लिए मजबूर होते है।

**तालिका क्रमांक : 5**

उत्तरदाताओं को काम से होने वाली दैनिक आय

| क्र. | दैनिक आय (रू. में) | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | लगभग 50 | 3 | 3.0 |
| 2. | 100 | 10 | 10.0 |
| 3. | 200 | 54 | 54.0 |
| 4. | 300 | 8 | 8.0 |
| 5. | 400 | 2 | 2.0 |
| 6. | 500 तक या उससे अधिक | 1 | 1.0 |
| 7. | कोई आय नहीं | 22 | 22.0 |
| | **योग** | **100** | **100.0** |

**स्रोत**–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 5 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 3 प्रतिशत उत्तरदाताओं को काम से 50 रूपये, 10.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को काम से लगभग 100 रूपये, 54.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को काम से लगभग 200 रूपये, 8.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को काम

से लगभग 300 रूपये, 2.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को काम से 400 रूपये, 1.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को काम से 500 रूपये प्रतिदिन या उससे अधिक के हिसाब से आय होती है तथा 22.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं को काम नहीं मिलने या काम नहीं कर पाने की वजह से कोई आय नहीं होती है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सोनभद्र के गोंड जनजाति के सर्वाधिक 54.0 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जिनको काम से 200 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से आय होती है। उसके बाद कुछ उत्तरदाता ऐसे है जिनकी आय 300 रूपए प्रतिदिन के हिसाब से होती है तथा शेष ऐसे बहुत ही कम उत्तरदाता है जिनकी आय 100 रूपए, 400 रूपए या 500 रूपए तक होती है। इस प्रकार से देखा जाय सोनभद्र के गोंड़ समुदाय के पास काम की अनुपलब्धता का प्रभाव उनके दैनिक आय पर भी पड़ रहा है। काम नहीं होने की वजह से सोनभद्र के आदिवासी समाज कम रूपये में भी लोगों के यहां काम करने के लिए मजबूर है।

**तालिका क्रमांक : 6**

उत्तरदाताओं के पास मकान की स्थिति

| क्र. | प्रतिक्रिया | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | हाँ | 94 | 94.0 |
| 2. | नहीं | 6 | 6.0 |
| | **योग** | **100** | **100.0** |

**स्रोत**–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 6 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 94.0 प्रतिशत गोंड़ उत्तरदाताओं के पास मकान है तथा 6.0 प्रतिशत गोंड उत्तरदाताओं के पास मकान नहीं है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लगभग सभी 94.0 प्रतिशत गोंड़ उत्तरदाताओं के पास मकान है जिसमें परिवार के सदस्य रह सके। बहुत ही कम उत्तरदाता ऐसे है जिनके पास अपना मकान नहीं है। अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि लगभग सभी उत्तरदाताओं का मकान अभी भी कच्चा है अर्थात मिट्टी का ही बना हुआ है।

**मकान का स्वरूप**

मानव जीवन की तीन प्रमुख आवश्यकता है– भोजन, वस्त्र और निवास। व्यक्ति कहाँ रहता है, उसके चारों तरफ का वातावरण कैसा है? उसका मकान कितना खुला व कितना हवादार है, प्रकृति उसके कितने निकट है, आदि बातों का प्रभाव उसके जीवन पर अवश्य पड़ता है। इसलिए हर किसी की इच्छा अवश्य रहती है कि वह ऐसे मकानों में रहे जो उसके परिवारों के सदस्यों की आवश्यकता के अनुरूप हो।

लेकिन ग्रामीण समाज की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने के कारण मकानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय और सोचनीय होती है। अवलोकन के आधार पर ज्ञात हुआ कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सोनभद्र के अधिकांश गोंड़ जनजातीय परिवारों के मकान कच्चे व झोपड़ी के हैं। शहर से दूर जंगलों एवं पहाड़ों पर निवास करने वाले गोंड जनजातियों ने अपना मकान स्वयं ही बाँस, घांस–भूसा व लकड़ी से बनाए हैं। गोंड समुदाय के लोगों ने दीवार को मिट्टी से खड़ा किया है और छज्जे के लिए लकड़ी, मिट्टी और खपरैल का इस्तेमाल किया है। घर सुन्दर दिखे इसके

लिए वे मिट्टी के लेप से ही घर की चारों तरफ की दीवारों की पुताई करते है और दीवारों पर विभिन्न प्रकार की कलाकृतियाँ बनाते हैं। वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए तो देश के हर नागरीक के पास अपना मकान हो और वह सम्मान पूर्वक उसमें अपना जीवन व्यतीत कर सके इसके लिए केन्द्र व राज्य दोनों सरकारों द्वारा निरंतर प्रयास किया जाता रहा है और इसके लिए इंदिरा आवास योजना अब इसका नाम रूपांतरित करके प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण कर दिया गया है को सरकार द्वारा लाया जाता रहा है लेकिन इन योजनाओं का वाछिंत लाभ सोनभद्र के गोंड आदिवासी समाज को नहीं मिल पाया है, शायद यही कारण है कि आज भी उनके घर मिट्टी और घास–फुस से बने हुए है।

**तालिका क्रमांक : 7**

उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि

| क्र. | कृषि योग्य भूमि का आकार (बीघा में) | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | 1 या उससें कम | 8 | 8.0 |
| 2. | 2 | 21 | 21.0 |
| 3. | 3 | 18 | 18.0 |
| 4. | 4 | 50 | 50.0 |
| 5. | 5 या उससे अधिक | 2 | 2.0 |
| 6. | भूमि नहीं है | 1 | 1.0 |
| | **योग** | **100** | **100.0** |

**स्रोत**–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 7 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 8.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि लगभग एक बीघा, 21.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि लगभग दो बीघा, 18.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि लगभग तीन बीघा, 50.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि लगभग चार बीघा तथा 2.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास कृषि योग्य भूमि पाँच बीघा या उससे अधिक है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सोनभद्र के अधिकांशतः 50.0 प्रतिशत गोंड जनजाति परिवार ऐसे है जिनके पास लगभग चार बीघा कृषि योग्य भूमि है। ऐसे उत्तरदाताओं की संख्या लगभग समान (21.0 और 18.0 प्रतिशत) है जिनके पास कृषि योग्य भूमि दो और तीन बीघा के आस–पास है तथा शेष ऐसे उत्तरदाता बहुत कम है जिनके पास कृषि योग्य भूमि पाँच बीघा के आस–पास है। अवलोकन से यह ज्ञात हुआ कि सोनभद्र के गोंड समुदाय के पास भूमि तो है लेकिन पहाड़ी क्षेत्र होन के कारण भूमि समतल नहीं है और जिनके पास थोड़ा बहुत समतल भूमि है भी वह पानी की उपलब्धता नहीं होनें के कारण कृषि नहीं कर पाते है।

**तालिका क्रमांक : 8**

कृषि कार्य करने का समय (वर्ष में)

| क्र. | कृषि कार्य का समय | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | जून–जुलाई | 53 | 53.5 |
| 2. | अक्टूबर– नवंबर | 0 | 0.0 |
| 3. | दोनो मौसम | 46 | 46.5 |
| | **योग** | **99** | **100.0** |

***टिप्पणीः*** *उपरोक्त तालिका 99 उत्तरदाताओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है क्योंकि 1 उत्तरदाता के पास भूमि नहीं है, (तालिका क्रमांक : 7 के अनुसार)।*

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 8 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 53.5 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जो सिर्फ जून–जुलाई के समय में कृषि करते है, 46.5 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जो दोनों सीजन में कृषि करते है तथा सिर्फ अक्टूबर–नवम्बर सीजन में कृषि करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या शुन्य है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लगभग आधे उत्तरदाता परिवार ऐसे है जो सिर्फ जून–जुलाई सीजन में कृषि करते है एवं लगभग आधा उत्तरदाता ऐसे है जो दोनों सीजन में कृषि करते है तथा शेष ऐसे बहुत कम लोग है जो सिर्फ अक्टूबर–नवम्बर सीजन में कृषि करते है। जो उत्तरदाता सिर्फ जून–जुलाई सीजन में खेती करते है उनसे साक्षात्कार के दौरान यह ज्ञात हुआ कि उनके यहां पानी की समस्या है और उनका खेत पहाड़ी क्षेत्र में होने के कारण भूमि समतल नहीं है जिससे पानी रूकता नहीं है इसलिए सिर्फ वे बरसात के दिन में ही खेती करते है। सिर्फ वहीं उत्तरदाता दोनों सीजन में खेती करते है जिनके यहां जमीन समतल है और पानी की व्यवस्था है या उनके खेत के नजदीक में नदीं है। सोनभद्र क्षेत्र का जल स्तर बहुत नीचे चला गया है जिससें वहां के आदिवासियों को पानी पीने की समस्या के साथ–साथ उनके कृषि भी प्रभावित होती है।

**खेती या कृषि करने के साधन**

वर्तमान समय में देखा जाए तो कृषि से संबंधित विभिन्न प्रकार के यंत्रों का विकास हुआ है जो कुछ ही समय में एक बड़े क्षेत्र को बहुत असानी से जोत सकता है। जिसके लिए पहले फावड़ा और बैलों की सहायता ली जाती थी और कृषि के ऊपज को भी कई लोग एक साथ मिलकर हाथ से ही कटाई करते थे जिसमें बहुत समय लगता था, उसमें समय के साथ परिवर्तन हुआ है और आज ये काम भी कुछ ही समय में आधुनिक यंत्रों या मशिनों से हो जाता है। लेकिन इस प्रकार के यंत्रों का इस्तेमाल समाज के कुछ सम्पन्न लोग ही कर पाते है क्योंकि इसमें अत्यधिक खर्चा होता है जो आदिवासी समाज के पहुँच से बहुत ऊपर है।

तालिका क्रमांक : 9

उत्तरदाताओं द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले पारंपरिक/आधुनिक कृषि के साधन

| क्र. | कृषि कार्य के साधन | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | फावड़ा | 3 | 3.03 |
| 2. | फावड़ा और बैल | 73 | 73.8 |
| 3. | ट्रैक्टर | 23 | 23.2 |
| | **योग** | **99** | **100.0** |

**टिप्पणीः** उपरोक्त तालिका 99 उत्तरदाताओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है क्योंकि 1 उत्तरदाता के पास भूमि नहीं है, (तालिका क्रमांक : 7 के अनुसार)।

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 9 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि खेती करने के लिए 3.03 प्रतिशत उत्तरदाता सिर्फ फावड़ा का, 73.8 प्रतिशत उत्तरदाता फावड़ा और बैल दोनों का तथा 23.2 प्रतिशत उत्तरदाता ट्रैक्टर का इस्तेमाल करते हैं। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सोनभद्र के सर्वाधिक गोंड समुदाय के लोग खेती या कृषि करने के लिए फावड़ा और बैल का इस्तेमाल ज्यादा करते है। कुछ ही उत्तरदाता ऐसे है जो कृषि करने के लिए ट्रैक्टर का इस्तेमाल करते है क्योंकि सोनभद्र क्षेत्र में आदिवासी समाज में इतना ज्यादा कोई सक्षम नहीं है जो खेती के लिए ट्रैक्टर का इस्तेमाल कर सके। ऐसे उत्तरदाता बहुत ही कम है जो या तो सिर्फ फावड़ा से खेती करते है या तो सिर्फ बैल से खेती करते है।

### परिवहन के साधन

इस आधुनिकता के दौर में एक शहर से दूसरे शहर में जाने के लिए बहुत सारे परिवहन के ऐसे साधनों का विकास हुआ है जो कुछ ही समय में मानव को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बहुत ही आसानी से कम समय में ले जा सकती है। परिवहन के विकास से किसी भी क्षेत्र का तेजी से विकास होता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति आसानी से कही भी आ जा सकता है और अपने किसी व्यवसाय को आसानी से कर सकता है। लेकिन अफसोस कि जहां एक तरफ शहरों के जोड़नें के लिए राजमार्गो का विकास हुआ है वहीं आदिवासी क्षेत्र तक सामान्य सड़को का भी निर्माण नहीं किया गया है। जिससें उन्हें अपने ही स्थानीय क्षेत्रों में भी आवागमन में समस्याओं का सामना करना पड़ता है। क्षेत्र अध्ययन के दौरान यह ज्ञात हुआ कि सोनभद्र के अधिकांश ग्रामीणों क्षेत्रों में पक्की सड़क का निर्माण नही हुआ है।[11] जनजातीय स्वास्थ्य की अधिकांश उपेक्षा का कारण, गाँव या जनजातीय आबादी के स्तर पर उपलब्ध सटीक जानकारी की कमी को माना जा सकता है। यह बदले में जनजातीय विशिष्ट स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति स्थानीय स्वास्थ्य प्रणालियों की समझ और प्रतिक्रिया की कमी की ओर ले जाता है।[12]

**तालिका क्रमांक : 11**

उत्तरदाताओं या उनके परिवार द्वारा अस्वस्थता के दौरान उपयोग में लाये जाने वाले इलाज का विवरण

| क्र. | अस्वस्थ होने की स्थिति में इलाज के लिए किए गए प्रयाय | आवृति | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | झाड़ फूक | 12 | 12.0 |
| 2. | प्राकृतिक चिकित्सा | 3 | 3.0 |
| 3. | सरकारी अस्पताल | 15 | 15.0 |
| 4. | निजी अस्पताल | 8 | 8.0 |
| 5. | झोला छाप डाक्टर | 53 | 53.0 |
| 6 | अन्य | 9 | 9.0 |
| | योग | 100 | 100.0 |

***स्रोत**–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित*

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 11 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 12.0 प्रतिशत उत्तरदाता स्वयं या परिवार के किसी सदस्य के अस्वस्थ होने की स्थिति में झाड़ फूक करते है, 3.0 प्रतिशत उत्तरदाता प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लेते है, 15.0 प्रतिशत उत्तरदाता सरकारी अस्पताल जाते है, 8.0 प्रतिशत उत्तरदाता प्राइवेट अस्पताल जाते है, 53.0 प्रतिशत उत्तरदाता झोला छाप डाक्टर के पास जाते है तथा 9.0 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य का सहारा लेते है। यहां अन्य का तात्पर्य पहले उत्तरदाता झाड़ फूक या प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लेते है और जब ठीक नहीं होते है तब झोला छाप डाक्टर के पास जाते है या सरकारी अस्पताल जाते है। उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सोनभद्र की अधिकांश गोंड़ जनजातियां अपना या अपने परिवार के किसी सदस्य का अस्वस्थ होने की स्थिति में ऐसे व्यक्ति की सहायता लेते है जिसको वहां स्थानीय स्तर पर झोला छाप डाक्टर के नाम से जाना जाता है। इसके बाद सिर्फ प्राकृतिक चिकित्सा या सरकारी अस्पताल या अन्य की सहायता लेने वाले उत्तरदाताओं की संख्या लगभग समान है। यहां अन्य से तात्पर्य यह है कि गोंड़ जनजाति के लोग अपना या अपने परिवार के किसी व्यक्ति के अस्वस्थ होने की स्थिति में सबसे पहले प्राकृतिक चिकित्सा करते है और उससें ठीक नहीं हुआ मरीज तो उसके बाद झाड़ फूंक किया जाता है और यदि स्वस्थ हो गए तो ठीक नहीं तो फिर उसके बाद झोला छाप डाक्टर या सरकारी अस्पताल जाते है। प्राइवेट अस्पताल जाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या बहुत ही कम है क्योंकि सोनभद्र के गोंड़ जनजाति के लोग बहुत गरीब है और उनके नजदीक में कोई इस प्रकार का अस्पताल भी नहीं होता है इसलिए वहां उनके लिए इलाज करा पाना बहुत मुश्किल है।

## निष्कर्ष

किसी भी समाज के बदलाव को समझने के लिए समाजशास्त्रीयों ने कुछ मानक तय कर रखे हैं। जैसे जनसंख्या की स्थिति, गरीबी का स्तर, आर्थिक विकास, कृषिगत विकास, भूमि सुधार, शिक्षा उपलब्धता, स्वास्थ्य सेवाओं की अपूर्ति, संर्पक के साधन, आवासीय व्यवस्था इत्यादी।[13] प्रस्तुत शोध पत्र के अन्तर्गत चयनित जनजातीय परिवारों में से परिवार के सबसे बुजुर्ग सदस्य से सम्पर्क किया गया है। जिससे हमें गोंड जनजातीय समाज से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी मिल सके। उत्तरदाताओं से मिली जानकारी से यह स्पष्ट है कि गोंड जनजातिय समाज में अधिकतम परिवारों में सदस्य उच्चतम शिक्षा, माध्यमिक तक ही ग्रहण कर पाते क्योंकि उनके क्षेत्र में नजदीक में कोई विद्यालय नहीं है तथा यदि कोई निजी विद्यालय है भी तो वहां का शुल्क इतना महंगा है कि ये लोग वहन कर पाने में सक्षम नहीं है इसलिए ज्यादातर लोग माध्यमिक से आगे की पढ़ाई नहीं कर पाते हैं। अधिकतर उत्तरदाताओं के परिवार का कुल मासिक आय 11000 से 15000 हजार के बीच है। ऐसा इसलिए है क्योंकि गांव में कोई काम नहीं मिलता है। परिवार के एक या दो सदस्य गांव से बाहर शहर या अन्य किसी जगह पर काम करते है तो उससे कुछ आय हो जाती है। सर्वाधिक उत्तरदाताओं के यहां जीविकोपार्जन के लिए कृषि एवं मजदूरी किया जाता है। वर्ष में हर समय इनकों काम उपलब्ध नहीं होता है और इसका भी कोई निश्चित नहीं होता है कि यदि काम मिलेगा तो वर्ष के किस महीने में मिलेगा। लगभग सभी उत्तरदाताओं के यहां कृषि योग्य भूमि है लेकिन हर समय ये लोग खेती नहीं कर पाते है क्योंकि उनके यहां सिचाई के लिए पानी की समस्या है और बहुत से उत्तरदाताओं की भूमि समतल भी नहीं है। खेती करने के लिए सर्वाधिक लोग फावड़ा और हल–बैल का ही इस्तेमाल करते है क्योंकि ट्रैक्टर से खेतों की जुताई करवाने में वे सक्षम नहीं है। ज्यादातर लोग आवा–गमन के लिए पैदल जाते है या साईकिल का इस्तेमाल करते है। बहुत कम लोग है जो टेम्पू, जीप या बस का इस्तेमाल करते है। परिवार में किसी सदस्य के अस्वस्थ होने के स्थिति में अधिकतर उत्तरदाता आज भी झाड़–फूक या प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लेते है। जब इससे वे ठीक नहीं हो पाते है तब वे गांव में झोला छाप डाक्टर के नाम से पहचाने जाने वाले व्यक्ति से इलाज कराते है या दवा लेते है। सरकारी अस्पताल नजदीक में नहीं है और प्राइवेट अस्पताल में पैसा ज्यादा लगता है इसलिए वहां नहीं जाते है। इसलिए यह साफ है कि अनुसूचित जनजाति के स्वास्थ्य के बेहतर बनाने की पहली शर्त यही है कि आर्थिक विकास से जोड़ने के लिए बेहद संवेदनशील रवैया अपनाना होगा। उपरोक्त अवलोकन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सोनभद्र क्षेत्र के गोंड जनजातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में स्वतंत्रता के लगभग सात दशक भी किसी प्रकार का सुधार नहीं हुआ है और आज भी वे गरीबी में अपना जीवन यापन करने के लिए मजबूर है तथा उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति आज भी बहुत दयनीय है।

❐

*सन्दर्भ –*

1. कोरेति, डॉ. शामराव, (2022). गोंड़ समुदाय की समृद्ध विरासत, योजना, एस. एस. एन.–0971–8397, वर्ष 66, अंक 07, जुलाई, पृष्ठ क्रमांक 35–37।
2. एलविन, वेरियर, (2007). एक गोंड़ गांव में जीवन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. मधुकर, झारखण्ड की जनजातियां, (2014). योजना, आई.एस.एस. एन.–0971–8397, वर्ष 58, अंक 01, जनवरी।
4. *Singh, Awadhesh Kumar, (2008). Tribal Development in India, Serials Publication, New Delhi.*
5. कोरेति, डॉ. शामराव, (2022). गोंड़ समुदाय की समृद्ध विरासत, योजना, एस. एस. एन.–0971–8397, वर्ष 66, अंक 07, जुलाई।
6. *Kulkarani, S., (1994). Tribal Communities in India: Today and Tomorrow, Tribal Research Bulletin, vol.6, no.1.*
7. दुबे, श्यामाचरण, (1966). समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. रावत, हरिकृष्ण, (2013). सामाजिक शोध की विधियां, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली और जयपुर, पृष्ठ क्रमांक–139.
9. पांडेय, जे.पी., (2022)ण जनजातीय शिक्षा के बढ़ते कदम, कुरूक्षेत्र, आई.एस. एस.एन.–0971–8451, वर्ष 68, अंक 10, सितम्बर, पृष्ठ क्रमांक–17।
10. श्रीवास्त्व, डॉ. सुखपाल, (2010). जनजातीय विकास की चुनौतियां, कुरूक्षेत्र, आई.एस.एस.एन.–0971–8451, वर्ष 57, अंक 1, नवम्बर, पृष्ठ क्रमांक–4।
11. मौर्या, नूतन, (2014). विकास की अवधारणा और जनजातियों का स्वास्थ्य, योजना, आई.एस.एस.एन.–0971–8397, वर्ष 58, अंक 1, जनवरी, पृष्ठ क्रमांक–38।
12. सुदर्शन, डॉ. एच एवं शेषाद्री, डॉ. तान्या (2022) जनजातियों के लिए स्वास्थ्य सेवाएँ, योजना, जुलाई, आई.एस.एस.एन. –0971–8397, वर्ष 66, अंक 07, पृष्ठ क्रमांक–11–12।
13. सिंह, आशुतोष कुमार, (2015). बदलते गांव, उभरता भारत, कुरूक्षेत्र, आई. एस0 एस.एन.–0971–8451, वर्ष 62, अंक 02, दिसम्बर, पृठ क्रमांक–7।

*पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 65–70*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# शहरी आवासविहीन महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति और घरेलू हिंसा का विश्लेषणात्मक अध्ययन

**सरोज नैनीवाल**
सह–आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, गुढ़ा
शोधार्थी–समाजशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
**डॉ.मोनिका राव**
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

**सारांश**

*आवासविहीन होना शहरी निर्धनता और सामाजिक भेघता के सबसे खराब रूपों मे से एक है। यह ऐसी स्थिति है जो मानव के समस्त विकास को बाधित करती है और मानव के सबसे बुनियादी मानवाधिकारों का उल्लधंन करती है। आवासविहीन पुरूषों की तुलना में महिलाओं को अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वे गंभीर दुर्व्यवहार, शोषण का शिकार होती है।*

*आवासविहीन स्थिति में रहने से इनमे शिक्षा का अभाव, नियमित रोजगार का अभाव और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता की कमी के कारण घरेलु हिंसा का सामना करना पड़ता है जो इनके स्वास्थ्य एवं कल्याण पर गंभीर प्रभाव डालता है।*

**मुख्य शब्द**– आवासविहीन, निर्धनता, सामाजिक भेधता, मानवाधिकार, घरेलू हिंसा, शोषण

आवासविहीनता वर्तमान विश्व की ज्वलंत समस्याओं मे से एक प्रमुख समस्या है। *हेबिटेट फॉर हयूमेनिटी* के अनुसार 2017 में विश्व में 1.6 बिलियन व्यक्ति अप्रर्याप्त आवास में निवास करते है। आवासविहीन व्यक्ति वे लोग है जो इमारतो या जनगणना घरों में नही रहते वरन सड़क किनारें फुटपाथ पर, फलाईओवर और सीढ़ियों के नीचे, पूजा स्थलों, मंडप, रेलवे प्लेटफार्म, बस स्टेण्ड, पार्को या सावर्जनिक स्थानों पर रहते है।

भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार 1.77 मिलियन व्यक्ति आवासविहीन है।[1] जिनमें एकल पुरूष, महिलाएं, माताये, बुजुर्ग और विकलांग शामिल है और राजस्थान में 181544 बिना किसी छत के सहारे रहते है जिनमें से 83099 महिलाये है। हालांकि ये आकडें आवासविहीनों की वास्तविक संख्या को कम आंकते है। आवासविहीन व्यक्तियों की संख्या उपलब्ध आंकडों से कई गुणा ज्यादा है।[2] और यह संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। इन आवासविहीन व्यक्तियों में भी महिलायें सबसे प्रभावित समूहों में से एक है। ये सबसे अधिक

हाशिये पर, उपेक्षित व भेदभाव का शिकार है। फुटपाथों सार्वजनिक स्थानों पर रहने वाली इन महिलाओं की स्थिति बेहद चिन्ताजनक है। सामाजिक असुरक्षा मानसिक तथा शारीरिक उत्पीड़न इनके लिये हर दिन चिन्ता का विषय बने रहते है। ये महिलाये गरीबी, बेरोजगारी, विवाह बेसहारा हो जाना, पारिवारिक विघटन और किराये पर घर लेकर रहने की सामर्थ्य का अभाव के कारण आवासविहीन स्थिति में रहने हेतु मजबूर है।

ऐसी स्थिति में रहने के कारण इनमें शिक्षा का अभाव, निम्न आर्थिक स्थिति, नियमित रोजगार की कमी और अपने अधिकारों के प्रति अज्ञानता के कारण इन्हे धरेलु हिंसा का सामना भी करना पड़ता है। घरेलू हिंसा दुनियाभर में पारिवारिक हिंसा का सबसे आम रूप है। जिसकी शिकार ज्यादातर महिलायें है। घरेलू हिसा के कारण अधिकतर महिलाएं आवासविहीन होती है।[3] आवासविहीनता और घरेलू हिंसा परस्पर संबंधित है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि तीन में से एक महिला अपने जीवन में किसी ना किसी समय घरेलु हिंसा का शिकार होती है।

अधिकांश महिलाये अपने परिवारजनों, पति, ससुरालवालों की प्रताडना और अत्याचार के कारण घर छोडकर आवासविहीन स्थिति में रहने को बाध्य हो जाती है। सार्वजनिक स्थानों सड़कों एंव खुले में रहने के कारण इनकी परेशानिया बढ़ जाती है इन्हे अपने बचाव के साथ–साथ अपने बच्चों को बाल तस्करी, बालश्रम जैसी सामाजिक बुराइयों से भी बचाना होता है।[4] आवश्यक सेवाओं और जन सुविधाओं का अभाव आवासविहीन महिलाओं की दैनिक जिन्दगी की एक बड़ी समस्या है।

## पूर्व शोध साहित्य

माघवी श्री के शोध आलेख *अकेली महिलाओं को चाहिये (आवास की गारंटी)* में अकेली महिलाओं की आवास समस्या को लेकर सरकार की विभिन्न नीतियों और चर्चा का विश्लेषण किया है।[5] इस आलेख अनुसार अविवाहित, तलाकशुदा, अकेले रहने वाली महिला को जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की असुरक्षा व समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं। जिसमें आवास एक प्रमुख समस्या है। केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, निजी संस्थाये, गैर सरकारी संगठनों तथा समाज जागरूक व संवेदनशील होकर एक साथ कार्य करने पर ही इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

अरविंद कुमार सिंह ने (*अवसंरचना विकास से सशक्त बनता ग्रामीण भारत*) में वित्तीय वर्ष 2021–2022 के बजट पर चर्चा करते हुये आत्मनिर्भर भारत की दिशा में आवास निर्माण को महत्वपूर्ण बताया है।[6] आवास से महिला सशक्तिकरण को बल मिलता है। वे सशक्त होती है। प्रधानमंत्री आवास योजना महिलाओं को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती है।

हाउसिंग एवं लैड राइट्स नेटवर्क के लिये काम करने वाली शिवानी चौधरी के अनुसार आवासविहीन महिलाओं कि स्थिति इसीलिए बदतर है क्योकि उन्हे सड़कों पर कई बार बेइज्जत किया जाता हे।[7] कई महिलाये यौन शोषण हिंसा, तस्करी आदि की शिकार होती हे। महिलाये आवासविहीन होने से सबसे अधिक प्रभावित समूहों में से एक है।

भारत में 5 राज्यों दिल्ली, असम, कर्नाटक, मेघालय और तमिलनाडू के शेल्टर होम्स में रहने वाली महिलाओं पर सर्वाइवर स्पीक कॉल एक्शन फ्राम फाइव स्टेट्स द्वारा कीए गए

अध्ययन के अनुसार अधिकतर महिलाये शादी से जुडी हिंसा के कारण आवासविहीन हुई तथा वर्तमान में शेल्टर होम में रह रही है। इन महिलाओं ने यौन शोषण, बुढापा, देह व्यापर और अन्य प्रकार की शारीरिक और मानसिक यातनाओं के कारण घर छोड दिया।

ऐविड एस्नो और लियोन एंडरसन ने अपने अध्ययन 'डाउन ऑन देयर लकः ए स्टडी ऑफ होमलेस स्टीट पीपल' में पाया कि आवासविहीन व्यक्तियों एंव उनकी परिस्थितियों मे अंतर होता है। आवासविहीन होने के लिये कई कारक उतरदायी होते है। जिनमें प्रमुंख ग्रह कलेश और प्राकृतिक आपदाये है।

जूलिया वधोग लिखित पुस्तक 'द अनअकोमोडेटेड वुमनः होम, होमलेस केस एन्ड आइडेटिटीके अनुसार समाज बहिष्कृत महिलाओं को समायोजित नही करता है। घरेलू दुर्व्यवहार, पति द्वारा प्रतिदिन मारपीट, पति द्वारा छोड देने, और उत्पीड़न करने के कारण महिलाये आवासविहीन होकर सड़क पर रहने के लिये बाध्य होती है।

दिल्ली में आवासविहीन महिलाओं और लड़कियों की दुर्दशा को प्रकाश मे लाने हेतु 2013 में एक जनसुनवाई का आयोजन 'शहरी अधिकार मंचः बेधरों के साथ' किया गया।[8] इस जनसुनवाई में कश्मीरी गेट, पुरानी दिल्ली में रहने वाली शारदा शर्मा ने बताया कि वह अपने झगडालू पति से तंग आकर अपनी तीन महीने की बेटी के साथ दिल्ली आकर रहने लगी और अपना वैवाहिक जीवन समाप्त कर लिया। आवासविहीन स्थिति में फुटपाथ, बस स्टाप और अन्य खुले स्थानों पर रहने के कारण असामाजिक तत्वों के लिये इन्हें नुकसान पहुंचाना सरल हो जाता है।

**उद्देश्य**– यह शोध आलेख अध्ययन के मुख्यतः दो उद्देश्यों से सम्बधित जानकारी के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

1 जयपुर के सांगानेर क्षेत्र में आवासविहीन स्थिति में रहने वाली महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करना।

2 घरेलू हिंसा के सम्बन्ध में आवासविहीन महिलाओं के बोध स्तर का अध्ययन करना

**अध्ययन विधि**

प्रस्तुत अध्ययन में तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। जयपुर शहर के सांगानेर क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर आवासविहीन स्थिति में रहने वाली 40 महिलाओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से उनकी शैक्षणिक स्थिति व घरेलू हिंसा के सम्बन्ध में तथ्यों का संकलन किया गया है। द्वितीयक स्रोत के अन्तर्गत पुस्तके, शोध आलेख, जनगणना रिर्पोट, समाचार पत्रों का उपयोग किया गया है।

**उपकल्पना**–प्रस्तुत अध्ययन में निम्न उपकल्पनाओं को बनाया गया है।

1. आवासविहीन स्थिति में रहने वाली महिलाओं का शैक्षणिक स्तर निम्न है।

2. आवासविहीन महिलाओं को घरेलू हिंसा का सामना करना पड़ता है।

**तथ्यों का विश्लेषण**

शोधार्थी द्वारा किया गया शोध कार्य तभी प्रभावी होता है जब उस समस्या की वास्तविक स्थिति का मूल्याकंन किया जायें। इस हेतु शोध उपकरणों द्वारा प्राप्त जानकारियों को व्यवस्थित क्रम में सारणीबद्ध कर सांख्यिकी विश्लेषण किया गया है।

ऽ **आवासविहीन महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति :**

**सारणी क्रमाकं–1**

| शैक्षणिक स्थिति | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| साक्षर | 06 | 15 |
| निरक्षर | 34 | 85 |
| कुल | 40 | 100 |

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि 15 प्रतिशत महिलाये केवल साक्षर है तथा 85 महिलाये निरक्षर है। इससे स्पष्ट होता है कि आवासविहीन महिलाओं में शिक्षा का स्तर निम्न है। आवासविहीन स्थिति में रहने के कारण इनका निश्चित आवास नहीं है। ये शहर में अपने परिवार के साथ विभिन्न स्थानों पर धूमते रहते है। अतः शैक्षणिक संस्थानों इनकी पहुंच नहीं है।

ऽ **क्या परिवार में लडाई–झगडे की स्थिति :**

**सारणी क्रमाकं–2.**

| क्या परिवार में लडाई–झगडे होते है | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| हां | 33 | 82.5 |
| नहीं | 07 | 17.5 |
| कुल | 40 | 100.0 |

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 82.5 प्रतिशत आवासविहीन महिलाओं ने स्वीकार किया कि उनके परिवार में लड़ाई झगड़े होते है जबकि 17.5 प्रतिशत के अनुसार उनके परिवारों में लड़ाई झगडे नहीं होते हे। इन झगड़ों के परिणाम स्वरूप परिवार में बच्चों व महिलाओं को मानसिक अशांति व दुर्व्वहार का सामना करना पड़ता है। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव इनके शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर भी पडता है।

ऽ **परिवार में लडाई–झगडें कितनी बार होते है :**

**सारणी क्रमाकं–3**

| लड़ाई–झगड़े की स्थिति | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| प्रतिदिन | 14 | 35 |
| साप्ताहिक | 10 | 25 |
| कभी–कभी | 12 | 30 |
| कभी नहीं | 4 | 10 |
| कुल | 40 | 100 |

सारणी संख्या 03 से स्पष्ट है कि आवासविहीन स्थिति में रहने वाली 35 प्रतिशत महिलाओं के परिवारों में प्रतिदिन लड़ाई झगडे होते जबकि 25 प्रतिशत महिलाओं ने एक सप्ताह

में लडाई–झगड़ों का होना बताया। 30 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार कभी–कभी परिवार में झगडे होते है जबकि 10 प्रतिशत महिलाओं ने लडाई–झगडे कभी नहीं होने की जानकारी दी। इन झगड़ों में प्रायः पति या पुरूष सदस्यों द्वारा महिलाओं और बच्चों को प्रताड़ित किया जाता है और इन्हें शारीरिक हिंसा या पिटाई का सामना करना पड़ता है।

ऽ **परिवार में झगड़ों के कारण :**

**सारणी क्रमांक–4**

| झगडों के कारण | संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|
| निर्धनता | 6 | 15 |
| नशा | 13 | 32.5 |
| भोजन | 2 | 5 |
| मानसिक स्थिति | 4 | 10 |
| शराब का सेवन | 15 | 37.5 |
| कुल | 40 | 100 |

सारणी संख्या 4 से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 37.05 प्रतिशत आवासविहीन महिलाओं में परिवार के पुरूश सदस्यों द्वारा शराब का सेवन करने को परिवार में झगड़ों का कारण माना। 32.05 प्रतिशत महिलाओं में परिवार में झगड़े का कारण मादक पदार्थो (अफीम, तम्बाकू, बीडी, जर्दे आदि) के सेवन को माना। 15 प्रतिशत महिलाओं ने निर्धनता को झगडों का कारण बताया 10 प्रतिशत ने मानसिक स्थिति तथा 5 प्रतिशत महिलाओं ने भोजन नहीं मिल पाने को झगडो का कारण बताया।

## निष्कर्ष

इस अध्ययन में पाया गया कि आवासविहीन स्थिति में रहने वाली इन महिलाओं का शैक्षणिक स्तर निम्न है और अधिकतर महिलाये अशिक्षित है। बिना किसी स्थायी व निश्चित आवास तथा बार–बार आवास स्थान परिवर्तन के कारण इनके बच्चे भी शिक्षा प्राप्त करने मे अक्षम है। शैक्षणिक संस्थाओं तक इनकी पहुंच लगभग नहीं है। सर्व शिक्षा अभियान के पास कई योजनाएं है। लड़कियों के लिये शिक्षा मुफ्त भी है परन्तु इन स्थितियों में रहने वाले बच्चों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिये सम्बधित विभाग द्वारा किये गए प्रयास काफी कम है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं लैगिक असमानता व महिलाओं की पुरूषों पर निर्भरता के कारण इन महिलाओं को धरेलू हिंसा का सामना करना पड़ता है। इस घरेलू हिंसा के कारण इन परिवारों के बच्चे माता–पिता से दूर हो जाते है तथा भावनात्मक लगाव विशेषकर पुरूष सदस्यों से कम होता जाता है।

## सुझाव

- आवासविहीन स्थिति में रहने वाली महिलाओं को स्थिर, सुरक्षित आवास उपलब्ध करवाया जाए। नगर नियोजन करते समय सम्बधित विभाग व अधिकारी इस वर्ग को भी ध्यान में रखकर आवास योजन व कार्यक्रम बनाये।

- इन महिलाओं और बच्चों की शैक्षणिक संस्थानों तक पहुॅच सुनिश्चित की जाए। क्योकि शिक्षा ही वह उपकरण है जो इन्हें रूढिवादी समाज के पूर्वाग्रहों से बचा सकती है।
- महिलाओ को आर्थिक दृष्टि से मजबूत व आत्मनिर्भर बनाने हेतु प्रयास किये जाय ताकि उनमें आत्मविश्वास जागृत हो।
- महिलाओ को अपनी स्थिति व अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाये।
- महिलाओं पर अत्याचार करने वाले व्यक्तियों को दण्डित किया जाये।

❒

*सन्दर्भ –*

1. *2011 की भारत की राष्ट्रीय जनगणना रिर्पोट*
2. *गुडमेन, लिसा, ग्लिन केथराइन (2006) नो सैफ प्लेसः सेक्सुअल एसोल इन द लाइफस ऑफ होमलेस वुमन एप्लाइड रिसर्ज फोरम, पेज 1–12*
3. *होमलेस वुमनः घरेलू हिंसा के कारण बेघर होती है ज्यादातर महिलायें, 21 मार्च, 2019 https://navbharattimes.indiatimes.com*
4. *चंद्रन,रीना.(2018) ''सोने से बहुत डर लगता है : भारत की बेघर महिलाएं शहरों के विस्तार के कारण पीड़ित है'' https://www.reuters.com*
5. *श्री, माधवी.(2017) ''अकेली महिलाओं को चाहिए आवास की गारंटी'' सितम्बर योजना पृ. 53*
6. *संह, अरविन्द कुमार.(2021) ''अवसंरचना विकास से सशक्त बनता ग्रामीण भारत'' कुरूक्षेत्र पृ. 29–32*
7. *चौधरी, शिवानी. जोसेफ, अमिता. सिंह इंदुप्रकाश (2014) ''हिंसा और उल्लखनः भारत में बेधर महिलाओं की हकीकत'', कल्पना प्रिंटोग्राफिक्स, नई दिल्ली*
8. *चौधरी, शिवानी, चौधरी, एस. शकीन अब्दुल (2013) जबरन बेदखली क्या करे।'' नई दिल्ली आवास और भूमि अधिकार संगठन।*

*पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 71–78*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# बाँसवाड़ा जिले में भील जनजाति की सामाजिक व्यवस्था एवं परपम्राऐं

**डॉ.कविता चौधरी**

सहायक आचार्य, भूगोल, श्री आर. आर. मोरारका, राजकीय महाविद्यालय, झुन्झुनूं (राज)
E-mail <thekavita89@gmail.com

**सारांश**

*कई वर्षों से भारत में जंगल तथा पहाड़ों जैसे दुर्गम स्थानों में रह रही मूल जनजातियों ने समतल मैदानों तथा सभ्यता के केन्द्रों में निवास करने वाले लोगों से अधिक सम्पर्क स्थापित किये बिना ही अपने अस्तित्व को बनाये रखा है। सिक्के का दूसरा पहलू यह भी है कि जनजातीय समाज के मौलिक स्वभाव में, अपने सहचर्य गैर जनजाति वर्ग के सम्पर्क में आने से परिवर्तन आ रहा है। यद्यपि जनजातीय समूह के बहुसंख्यक अंश ने अभी भी अपनी विशिष्ट मान्यताओं एवं परम्पराओं को बरकरार रखा है। भारत में राजस्थान राज्य, जनजाति जनसंख्या की दृष्टि से छठे स्थान पर है।*[1] *भील जनजाति राजस्थान की दूसरी प्रमुख जनजाति है। यह जनजाति वर्ग अपने प्राकृतिक वातावरण में रहते हुए अपनी सामाजिक व्यवस्था एवं परम्पराओं को आज भी मान्यता दिये हुए है। स्वतन्त्रता के पश्चात् वर्तमान तक राज्य सरकारों के प्रयासों से इनकी शिक्षा, सामाजिक संगठन एवं आर्थिक क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ है। जिसके परिणामस्वरूप यह जनजाति विकास के विभिन्न चरणों से गुजर रही है।*

**मूल शब्दः–** जनजाति, भील समुदाय, सामाजिक, परम्पराएं, विवाह, पारिवारिक संरचना।

## प्रस्तावना

राजस्थान राज्य में भौगोलिक दृष्टि से दक्षिण एवं दक्षिणी–पूर्वी क्षेत्र जनजाति बाहुल्य है। जहाँ विभिन्न जनजातियाँ प्राकृतिक वातावरण यथा पहाड़ी, पठारी एवं वन प्रदेशों में अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ रहती है तथा जीवन निर्वाह के लिए परम्परागत आदिम साधनों का प्रयोग करती है।[2] ये मनोवैज्ञानिक रूढ़िवादिता के कारण अपनी प्राचीन प्रथाओं से जुड़े हुए है। इसी कारण यहाँ प्रौद्योगिक एवं तकनीकी प्रगति नहीं हो पाई है। सर्वप्रथम जनजाति, वह समुदाय, जो एक विलग भौगोलिक प्रदेश में निवास करता है, जिनकी

अपनी विशिष्ट संस्कृति, आर्थिक क्रियाकलाप, जीवन पद्धति, व्यवहार, समान विश्वास तथा परस्पर समूह के रूप में सम्बधित होने की भावना होती है, जनजाति कहलाता है। दक्षिणी राजस्थान में भील जनजाति प्रमुखता से निवास करती है। भौगोलिक रूप से भील जनजाति का मूल निवास अरावली, विन्ध्यन तथा सतपुड़ा की पहाडियाँ है। राजस्थान में भीलवाड़ा, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, सिरोही, चितौडगढ़ आदि जिलों में भील जनजाति मुख्य रूप से निवास करती है।

**अध्ययन क्षेत्र**

प्रस्तुत शोध हेतु राजस्थान राज्य के दक्षिण में स्थित बांसवाडा जिले का चयन किया गया है। जिसका अंक्षाशीय विस्तार 230 $20^0$ उत्तरी अंक्षाश से 230 $55^0$ उत्तरी अंक्षाश एवं $740^0$ पूर्वी देशान्तर से 740 $33^0$ पूर्वी देशान्तर है। बांसवाडा जिले के उत्तर में प्रतापगढ़, पश्चिम में डूंगरपुर, पूर्व और दक्षिण में मध्यप्रदेश के रतलाम और झाबुआ जिला तथा दक्षिण में गुजरात का दाहोद जिला अवस्थित है। जनगणना 2021 के अनुसार अध्ययन क्षेत्र की कुल जनसंख्या 17,97,485 है, जिसमें 9,07,754 पुरूष और 8,89,731 महिलाएँ, जनसंख्या धनत्व 397 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। साक्षरता दर 56.3 प्रतिशत, जो कि राजस्थान राज्य की साक्षरता दर (66.11 प्रतिशत) से कम है। अध्ययन क्षेत्र का लिंगानुपात 980 है, जो कि राज्य के लिंगानुपात (947) से अधिक है।

**अध्ययन के उद्‌दश्य**

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य बांसवाड़ा जिले में निवास करने वाली भील जनजाति की सामाजिक व्यवस्था एवं परम्पराओं का अध्ययन करना है।

**आँकड़ों के स्रोत एवं शोध विधितन्त्र** – प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक ऑकड़ो पर आधारित है। जिसमें बांसवाड़ा जिले में निवास करने वाली भील जनजाति की सामाजिक दशाओं तथा परम्पराओं को जानने हेतु आँकड़ो का संकलन किया गया है। जिससे सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त हो सके।

**भील जनजाति की उत्पत्ति एवं इतिहास**

भील जनजाति को राजस्थान व गुजरात के मूल निवासी माना जाता है, किन्तु किस प्रजाति विशेष से इनकी उत्पति हुई है, इस संबंध में मानवशास्त्री एकमत नहीं है। कुछ मानवशास्त्री इन्हें मुंडा जाति के वंशज मानते है।[3] इस मान्यता की वजह है इनकी भाषा में मुंडारी शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाना। इसके अतिरिक्त अलग–अलग मानवशास्त्रियों की मान्यताएं अलग– अलग है। हैडन के अनुसार ये पूर्व द्रविड़ो की पश्चिमी शाखा से है। रिजले और क्रूक के अनुसार ये द्रविड़ है। प्रो. गुहा के अनुसार प्रोटो–ऑस्ट्रेलॉयड प्रजाति से संबधित है। डॉ. मजूमदार के अनुसार भील जनजाति के लोग भारत के अत्यन्त प्राचीन एवं सीधे–सादे लोग है। हट्‌टन शारीरिक संरचना के आधार पर इन्हें कॉकेशियन और ऑस्ट्रेलॉयड प्रजाति का मिश्रण मानते है। वेंकटेश्वर के अनुसार इनके पूर्वज भूमध्यसागरीय प्रजातियों में से है, जो सहारा क्षेत्र में रहती थी, किन्तु जलवायु में परिवर्तन के कारण इनका मूल प्रदेश शुष्क हो गया तो ये पूर्व की ओर आकर विंध्याचल पर्वतों में बस गये।[4] कर्नल टॉड के अनुसार यह तत्कालीन मेवाड़

राज्य में अरावली पर्वत श्रेणियों में रहने वाले लोग है, जिन्होंने महाराणा प्रताप की सेना के साथ अकबर के विरूद युद्व में सहायता की थी। इन्हें निर्भय एवं साहसी योद्धा के रूप में जाना जाता है। तत्कालीन मेवाड़ राज्य में भील जनजाति का विशेष महत्व रहा है। महाराणा का राजतिलक भील जनजाति के कबिले का सरदार अपने अंगूठे के खून से ही करता था। मेवाड़ राज्य के राज चिन्ह में एक ओर राजपूत तथा दूसरी ओर भील की आकृति बनी हुई है, जो इस जनजाति की वीरता तथा स्वामीभक्ति का प्रतीक है। कर्नल टॉड ने भील जनजाति के लोगों को वनपुत्र भी कहा है। संस्कृत साहित्य में इन्हें निषाद या पुलिन्द जाति से सम्बंधित माना गया है, इसके अनुसार भीलों की उत्पति महादेव की एक भील उपपत्नी से हुई मानी जाती है।[5] वास्तिवकता में भील जनजाति भारत की प्राचीनतम जनजातियों में से एक है क्योंकि भीलों की उत्पति के विषय में पुराणों, रामायण तथा महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी संदर्भ उपलब्ध है। महाभारत महाकाव्य का एक पात्र एकलव्य भी भीलपुत्र ही था। ऐतिहासिक दृष्टि से भील जनजाति देश के आदिम निवासी है।

शाब्दिक अर्थ में 'भील' शब्द की उत्पत्ति द्रविड़ भाषा के शब्द 'बिल' या 'विल' से हुई है जिसका अर्थ होता है 'तीर'। इस प्रकार 'भील' का अर्थ 'तीर चलाने वाले व्यक्ति' से लिया गया है।[6] प्राचीन काल में भील जनजाति तीरन्दाजी में निपुण मानी जाती थी। ये लोग सदैव अपने पास तीर–कमान रखते थे तथा शताब्दियों पूर्व अपना जीवन निर्वाह जन्तुओं का आखेट करके करते थे।

## भील की उपजातियां

2021 की जनगणना के अनुसार बांसवाड़ा जिले में कुल जनसंख्या का 72.3 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के लोग निवास करते है। जिनमें से 1.08 प्रतिशत व्यक्ति शहरी क्षेत्र में तथा 98.92 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्र में निवास करते है। अध्ययन क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति के रूप में भील जनजाति निवास करती है। यहाँ मुख्य रूप से भील जनजाति में परमार, चौहार, भाटी, अंगारी, कटारा, कलासुवा, अहारी, कुड़िया, खराड़ी, चरपोटा, डाबी, डिण्डोर, डोडियार, ताबियार, निनामा, लेखिया, गेटार, दामा, दायमा, पंडोत, पारंगी, भगोरा, राठौड़ सिसोदिया, मईड़ा, रेलावत, रोत, वराड़ा, सोलंकी, मकवाना, हिरोट, जारगट, भूरिया, राणा, गेन्दोत, डामोर, नोचिया, सारेल, वडेरी, मसार, माल, भुज, सिघांड़ा, खाँट, देया, लोटिया, कडवा गौत्र है।[7]

## सामाजिक व्यवस्था एवं परम्पराएं

भीलों की सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त संगठनात्मक होती है। इनके सामाजिक व्यवहार पूजा, विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, जीवन क्रम की विशेष पद्धतियां होती है। किसी एक गाँव में प्रायः एक ही वंश की शाखाओं के लोग निवास करते है। इनके मुखिया को तदवी और वंसाओं कहा जाता है। प्रत्येक गाँव का पण्डित, पुजारी, कोतवाल, चरवाहा, तथा ढोल बजाने वाले पृथक–पृथक होते है। भील जाति अनेक छोटे–छोटे समूह में विभक्त होती है जिसे अटक, ओदाख, गौत्र या कुल कहते है। एक अटक के सदस्य अपने को एक ही पुरखे के वंशज मानते है। प्रत्येक अटक का गणचिन्ह् होता है। यह गणचिन्ह् वृक्ष, स्थान, पक्षी, पशु या पूर्वज का नाम हो सकता है। अटक के सदस्य अपनी परेशानियों तथा उत्सवों के समय अपने गणचिन्ह्

देवी–देवताओं का आह्वान करते है। इस प्रकार प्रत्येक अटक के सदस्य एक ही वंश पर आधारित होते है, एक ही गाँव में निवास करते है तथा समान नियमों का पालन करते है। अटक, गोत्र या कुल यह स्पष्ट करता है कि अमूक कुल के लोग सपिण्ड सम्बन्धी है और इनमें आपस में विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकते है। अतः एक समान कुल के सदस्य अन्तर्विवाह नहीं कर सकते है क्योंकि ये एक ही पुरखे के वंशज होते है। भील जनजाति में बहिर्विवाही सम्बन्ध होते है, दो भिन्न कुलों के सदस्य ही आपस में विवाह कर सकते है। सामान्यतः विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष की ओर से रखा जाता है। विवाह के समय वर पक्ष द्वारा एक निश्चित नकद राशि दुल्हन के माता–पिता को वधू के मूल्य के रूप में देनी होती है जो दुल्हन की सुन्दरता तथा उपयोगिता के आधार पर निर्धारित होती है जिसे 'दापा' कहा जाता है। किन्तु वर्तमान समय में अन्य गैर जनजाति समुहों के सम्पर्क में आने के कारण दापा लेने के स्थान पर वर पक्ष को दहेज देने की कुप्रथा प्रारम्भ हो गई है।

विवाह के समय या अन्य मांगलिक कार्यों पर समस्त जनजाति वर्ग सम्बधित परिवार की आर्थिक सहायता करता है जिसे न्यौता डालना कहते है। जिससे संबंधित व्यक्ति पर आर्थिक भार नहीं पड़ता है। यह मुख्यतः दोनों पक्षों के मध्य एक मौन समझौता होता है। जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति द्वारा मांगलिक कार्य करने वाले व्यक्ति को न्यौते के रूप में डाली जाने वाली धनराशि उस व्यक्ति द्वारा उन लोगों को पूर्व में डाली गई धनराशि से कम नहीं होनी चाहिये। न्यौता न चुकाये जाने पर कई बार जनजाति परिवारों के मध्य तनाव भी उत्पन्न हो जाता है। भील जनजाति सामान्यतः एक विवाह में ही विश्वास करती है, किन्तु शक्तिशाली तथा सम्पन्न पुरूषों का एक से अधिक पत्नियों को रखना प्रतिष्ठा तथा पद के प्रतीक के रूप में माना जाता है। ये जनजाति अनेक प्रकार के विवाह अपनी सुविधानुसार अपने सामाजिक पर्यानुकूलन एवं अपनी सांस्कृतिक पारिस्थितिकी के अनुसार करती है। माही सिंचित क्षेत्र में भील जनजाति में निम्नलिखित विवाह रीतियां प्रचलित है–

**1– क्रय विवाह अथवा दापा**

अध्ययन क्षेत्र की भील जनजाति में यह सर्वाधिक लोकप्रिय विवाह रीति है। जिसका आधार वधू–धन अर्थात् दापा होता है। विवाह संबंध निर्धारित होने पर वर पक्ष व वधू पक्ष को समझौते के तहत एक निश्चित राशि दुल्हन के मूल्य के रूप में देता है। इस प्रकार लेन–देन का आर्थिक स्वरूप महिलाओं की उपयोगिता का प्रतीक है। जो उसके माता–पिता के परिवार को मुआवजे के रूप में दिया जाता है। किन्तु इस विवाह की रीति का एक खराब परिणाम भी है। वधू की निरन्तर बढती हुई कीमत ने गरीब जनजाति वर्ग के लोगों की आर्थिक दशा खराब कर दी है। कभी–कभी यह धन इतना अधिक हो जाता है कि उससे कम धन स्वीकार करना व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा तथा पद के विपरीत मान लेता है। इसके परिणामस्वरूप बहुत से भील महिला एवं पुरूष अविवाहित ही रह जाते है। कई बार दुल्हन का पिता अधिक मूल्य मिलने पर बड़ी आयु के व्यक्ति के साथ भी अपनी पुत्री का विवाह कर देता है जिससे बे–मेल विवाह का प्रचलन भी बढ़ा है।

**2– विनिमय विवाह**

विनिमय विवाह का प्रचलन ऊँचे वधू धन से बचने के साधन के रूप में हुआ है। विनिमय विवाह के अन्तर्गत दो परिवार महिलाओं का विनिमय करते है। इस कारण इन्हें एक दूसरे को वधू–धन का भुगतान नहीं करना पड़ता है। इस विवाह प्रकिया में एक पुरू ा अपनी पत्नी के बदले में अपनी बहिन या अपने परिवार की किसी अन्य अविवाहित स्त्री को देता है।

**3– सह–पलायन विवाह अथवा प्रेम विवाह**

कई बार विवाह के लिए लड़का–लड़की एक दूसरे को पंसद कर लेते है किन्तु परिवार के सदस्य स्वीकृति नहीं देते हैं तो माता–पिता की सहमति के बिना ही लड़का–लड़की भागकर विवाह कर लेते है। बाद में जिद के आगे झुक जाने वाले बुर्जुग, 'प्रेमी जोड़े' को अपना लेते है। किन्तु इसके लिए समाज के लोगों द्वारा निर्धारित जुर्माना वर पक्ष द्वारा वधू पक्ष के परिजनों को दिया जाता है जो सामान्यतः वधू धन या दापा से कम होता है। जो भांजझड़ा द्वारा तय होता है। इसमें भांजझड़ियों का अपना कमीशन होता है। जब तक राशि नहीं दी जाती है, तब तक तनाव बना रहता है। कभी–कभी बहुत उग्र होकर वर पक्ष के घर जलाने व हत्या तक की घटना हो जाती है।

**4– सेवा द्वारा विवाह**

जब कोई जनजाति पुरूष वधू–धन का पूर्ण भुगतान नहीं कर पाता है तो उसे दुल्हन के घर पर सेवा करके इसका भुगतान करना पड़ता है। इसके अन्तर्गत भावी दुल्हा अपने भावी सास–ससुर के घर रहकर नौकर की तरह कार्य करता है जिसके अन्तर्गत वह घरेलू तथा कृषि कार्यों में सहायता करता है।

**5– गोल गधेड़ा विवाह**

भील जनजाति में अपना जीवन साथी प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत साहस तथा बहादुरी किसी नवयुवक में वांछित योग्यता के रूप में स्वीकार की जाती है। जो भावी दुल्हा प्रदर्शन द्वारा अपनी शक्ति को सिद्ध कर देता है उसे मनचाही लड़की का हाथ मांगने का अधिकार होता है यह रीति इस जनजाति में अत्यधिक लोकप्रिय है। होली के त्यौहार के समय युवक तथा नवयुवतियां किसी खम्भे या वृक्ष के सिरे पर नारियल या गुड़ बांधकर, इसके चारों ओर लोक नृत्य करते है। सभी युवक तथा युवतियों को इस नृत्य में सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता होती है। युवतियां खम्भे या वृक्ष के चारों ओर एक आन्तरिक घेरा बना लेती है। जब कोई इच्छुक युवक घेरे को तोड़ते हुये नारियल तोड़ने का प्रयास करता है तो युवतियां अपनी पूरी शक्ति से उसका प्रतिरोध करती है। इस प्रयास में युवक को अनेक चोटें भी आ सकती है। इन बाधाओं को पार करते हुए जो साहसी पुरूष नारियल तोड़ने में कामयाब होता है उसे घेरा बनाने वाली युवतियों में से किसी को भी पत्नी के रूप में मांगने का अधिकार होता है। इसी परम्परा को स्थानीय रूप से 'गोल गधेड़ा विवाह' कहते है।

**6– देवर विवाह**

जब एक स्त्री अपने पति के भाई से विवाह करती है तो उसे देवर विवाह कहते है। यह विवाह अत्यधिक महत्व का है क्योंकि पति की मृत्यु होने पर विधवा को अभिभावक पति तथा

संरक्षक मिल जाता है तथा उसके बच्चों को पहले से प्यार करने वाला पिता मिल जाता है। इस प्रकार के विवाह से महिला विधवा होने का दंश झेलने से बच जाती है। विधवा विवाह की प्रथा इस जनजाति समुदाय में सामान्य प्रकिया है। सामान्यतः विधवा स्त्री का विवाह उसके मृत पति के छोटे भाई के साथ हो जाता है किन्तु यह कोई कठोर नियम नहीं है। विधवा महिला यदि किसी अन्य पुरूष से विवाह करना चाहती है तो उस पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता।

**7 नाता–प्रथा**

महिला के विधवा होने, पति नापंसद का होने या अन्य किसी व्यक्ति के प्रेम प्रसंग के चलते महिला किसी दूसरे व्यक्ति के साथ चली जाती है और उससे विवाह कर लेती है। इसके बदले बाद में पूर्व पति को उसका मूल्य चुकाना होता है। भील जनजाति में विवाह विच्छेद पर कोई प्रतिबंध नहीं है। यहाँ सामान्य स्थिति में पति का पत्नी परित्याग नहीं करता है, किन्तु पत्नी पति का परित्याग कर देती है। विवाह विच्छेद के पश्चात् बच्चे सामान्यतः पिता के साथ ही रहते है तथा नये पति को स्त्री के पूर्व पति को समाज द्वारा निर्धारित वधु या कन्या मूल्य चुकाना आवश्यक होता है। भील जनजाति समाज में परस्पर मतभेद होने की स्थिति में स्थानीय स्तर पर ही उसे सुलझा लिया जाता है, यह कार्य भांजझड़िया करता है। भील समाज में भांजझड़ियां का अत्यन्त महत्व है। दो पक्षों के मध्य सामाजिक अथवा आर्थिक मतभेद होने की स्थिति में भांजझड़ियां द्वारा समझौता करवाया जाता है। इसके अन्तर्गत भांजझड़ियां वैचारिक सुलह भी करवा सकता है अथवा मुआवजा भी निर्धारित कर सकता है।

**8– पारिवारिक सरंचना**

भील जनजाति समाज में पिता अथवा माता के अधिकारों के आधार पर पितृ प्रधान समाज दृष्टिगोचर होते है। यह जनजाति परिवार में पिता के वर्चस्व को अधिक मानती है। ये पितृसत्तात्मक परिवार रखते है, जहाँ वंश पिता द्वारा चलता है अर्थात पितृवंशिक प्रथा, वधू विवाह के पश्चात् अपने पिता का घर छोड़कर अपने पति के घर आकर रहती है। भीलों की पारिवारिक इकाई को 'वसीलू' कहा जाता है। भीलों में एकल परिवार मिश्रित संयुक्त परिवार प्रथा है। एकल परिवार में पुरूष, उसकी पत्नी और उसके अविवाहित बच्चे आते है। जैसे ही व्यस्क पुत्र का विवाह होता है, वह अपने पिता से अलग रहते हुए उसके निवास के निकट ही अपने परिवार के लिए 'टापरा' बनाता है। इस प्रकार एकांकी परिवार के होते हुए भी सम्मिलित रूप से रहते है। परिवार में वृद्ध व्यक्तियों का बड़ा आदर किया जाता है। सभी निर्णय उसकी आज्ञानुसार ही लिये जाते है। घर का मुखिया सबसे बुजुर्ग पुरूष ही होता है। परिवार में सभी सामाजिक कार्य पिता के जीवनकाल में पिता के संरक्षण में ही होते है। सभी उत्सवों एवं समारोहों पर सभी पिता के घर पर ही एकत्रित होते है। पिता को ही सम्पत्ति संबंधी सभी अधिकार प्राप्त होते है। पिता की मृत्यु के बाद पिता की सम्पति का बंटवारा उनके पुत्रों में उनकी आयु के अनुपात में होता है, अर्थात् ज्येष्ठ पुत्र को सबसे अधिक तथा सबसे छोटे पुत्र को सबसे कम। पिता द्वारा छोड़े गये ऋण का बंटवारा भी इसी क्रम में किया जाता है। पिता की सम्पत्ति में पुत्री का कोई अधिकार नहीं होता।

भील जनजाति में महिलाओं को कम अधिकार प्राप्त होते है। किन्तु घर की व्यवस्था तथा खेती आदि कार्यों में वे पुरूष का पूर्ण सहयोग करती है। इसके अतिरिक्त परिवार में पत्नी की स्थिति विवाह के प्रकार पर भी निर्भर करती है। बहुविवाह की स्थिति में जहाँ अनेक पत्नियां हो, वहाँ पत्नी की स्थिति उसके पति द्वारा दी गई वरियता के आधार पर निश्चित होती है। फिर भी यदि वह पत्नी वरिष्ठ है तो उसे बेहतर स्थिति प्राप्त होती है, जन्म से मृत्यु तक के समस्त धार्मिक अनुष्ठानों में उसकी उपस्थिति अनिवार्य है।

## धार्मिक अनुष्ठान

भील जनजाति में विभिन्न प्रकार के अनेक सामाजिक–सांस्कृतिक आचरण और रीति रिवाज प्रचलित है। यह जनजाति लम्बे समय से गैर जनजाति समूह के सम्पर्क में आ रही है। जिससे इनके अपने रीति रिवाजों और प्रथाओं के रूढ़िगत स्वरूपों में परिवर्तन अवश्य आया है किन्तु फिर भी सामान्यतः सामाजिक व्यवहार में जनजाति समाज अधिकांशतः अपनी स्वयं की परम्पराओं को ही प्राथमिकता देता है। इनका आचरण मुख्यतः उनकी अपनी प्रथाओं के अनुरूप होता है। भील जनजाति मुख्यतः हिन्दु धर्म से प्रभावित है। अतः यह हिन्दू देवी देवताओं में विश्वास करते है। भील इन्द्र, गौराजी, गोपालदेव, क्षेत्रपाल, मारीया माता, सती माता, काली माता, मोती माता, शीतला माता, भैरूजी आदि की पूजा करते है। इसके अलावा अम्बा माता, धरती माता, चामुण्डा देवी, मावजी, हनुमान तथा महादेव के भी उपासक है।

भील जनजाति मृतकों की देह को जलाते है, तथा हिन्दुओं के भांति कर्म काण्ड करते है। ये मृत्युपरांत जीवन में विश्वास करते है। इनका मानना है कि मृत्यु के उपरान्त जीवन समाप्त नहीं होता है तथा वह किसी ना किसी रूप में विद्यमान रहता है। पुर्वजों की आत्मा की आराधना तथा पूजा इसी विश्वास के कारण की जाती है। जादू–टोने में इनका अटूट विश्वास होता है। प्रत्येक गाँव में एक भोपा होता है, जो भूत–प्रेतों तथा चुड़ैलों, देवी प्रकोपों से गाँव की तथाकथित रक्षा करने में मदद करता है। इनका मानना है कि तीव्र वर्षा, सूखा, बीमारियाँ, प्राकृतिक आपदायें आदि सभी दैवीय प्रकोप के कारण आते है। ये बीमारियाँ तथा कष्टों के निवारण के लिए झाड़–फूंक में यकीन रखते है। इसके अलावा समस्या समाधान के लिए हवन, टोना–टोटका, झाड़ा लगवाना, पशुबली आदि उपाय भी किये जाते है। अंध विश्वास, महामारी, अप्रत्याशित प्राकृतिक विपत्तियाँ, भिन्न समुदायों से परस्पर वैमनस्य, भूत बाधा और एक दूसरे पर जादू–टोना करने–कराने का कार्य आदि क्रियाओं के कारण ओझागिरी तथा भोपों का अस्तित्व अब भी भील समुदाय में प्रभावकारी बना हुआ है। देवरों पर अन्दरूनी बीमारियों का तलवार से बिना चीरफाड़ किये पेट का ऑपरेशन करने का दावा किया जाता है। रविवार के दिन ऐसे कई देवरों पर ऑपरेशन होते है।

## निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध का एक पहलु भील जनजाति के सामाजिक संगठन एवं संस्कृति के अन्य आयामों पर प्रकाश डालना रहा है। जनजातीय समाज की परम्पराओं का मूल्यांकन करके उनके लिए कल्याणकारी योजनाओं का निर्माण कर, उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता है। भील जनजाति की प्रमुख सामाजिक समस्याएँ अशिक्षा,

सामाजिक कुरीतियाँ, राजनैतिक अज्ञानता, निर्धनता, बेरोजगारी, स्वास्थ्य, आवास, ऋणग्रस्तता एवं अत्याचार से संबंधित है। भील जनजाति समाज में कई कुरीतिया विद्यमान है जिसमें नातरा, न्यौतरा, दापा, बे–मेल विवाह, नशा, अंधविश्वास जैसी कुरीतियाँ प्रमुख है। जनजाति समाज में महिला को वस्तु समझा जाता है जिसका प्रयोग स्वयं की श्रेष्ठता दिखाने के लिए किया जाता है। इसके लिए बालिका शिक्षा की दिशा में प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास किये जाने चाहिये। जिससे वे अपना हित–अहित भली प्रकार समझ सके। धार्मिक अंधविश्वासों तथा पाखण्डों को दूर करने के लिए सामाजिक चेतना का विकास किया जाना चाहिये। सूदखोर, महाजनों के उन्मूलन और क्रय–विक्रय एवं ऋण की सुविधाओं के संगठन कार्य को प्राथमिकता देनी चाहिये। ऋण देने की शर्तों को आसान होना चाहिये और ऋण समितियों को खर्च एवं अनुत्पादक कार्यों के लिए कर्ज देने की स्वीकृति होनी चाहिये। जिससे विवाह, उत्सव आदि आयोजनों पर जनजाति वर्ग के व्यक्ति को महाजन से कर्ज ना लेना पड़े। जिससे गरीब जनजाति व्यक्ति को महाजन के आर्थिक अत्याचार का शिकार ना होना पड़े। संक्षेप में, भील समुदाय पर भी औद्योगिकरण तथा नगरीकरण का प्रभाव पड़ा है। ये लोग रहन–सहन तथा जीवनशैली के दृष्टिकोण से अन्य गैर जनजाति समूहों के स्तर तक आ रहे है, किन्तु सुदूर ग्रामीण अंचलों में अभी भी इस ओर अत्यन्त प्रयास की आवश्यकता है।

❒

*सन्दर्भ –*


1. *चौरसिया, बी.बी., सेड्यूल्ड कास्ट एण्ड सेड्यूल्ड ट्राइब इन इंडिया (1990), पृ.2*
2. *सिंह, के.सी, द सेड्यूल्ड कास्ट वोल्यूम (1993), पृ.4*
3. *भारद्वाज, ए.एन, द प्रोब्लम ऑफ सेड्यूल्ड कास्ट एण्ड सेड्यूल्ड ट्राइब इन इंडिया (1997), पृ.12*
4. *मिश्रा, आर.एन., ट्राइबल लाइफ एण्ड हेबिटेट (इकॉनोमी एण्ड सोसायटी)(2002) पृ.22*
5. *दीक्षित के. नीशी, ट्राइब्स एण्ड ट्राइबल्स स्ट्रगल फॉर सर्वाइवल (2006), पृ.17*
6. *पंत, बी. आर., ट्राइबल्स डेमोग्राफी ऑफ इंडिया (2010), पृ.116*
7. *आहूजा, राकेश, वेलफेयर एण्ड ट्राइबल डेवलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन(2009), पृ.113*

*पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक, 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 79–85*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# नारद स्मृति में वर्णित दायभाग

**डॉ.पूनम**
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, रघुनाथ गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, मेरठ(उ.प्र.)
E-mail: snav3803su@gmail.com Mob. 9639196181

**सारांश**

*दाय एवं दान दोनों ही 'दा' धातु से बने है। परन्तु दोनों के अर्थ भिन्नता दिखायी पड़ती है। दान से तात्पर्य दूसरे को अपनी सम्पत्ति का मालिक बनाना है, जबकि दाय में मालिक की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति का हक उसके पुत्रों को मिलना है। स्मृतियों के साथ–साथ 'दाय' शब्द का जिक्र वैदिक साहित्य में भी मिलती है। नारद स्मृति के अनुसार– ''ज्येष्ठ पुत्र द्वारा अपने पिता की सम्पत्ति विभाजन का प्रबन्ध करने को 'दाय' कहा गया है। नारद स्मृति में सम्पत्ति विभाजन की चार अवस्थाओं का जिक्र देखने को मिलता है। प्रथम–पिता द्वारा अपने जीवनकाल में ही सम्पत्ति का बँटवारा, पिता द्वारा अपनी भौतिक इच्छायें पूर्ण होने पर सम्पत्ति का बँटवारा, पिता की मानसिक स्थिति ठीक न होने पर सम्पत्ति का बँटवारा, चतुर्थ पिता की मृत्यु होने के पश्चात् सम्पत्ति का बँटवारा। उपरोक्त प्रकार की व्यवस्था मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों में भी देखने को मिलती है। बालिग होने की उम्र के संदर्भ में स्मृतिकारों में मतैक्य नहीं है। नारद के अनुसार 16 वर्ष के बालक को नाबालिग कहा जाता है। परन्तु उसके माता–पिता न रहे तो वह आत्मनिर्भर हो जाता है। कात्यायन का मानना है कि 16वें वर्ष के आरंभ में बच्चा बालिग हो जाता है।*

**मूल शब्द**– दायाद, रिक्थ, सम्पत्ति, बन्धुदायाद, अदायादबान्धक, शौद्र, ऋण, ज्येष्ठ

## परिचय

दाय एवं दान दोनों ही शब्द दा धातु से बने हैं। परन्तु दोनों के अर्थ में भिन्नता है। दान से तात्पर्य किसी दूसरे को अपनी सम्पत्ति का मालिक बनाना है जबकि दाय से तात्पर्य स्वामी की मृत्यु हो जाने पर उसके सगे–सम्बन्धियों का उसकी सम्पत्ति पर स्वामित्व।[1] दाय शब्द का जिक्र वैदिक साहित्य में भी मिलता है। ऋग्वेद में एक जगह शतदाय शब्द का इस्तेमाल हुआ है जिसे सापण ने वसीयत से युक्त के अर्थ में लिया है।[2] दूसरे स्थान पर रिक्थ शब्द का भी

इस्तेमाल मिला है।[3] अथर्ववेद में सोम को ब्राह्मणों का दायाद कहा है।[4] ब्राह्मण ग्रन्थों एवं तैत्तिरीय संहिता में दाय शब्द का प्रयोग कहीं सम्पत्ति के लिए किया गया है तो कहीं–कहीं पैतृक सम्पत्ति के सम्बन्ध में इसका जिक्र देखने को मिलता है।[5] अर्थशास्त्र में दायाद के स्थान पर रिक्थ शब्द देखने को मिलता है। स्मृतियों में दायभाग के सम्बन्ध में विवरण देखने को मिलता है। नारद स्मृति के अनुसार– ज्येष्ठ पुत्र द्वारा अपने पिता की सम्पत्ति विभाजन का प्रबन्ध करने को दायभाग कहा गया है।[6] माता–पिता के सम्पत्ति सम्बन्धी विभाजन को लेकर अलग–अलग नियम निर्धारित थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति का विभाजन पुत्रों के बीच होता था जबकि माता की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति का विभाजन पुत्रियों के मध्य किया जाता था।[7] ठीक इसी प्रकार की व्यवस्था मनु स्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों में भी देखने को मिलती है।[8]

नारद–स्मृति में सम्पत्ति विभाजन की चार अवस्थाओं का जिक्र देखने को मिलता है। पहला–पिता द्वारा स्वेच्छा से अपने जीवनकाल में ही अपने पुत्रों के मध्य सम्पत्ति का विभाजन करना। इस तरह के बँटवारे को भंग नहीं किया जा सकता था, चाहे किसी का हिस्सा कम ही क्यों न हो। इसी प्रकार का सम्पत्ति विभाजन याज्ञवल्क्य, बृहस्पति एवं विष्णु स्मृतियों में भी देखने को मिलता है।[9] दूसरी तरह के विभाजन में पिता के जीवनकाल में ही जब पिता की सारी भौतिक इच्छायें समाप्त हो जाये तथा उसकी सारी पुत्रियाँ विवाहित हो जाये और उसकी सन्तानोत्पत्ति की स्थिति न रहे इन परिस्थितियों में पिता की इच्छा के विरूद्ध भी पुत्र सम्पत्ति का बँटवारा कर सकते हैं।[10] तृतीय स्थिति में– पिता के पागल होने, अंधा या लंगड़ा होने पर उसकी इच्छा के विरूद्ध भी सम्पत्ति का विभाजन किया जा सकता था। चतुर्थ में पिता की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति का बँटवारा होना। उपरोक्त सूचना मनु एवं याज्ञवक्ल्य स्मृति में भी देखने को मिलती है।[11] उपरोक्त सम्पत्ति सम्बन्धी विभाजन वर्तमान में भी देखने को मिलता है।

सम्पत्ति सम्बन्धी विभाजन के पीछे धार्मिक कारण भी दिखायी पड़ते हैं। इस संदर्भ में नारद का कथन है कि संयुक्त रूप से भाईयों द्वारा किया गया धार्मिक कार्य एक होता है परन्तु जब वे अलग होकर अलग–अलग धार्मिक कार्य करते है तो धर्म वृद्धि होती है। इस संदर्भ में मनु का कहना है कि वे संयुक्त रूप से भी रह सकते हैं, और यदि धर्म वृद्धि चाहे तो अलग–अलग भी रह सकते हैं। इस प्रकार का विवरण बृहस्पति में भी देखने को मिलता है।[12] साधारणतः उत्तराधिकारियों के बालिग होने पर ही सम्पत्ति का विभाजन होता है। किन्तु सम्पत्ति के उत्तराधिकारी का नाबालिग होना सम्पत्ति के विभाजन में बाधा नहीं था। परन्तु बौधायन एवं कौटिल्य ने उत्तराधिकारी के बालिग होने पर ही सम्पत्ति विभाजन को मान्यता दी।

बालिग होने की उम्र के संदर्भ में स्मृतिकारों में मतैक्य नहीं है। नारद के अनुसार 16 वर्ष के बालक को नाबालिग कहा जाता है। परन्तु इस उम्र के पश्चात् माता–पिता के न रहने पर वह आत्मनिर्भर हो जाता है परन्तु जब तक माता–पिता जीवित हैं तब तक बालिग होने पर भी नारद उसे बालिग मानने के पक्ष में नहीं है। वही दूसरी ओर कात्यायन का कहना है कि बाल्यावस्था सोलहवें वर्ष के आरम्भ में समाप्त हो जाती है।[13] वर्तमान में बालिग होने की आयु अठारह वर्ष निर्धारित है।

सम्पत्ति सम्बन्धी उत्तराधिकारी को लेकर नारद का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति दस वर्षों तक संयुक्त परिवार से अलग रहकर धार्मिक एवं व्यापारिक कार्य में लगा रहता है तो उसे

अलग ही समझना चाहिए। इस संदर्भ में नारद स्मृति का संकेत संयुक्त सम्पत्ति के बँटवारे के सम्बन्ध में हैं। कात्यायन भी इस नियम से सहमत हैं।[14] बृहस्पति का भी मानना है कि जब कोई व्यक्ति अपना देश छोड़कर अन्यत्र चला जाता है ,तो उसके उत्तराधिकारी तीसरी, चौथी, पाँचवीं पीढ़ी के गोत्रज हो सकते है।

सम्पत्ति के विभाजन में स्त्री के उत्तराधिकार को लेकर नारद का मानना है कि पिता की मृत्यु की उपरान्त पुत्रों के समान ही माँ को भी सम्पत्ति में साझेदारी मिलती है। यदि कई भाईयों में कोई एक सन्तानहीन ही मर जाये तो उसकी सम्पत्ति को अन्य भाई स्त्रीधन को छोड़कर आपस में बांट लेते हैं। परन्तु उन्हें भाई की पतिव्रता स्त्री का जीवन भर भरण–पोषण करना पड़ता है।[15] मनु, याज्ञवल्क्य एवं विष्णु भी इसी मत के समर्थक है। कात्यायन के अनुसार पुत्रहीन पतिव्रता विधवा अपने पति की सम्पत्ति का उपभोग जीवन पर्यन्त कर सकती है लेकिन उसे उस सम्पत्ति को दान, विक्रय एवं बन्धक रखने का अधिकार नहीं होता है। बृहस्पति ने विधवा पुत्रहीन स्त्री को ही उसके पति की सम्पत्ति का प्रथम अधिकारी घोषित किया है। इसके पीछे वे तर्क देते हैं कि वेदों, स्मृतियों एवं लोकाचार द्वारा घोषित है कि पत्नी अर्धांगिनी है जो पाप व पुण्य में आधे–आधे की साझेदार है जब तक मृत पति की पत्नी जीवित है तब तक उसके शरीर में मृत पति का आधा शरीर जिंदा रहता है। इस आधार पर मृत पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी अन्य कैसे हो सकता है।[16]

## पुत्रों की महत्ता एवं उनमें सम्पत्ति विभाजन का नियम

प्राचीन ग्रन्थों में पुत्रों की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद में पाणिग्रहण के समय वधु को वीर पुत्रों को पैदा करने के लिए आशीर्वाद दिया गया है। साथ ही पति को भी दस पुत्रों को पैदा करने के लिए आशीर्वाद दिया गया है।[17] अथर्ववेद में भी पहले स्त्री को पुरूष प्राप्ति के लिए कहा गया है। शतपथ एवं ऐतरेय ब्राह्मण में भी पुत्र के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि पुत्र जन्म से मनुष्य पितृ–ऋण से मुक्ति पाता है एवं अन्त में उसे अमृत्व एवं दिव्य लोकों की प्राप्ति होती है। स्मृतियों में भी पुत्रों के महत्व की चर्चा मिलती है। नारद का मानना है कि पितृगण पुत्र की कामना ऋणों से मुक्ति के लिए करते हैं।[19] ऐसी सूचना बृहस्पति एवं कात्यायन स्मृतियों में भी मिलती है। स्मृतिकारों ने 12 प्रकार के पुत्रों की चर्चा की है। नारद ने बारह प्रकार के पुत्रों को दो भागों में विभाजित किया है– बन्धुदायाद एवं अदायादबान्धक, प्रथम श्रेणी में और, क्षेत्रज, पुत्रिका पुत्र, कानीन, सहोढ़, एवं गूढ़ोत्पन्न पुत्र आते हैं, जबकि दूसरी श्रेणी में पौनर्भव, अपविद्ध, स्वयंदत्त, दत्त, क्रीत तथा कृत्रिम। मनुस्मृति में 12 पुत्रों के अतिरिक्त एक तेरहवें पुत्र का भी जिक्र मिलता है।[20] जिसे उन्होंने शौद्र के नाम से सम्बोधित किया है। जबकि याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, पाराशर एवं विष्णु ने बारह प्रकार के पुत्रों का ही जिक्र किया है।

नारद स्मृति के अनुसार बन्धुदायाद श्रेणी के पुत्र अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् अपने पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बनते हैं जबकि अदायादबन्धव अपने पिता का सिर्फ गौत्र गृहण कर सकते हैं पर पिता की सम्पत्ति नहीं पाते हैं। अनुलोम–प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न पुत्रों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार को लेकर भी स्मृतिकारों में मतभेद दिखायी पड़ता है। नारद के मतानुसार वैधानिक ढंग से विवाहित स्त्रियों के वर्ण के आधार पर विभिन्न पुत्रों का अंश निर्भर करता है लेकिन नारद इस बात को स्पष्ट नहीं कर पाये है कि किस वर्ण की स्त्री से उत्पन्न

पुत्र को कितना सम्पत्ति का हिस्सा मिलेगा। जबकि याज्ञवल्क्य, बृहस्पति एवं मनु सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार को लेकर अधिक स्पष्ट हैं। इनके अनुसार यदि किसी ब्राह्मण के चारों वर्णों की स्त्रियों से उत्पन्न पुत्र हो तो सम्पूर्ण सम्पत्ति को दस भागों में बांटकर, चार भाग ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न पुत्र को तीन भाग क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न पुत्र, दो भाग वैश्य स्त्री से उत्पन्न पुत्र को तथा एक भाग शूद्र स्त्री से उत्पन्न पुत्र को दिया जाना चाहिए।[21]

स्मृतिकारों ने अजौरस पुत्रों को भी सम्पत्ति में भाग पाने का अधिकार दिया है। ज्येष्ठ पुत्र के सम्पत्ति में भाग को लेकर प्रायः सभी स्मृतिकारों का मानना है कि सम्पत्ति का विभाजन करने से पूर्व पैतृक सम्पत्ति से कुल के ऋणों का भुगतान, पिता द्वारा लिए गये ऋणों का भुगतान, पिता द्वारा दिये गये दान, सहभागियों एवं आश्रित नारियों का जीविका निर्वाह, कुमारी कन्याओं के विवाह की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। इसके अतिरिक्त नारद के मतानुसार पैतृक सम्पत्ति से छोटे भाईयों के संस्कारों के लिए भी धन मिलना चाएिह। याज्ञवल्क्य एवं बृहस्पति दोनों ही इस मत को मानते हैं। सम्पत्ति विभाजन में बड़े पुत्र को वरीयता देते हुए नारद का मानना है कि ज्येष्ठ पुत्र को सम्पत्ति थोड़ा ज्यादा देनी चाहिए। एक अन्य स्थल पर नारद सम्पूर्ण सम्पत्ति ज्येष्ठ पुत्र को देने की बात करते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण परिवार की देखभाल करने की जिम्मेदारी भी ज्येष्ठ पुत्र की ही होती है।[22] मनुस्मृति में ज्येष्ठ पुत्र के सम्पूर्ण सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनने के पीछे के कारण पर प्रकाश डाला गया है। चूंकि उसके जन्म से पिता की पितृ–ऋण से मुक्ति मिलती है। अतः वह पिता से सम्पूर्ण सम्पत्ति पाने का अधिकारी होता है।

कन्या के सम्पत्ति में हिस्से को लेकर नारद ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि कन्या को भी उत्तराधिकारी माना जाये। पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्र के समान पुत्री भी पिता के कुल को चलाने वाली होती है। इस संदर्भ में दायभाग का कहना है कि पुत्र के अभाव में सिर्फ वही पुत्री सम्पत्ति की उत्तराधिकारी हो सकती है जो किसी की रखैल एवं विधवा न हो। इसी प्रकार का वर्णन याज्ञवल्क्य, कात्यायन, विष्णु एवं बृहस्पति स्मृतियों में भी देखने को मिलता है।[23]

शारीरिक एवं मानसिक दुर्गुणों से युक्त व्यक्ति को प्राचीन भारत में सम्पत्ति के अधिकार से वंचित रखा जाता था। गौतम, वशिष्ट, बौधायन एवं आपस्तम्भ धर्मसूत्रों का मानना भी है कि पागल, क्लीब, जड़, असाध्य रोगी को रिक्थाधिकार से वंचित मानना चाहिए। अर्थशास्त्र में भी इस बात को मान्यता मिली है। महाभारत में भी धृतराष्ट्र को जन्माध होने के कारण राजा नहीं बनाया गया। इस सम्बन्ध में सभी स्मृतिकारों के भी मत समान है। मानसिक एवं शारीरिक दुर्गुणों वाले व्यक्तियों को सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वंचित करने के पीछे का कारण यह था कि ऐसे व्यक्ति धार्मिक कार्यों को करने में सक्षम नहीं थे। स्मृतिकारों ने इस बात को भी माना है कि जो पितृद्रोही, पतित या क्लीब है, जो दूसरे देश में समुन्द्र की यात्रा करता है वे और होते हुए भी रिक्थाधिकार से वंचित होते हैं। नारद स्मृति में कई पुरूषों से उत्पन्न पुत्र को रिक्थाधिकार से वंचित माना है।[24]

विभाजन सम्बन्धी विवादों के निर्णय के लिए स्मृतिकारों ने नियम बनाये हैं। नारद स्मृति में वर्णन मिलता है कि यदि कोई चल या अचल सम्पत्ति विवाद का कारण बनती है तो उस सम्पत्ति सम्बन्धी विवाद को लिखित दस्तावेज या सब कुछ जानने वाले व्यक्ति के साक्ष्य के आधार पर दूर किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त नारद ने अलग–अलग ढंग से किये जाने

वाले धार्मिक कृत्यों को भी प्रमाण माना है। पशु, ऋणों का आदान–प्रदान, भोजन पात्र, आय–व्यय का ब्यौरा आदि भी प्रमाण के रूप में स्वीकार किये गये हैं। जो हिस्सेदार दस वर्षों से संयुक्त परिवार से पृथक रह रहा है और धार्मिक एवं व्यापारिक कार्य स्वयं कर रहा है उन्हें अलग ही समझा जायेगा।[25] इस तरह का वर्णन मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों में भी मिलता है, परन्तु इस बात पर बृहस्पति का मत नारद से भिन्न देखने के लिए मिलता है। बृहस्पति का मानना है कि यदि उत्तराधिकारी सातवीं या आठवीं पीढ़ी का भले ही क्यों न हो उसके जन्म एवं कुल का निश्चित पता लगाकर उसे उसका भाग लौटा दिया जाना चाहिए। बृहस्पति के ये नियम इस मत को प्रकट करते हैं कि लम्बी अवधि के उपरान्त भी कोई उत्तराधिकारी संयुक्त कुल की सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है।[26]

मनुस्मृति में वर्णन मिलता है कि वस्त्र, यान, अलंकार, भोजन, स्त्रियों एवं मार्ग का विभाजन नहीं होता है।[27] याज्ञवल्क्य ने भी इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया है। उनके अनुसार पिता द्वारा इस्तेमाल किये गये वस्त्र, अलंकार, यान, शयया आदि को पिता की मृत्यु के उपरान्त श्राद के समय आमंत्रित किये गये ब्राह्मणों को दान में दे देना चाहिए और कृप का प्रयोग बारी–बारी से होना चाहिए। बँटवारा मूल्य लगाकर नहीं होना चाहिए। नौकर के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य ने बताया है कि यदि नौकरानी एक है तो उसे बारी–बारी से इस्तेमाल करना चाहिए, यदि एक से अधिक है तो उन्हें बाँटा जा सकता है या फिर उसके मूल्य का बँटवारा हो सकता है।[28]

बृहस्पति ने विभाज्य एवं अविभाज्य सम्पत्ति के बीच में अन्तर को स्पष्ट किया है और इस संदर्भ में अपने पूर्ववर्ती स्मृतिकारों की आलोचना की है। बृहस्पति का मानना है कि जो लोग वस्त्र आदि को अविभाज्य मानते है इन्होंने इस संदर्भ में ठीक से विचार नहीं किया है। धनिक लोगों के वस्त्र एवं आभूषण भी धन का रूप पा सकते है। यदि इन वस्तुओं को अविभाज्य श्रेणी में रखा जाये तो उनकी जीविका नहीं चल सकती है। न ही इन वस्तुओं को किसी एक व्यक्ति को दिया जाना चाहिए बल्कि इन वस्तुओं का बड़ी ही दक्षता के साथ विभाजन किया जाना चाहिए। अन्यथा ये निरर्थक सिद्ध होगी। यदि इन वस्तुओं का बँटवारा संभव न हो तो इनका विभाजन बेचकर किया जा सकता है। और वस्तुओं के बेचने से जो धन की प्राप्ति हो उसे आपस में बाँटा जा सकता है। ठीक उसी प्रकार यदि पके भोजन का विभाजन नहीं हो सकता है तो उतना ही बगैर पका भोजन दिया जा सकता है। योगक्षेम वाले दान से प्राप्त धन समान भागों में बांट देना चाहिए। आने जाने वाले मार्ग व चरागाह का इस्तेमाल भी भाग के अनुसार ही होना चाहिए। अविभाज्य वस्तुओं का एक साथ सही समय पर ही उपयोग किया जाना चाहिए।[29]

स्मृतिकारों ने विधाधन का भी वर्णन किया है। इस संदर्भ में नारद के अन्य स्मृतिकारों की अपेक्षा परस्पर विरोधी वचन देखने को मिलते हैं। एक तरफ जहाँ नारद कहते हैं कि शौर्य से प्राप्त सम्पत्ति, स्त्री सम्पत्ति एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों से अर्जित सम्पत्ति अविभाज्य है, ठीक वहीं दूसरी तरफ उनका मानना है कि एक भाई यदि अपने दूसरे भाई का पोषण करता है जो विज्ञान के अध्ययन में संलग्न है तो वह भाई अपने दूसरे भाई द्वारा अर्जित सम्पत्ति का एक भाग पाने का अधिकारी है, भले ही पोषण करने वाला भाई अज्ञानी ही क्यों न हो।

''कुटुम्बं विभश्याद भ्रातुर्यो विघामधिगच्छतः। भागं विधाधनात्तस्मात्स लभेता श्रुतोऽपि सन्।।[30]

परन्तु मनु, याज्ञवल्क्य एवं विष्णु विधाधन से अर्जित सम्पत्ति को अविभाज्य मानते हैं। उनका मानना है कि यदि कोई संयुक्त सम्पत्ति को क्षति पहुँचाये बिना स्वयं के परिश्रम से कुछ अर्जित करता है तो यदि वह न चाहे तो उसे किसी को नहीं दे सकता है। क्योंकि यह सम्पत्ति उसकी स्वयं की अर्जित सम्पत्ति है।[31] उपरोक्त मत का खण्डन करते हुए जीमुतवाहन ने दायभाग में कहा है कि जो बच्चा जन्मकाल से ही अपनी जीविका के लिए कुल पर निर्भर करता है, उसके लिए यह कहना कि उस पर पैतृक सम्पत्ति खर्च नहीं की गयी है, बिल्कुल भ्रामक है। अतः उसके द्वारा अर्जित धन का विभाजन होना चाहिए। कात्यायन ने ऐसे धन को अविभाज्य माना है जो धन किसी के द्वारा अपनी प्रतिभा से अर्जित किया गया है। शिल्पियों द्वारा उपहार स्वरूप प्राप्त धन अविभाज्य है। शर्त लगाकर उत्तम ज्ञान द्वारा प्राप्त किया गया धन भी अविभाज्य धन की श्रेणी में आता है।[32]

स्त्री धन को लेकर भी स्मृतिकारों ने नियम बनाये है। प्रायः सभी स्मृतिकारों ने स्त्रीधन को एक विशिष्ट प्रकार की सम्पत्ति माना है। यह वह धन है जो स्त्रियों द्वारा विशिष्ट अवसरों पर उपहार या अन्य रूप में प्राप्त किया जाता है। नारद ने छः प्रकार के स्त्रीधन गिनाये है– विवाहाग्नि के समक्ष वधू द्वारा प्राप्त, वधू को प्रदत्त धन, पति, भाई, माता–पिता द्वारा दिया गया धन।[33] मनु ने उपरोक्त छः स्त्रीधन के अतिरिक्त भी एक अतिरिक्त स्त्रीधन भी गिनाया है जोकि अन्वाधेय (बाद में मिलने वाले भेंट) के नाम से है। इस प्रकार की सूचना याज्ञवल्क्य एवं विष्णु ने भी दी है। कात्यायन ने स्त्रीधन को लेकर विस्तार से चर्चा की है। जो धन स्त्री को विवाह के समय अग्नि के समक्ष दिया जाता है उसे अध्याग्नि स्त्रीधन कहते हैं। विदाई के समय दिया जाने वाला धन अध्यावहनिक, ससुर, सास व ज्येष्ठजनों द्वारा दिया जाने वाला धन प्रीतीदत्त, बरतनों, पशुओं, आभूषणों व दग्सों के रूप में प्राप्त धन अन्वाधेय एवं पिता, पति भाई से प्राप्त धन सौदामिका स्त्रीधन कहलाता है। परन्तु माता–पिता या भाई से छल से लिया गया धन स्त्रीधन नहीं कहलाता है।[34]

स्त्रीधन के उत्तराधिकार को लेकर स्मृतिकारों ने उत्तराधिकार का अधिकार कन्याओं को दिया है। नारद का मानना है कि माता–पिता का धन कन्याओं को मिलना चाहिए और उनके अभाव में उनकी संतानों को–

*''पितर्यूर्ध्व गते पुत्र विभजेरन्धनं क्रमात्। मातुर्दुहितरोऽभावे दुहित्तष्णां तदन्वयः।।*[35]

विवाह के प्रकार के आधार पर भी स्त्रीधन के उत्तराधिकारी अलग है। ब्रहम, दैव, आर्श, प्रजापात्य एवं गांधर्व नामक विवाह से विवाहित स्त्री यदि सन्तानहीन रह जाये तो उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसका पति होता है। परन्तु राक्षस एवं पैशाच विवाह से विवाह स्त्री की मृत्यु हो जाये और उसके कोई संतान न हो तो उसकी सम्पत्ति के अधिकारी उसके माता–पिता होते हैं। इस प्रकार का वर्णन मनु, याज्ञवल्क्य एवं विष्णु स्मृतियों में भी मिलता है। बृहस्पति का मानना है कि स्त्रीधन में कुँवारी कन्याओं को वरीयता मिलनी चाहिए। कात्यायन भी स्त्रीधन में कुमारी कन्याओं को ही वरीयता देते हैं।

❒

*सन्दर्भ –*


1. काणे, पी.वी. (1950), धर्मशास्त्र का इतिहास, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, बम्बई, पृ. 838–391
2. ऋग्वेद– (1849–1874), सम्पादक– मैक्समूलट, लन्दन, पृ. 2/32/4
3. वही, पृ. 3/31/2
4. अथर्ववेद– (1964), स्वाध्याय मंडल पार्टी, होशियारपुर, पृ. 5/18/6
5. तैतरीय संहिता (1938), आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना, पृ. 4/5/8/2
6. नारद स्मृति (1967), चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, पृ. 3/1
7. वही, लोक संख्या 13/2
8. मनु स्मृति– प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 9/104
9. याज्ञवल्क्य स्मृति (2004), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, पृ. 2/114
10. नारद स्मृति (1967), चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, पृ. 13/3
11. मनु स्मृति (2020), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 9/104
12. वही, पृ. 9/111
13. कात्यायन श्रोत सूत्र (1987), अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, पृ. 893
14. वही, पृ. 893
15. नारद स्मृति (1967), चौखम्बा संस्कृति सीरिज ऑफिस, वाराणसी, पृ. 13/12
16. आयंगर, के0वी0 रंगास्वामी (1940), बृहस्पति– जे.ई. बिंघम, कलकत्ता, पृ. 46–49
17. ऋग्वेद (1962), स्वाध्याय मंडल पार्टी, गुजरात, पृ. 10/85
18. अथर्ववेद (1964), स्वाध्याय मंडल पार्टी प्रकाशन और वैदिक रिसर्च इंस्टीट्यूट साधु आश्रम, होशियारपुर, पृ. 3–23
19. नारद स्मृति (1967), चौखम्बा संस्कृति सीरिज ऑफिस, वाराणसी, पृ. 1/5
20. मनु स्मृति– प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 9/152
21. वही, पृ. 9/130
22. नारद स्मृति (1967), चौखम्बा संस्कृति सीरिज ऑफिस, वाराणसी, पृ. 13/13–14
23. मनु स्मृति (2020), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 9/130
24. नारद स्मृति (1967), चौखम्बा संस्कृति सीरिज ऑफिस, वाराणसी, पृ. 13/19
25. वही, पृ. 13/48
26. आयंगर, के.वी. रंगास्वामी (1940), बृहस्पति, जी.ई. बिंघम, कलकत्ता, पृ. 25/24–26
27. मनु स्मृति (2020), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 9/219
28. याज्ञवल्क्य स्मृति (2004) चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, पृ. 2/118
29. आयंगर, के.वी. रंगास्वामी (1940), बृहस्पति, जी.ई. बिंघम, कलकत्ता, पृ. 25/79–85
30. नारद स्मृति (1967), चौखम्बा संस्कृति सीरिज ऑफिस, वाराणसी, पृ. 13/10
31. मनु स्मृति (2020), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 9/206
32. कात्यायन श्रोत सूत्र (1987), अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, पृ. 867–73
33. नारद स्मृति (1967), चौखम्बा संस्कृति सीरिज ऑफिस, वाराणसी, पृ. 13/2
34. कात्यायन श्रोत सूत्र (1987), अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, पृ. 903
35. नारद स्मृति (1967), चौखम्बा संस्कृति सीरिज ऑफिस, वाराणसी, पृ. 13/2

*पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 86–92*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# भारतीय राजनीति में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता टिहरी जनपद के विशेष सन्दर्भ में

**सबीना अख्तर**
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, हेमवंती नंदन बहुगुणा गढ़वाल केंद्रीय विश्वविद्यालय,
(स्वामी रामतीर्थ परिसर), टिहरी
E-mail <sabeenaakhtarsabeenaakhtar5@gmail.com>

**सारांश**

*किसी भी देश की शासन व्यवस्था को भली–भांति चलाने के लिए उसे देश की जनता की सहभागिता महत्वपूर्ण होती है लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली में जन–सहभागिता मुख्य भूमिका निभाती है किसी भी राष्ट्र राज्य में जितना अधिक लोगों के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में सहभागिता प्रदान की जाती है, उतना ही उसे राजनीतिक व्यवस्था में स्थायित्व पाया जाता है। राजनीति में सहभागिता पुरुषों के साथ महिलाओं द्वारा भी प्रदान की जाती है प्रत्येक युग में महिलाओं द्वारा राजनीति में सहभागिता प्रदान की गई है। स्वतंत्र भारत में ऐसी कई महिलाएं रही है, जो राजनीति के क्षेत्र में आदर्श बनी है महिलाएं केवल मतदाता के तौर पर ही नहीं बल्कि विभिन्न प्रकार से राजनीति में अपना योगदान प्रदान करती आई है। देश के लोकसभा चुनाव में हो या प्रादेशिक स्तर पर स्थानीय राजनीति में भी महिलाओं की भागीदारी महत्वपूर्ण साबित होती हैप्रस्तुत शोध–पत्र में शोधार्थी द्वारा राजनीतिक सहभागिता का आशय, परिभाषाएं, भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता के बारे में तथा टिहरी जनपद की महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का अध्ययन कर ज्ञात विवरण का उल्लेख प्रस्तुत किया गया है।*

**मुख्य शब्द**– राजनीति, महिलाओं, सहभागिता।

## प्रस्तावना

आज संपूर्ण विश्व में कोई भी राज्य, राष्ट्र ऐसा नहीं है जहां राजनीतिक सहभागिता देखने को ना मिलती हो किसी भी राष्ट्र राज्य की सामाजिक व्यवस्था को भली– भांति चलाने के लिए राजनीतिक व्यवस्था का उचित होना आवश्यक समझा जाता है। विशेषतः लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था वाले देशों में राजनीतिक सहभागिता का महत्व अधिक होता है, राजनीतिक सहभागिता को राजनीतिक व्यवस्था का अभिन्न अंग माना जाता है जिसे समाज में जितने

अधिक लोगों की राजनीति में सहभागिता प्रदान कराई जाएगी उस समाज की राजनीति में स्थायित्व उतना ही अधिक पाया जाएगा जिस देश की शासन व्यवस्था में राजनीतिक सहभागिता का स्तर कम पाया जाता है ऐसे समाज में अराजकता की स्थिति पैदा होने की संभावनाएं ज्यादा देखी जाती है। राजनीतिक सहभागिता राजनीतिक शासन व्यवस्था को औचित्यता प्रदान करती है। देश की शासन व्यवस्था को जन सहभागिता के माध्यम से ही जन समर्थन प्राप्त होता है । राजनीतिक शासन व्यवस्था में सहभागिता कई प्रकार से प्रदान की जा सकती है, वह क्रियाएं लगातार भी की जा सकती है, केवल एक ही बार भी की जा सकती हैं, कभी–कभी हो सकती है, कभी किसी भी परिस्थिति में यह व्यक्तियों के द्वारा की जाने वाली क्रियाएं होती है जो राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करती है एक अच्छी लोकतंत्र शासन प्रणाली राजनीतिक सहभागिता को आधार व ऊर्जा के रूप में स्वीकार कर ही गतिमान रह सकती है, अतः राजनीतिक सहभागिता को राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण संकल्पना कहा जा सकता है। किसी भी देश की शासन प्रणाली को सुव्यवस्थित चलाने व समाज की शांति व्यवस्था को बनाए रखने में राजनीतिक सहभागिता की महत्वपूर्ण भूमिका देखी जाती है इस प्रकार राजनीतिक सहभागिता राजनीतिक व्यवस्था का अभिन्न अंग माना जाता है।

**राजनीतिक सहभागिता**

लोकतंत्र शासन प्रणाली में राजनीतिक व्यवस्था को विधिपूर्वक चलाने के लिए राजनीतिक सहभागिता को महत्वपूर्ण माना जाता है। राजनीति में सहभागिता किसी भी राजनीतिक प्रणाली का एक महत्वपूर्ण कारक साबित होता है। राजनीतिक सहभागिता एक ऐसी प्रणाली है जो की राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले विभिन्न गतिविधियों को समझने में सहायक मानी जाती है राजनीति में जितने लोगों द्वारा प्रतिभागी की जाती है। राजनीतिक व्यवस्था को उसी तरह स्थायित्व प्राप्त होता है जनता द्वारा प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भागीदारी देना ही राजनीतिक सहभागिता कहलाता है, राजनीतिक व्यवस्था को सफल बनाने में सहभागिता मुख्य भूमिका निभाती है। लोकतांत्रिक लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था देश के प्रत्येक नागरिक से संबंधित होती है। राजनीति के अंतर्गत के सहभागिता के स्तर पर बढ़ोतरी लाने के लिए अधिक से अधिक जनता का सम्मिलित होना आवश्यक होता है। आधुनिक लोकतंत्र व्यवस्था की आधारशिला सहभागिता कहलाती है जनता के द्वारा प्रदान की जाने वाली सहभागिता आदर्श समाज को निर्मित करने में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखती है।[1]

**अर्थ**

राजनीतिक सहभागिता दो शब्दों से मिलकर बना है। सामान्य अर्थ साझेदारी होता है महत्वपूर्ण राजनीति किसी भी समाज की आवश्यकता मानी जाती है राजनीतिक व्यवस्था में किसी भी प्रकार व्यक्ति द्वारा अपनी भागीदारी प्रदान करने को राजनीतिक सहभागिता कहते हैं।

सहभागिता एक ऐसी प्रणाली है जिसमें किसी भी सामाजिक स्तर के व्यक्ति के जीवन से संबंधित हर पहलू को विकास की ओर अग्रसर किया जाता है। जिसके द्वारा सभी व्यक्तियों की सहमति व राजनीति के निर्णय प्रक्रिया नियंत्रित रह सके जिससे समाज में प्रत्येक व्यक्ति को सशक्त बनाया जा सके राजनीति में शासन व्यवस्था की ओर से की जाने वाली गतिविधियों को सहभागिता कहेंगे जिस राजनीतिक व्यवस्था में अधिक से अधिक व्यक्तियों का

सहयोग सम्मिलित हो उसे उतनी अधिक सफल राजनीति कहा जाता है अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली वे समस्त राजनीतिक गतिविधियां जिनके द्वारा शासन के निर्णय प्रणाली को प्रभावित किया जाता है, उसे राजनीतिक भागीदारी कहेंगे।[2]

**परिभाषाएं** :–राजनीतिक सहभागिता को लेकर कई विद्वानों ने अपनी परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं–

**नॉर्मन एच.नी.ई. एवं सिडनी वबाः**–राजनीतिक सहभागिता आम लोगों की वह समस्त गतिविधियां है जिनका उद्देश्य राजनीतिक पदाधिकारी के चयन और उनके द्वारा लिए जाने वाले निर्णय को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करना होता है''।[3]

**मैक ग्लास्की** :– '' राजनीतिक सहभागिता को उन स्वैच्छिक क्रियाओं जिनके द्वारा समाज के शासको के चयन प्रत्यक्ष– अप्रत्यक्ष जन– नीतियों के निर्माण में भाग लेते हैं, के रूप में परिभाषित किया जा सकता है''।[4]

**लर्नर** :– ''जो व्यक्ति एक बार राजनीतिक क्रियाकलापों में सहभागी होने का निर्णय कर लेता है वह इन क्रियाकलापों पर अपना एक निश्चित अभिमत भी रखता है तथा उसके अंदर सहभागी होने की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैः।[5]

**माइनर बीनर**– ''राजनीतिक सहभागिता कोई भी स्वैच्छिक कार्य सफलतापूर्वक या असफलतापूर्वक संगठित अथवा संगठित भागों में अथवा लगातार उचित तथा अनुचित तरीकों से प्रमुख अधिकारियों को प्रभावित करके सार्वजनिक नीतियों का चयन करना है राजनीतिक सहभागिता में आमतौर से दो निर्णय आवश्यक है पहले यह निश्चित करना के काम करना या नहीं करना और दूसरा कार्य की दिशा को निश्चित करना।[6]

**न्यू हैंड बुक आफ पॉलीटिकल साइंस के अनुसार**–लोक नीतियों के निर्माण, निरूपण और क्रियान्वयन में सक्रिय भाग लेना राजनीतिक सहभागिता ह।[7]

**पेरी मोयजर एवं डेः**–राजनीतिक सहभागिता सार्वजनिक नीति के निर्माण, निरूपण एवं क्रियान्वयन की प्रक्रिया में सक्रिय भाग लेना है इसका संबंध नागरिकों की उन प्रतिनिधियों से है जिनका उद्देश्य जनप्रतिनिधियों और अधिकारियों द्वारा लिए जाने वाले निर्णय को प्रभावित करना है'।[8]

**हीज–युलाउ के अनुसार–**

''राजनीतिक सहभागिता निर्णय– निर्माण प्रक्रिया अथवा नीति– निर्माण में जनता का भाग लेना है''।

**डी.के. विश्वास के अनुसार**–''राजनीतिक सहभागिता का अर्थ लोगों द्वारा मताधिकार जैसे– राजनीतिक अधिकारों का केवल प्रयोग ही नहीं है, अपितु इसका अर्थ उनकी ऐसी क्रियाशील सहभागिता है जो सरकार के निर्णय – निर्माण कार्य के वास्तव में कार्य को वास्तव में प्रभावित करती है''।[9]

अतः राजनीतिक सहभागिता के अंतर्गत उन सभी कार्य प्रणालियों गतिविधियों को सम्मिलित किया जाता है जो कि राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित करने में समर्थ होती है राजनीतिक प्रणाली के अंतर्गत चुनाव प्रणाली से लेकर सरकार के द्वारा निर्णय– निर्माण प्रणाली को प्रभावित करने की समर्थता राजनीतिक सहभागिता द्वारा होती है राजनीतिक सहभागिता के

माध्यम से शासको को शासितों का उत्तरदाई होने में सहायता प्रदान करता है राजनीतिक सहभागिता द्वारा व्यक्तियों का राजनीतिकरण होता है।

**महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता**

लोकतंत्र शासन प्रणाली का संबंध ही राजनीतिक सहभागिता से है देश के अंतर्गत शासन प्रणाली को सफल बनाने के लिए जरूरी है कि अधिक से अधिक व्यक्ति राजनीतिक व्यवस्था में सहभागिता प्रदान करें जिनमें महिलाओं का भी राजनीति में भाग लेना आवश्यक समझा जाता है प्राचीन समय से पितृसत्तात्मक परिवारों में व साधारण परिवारों में महिलाओं को सहभागिता देने से वंचित रखा जाता था धीरे–धीरे समय के साथ परिवर्तन समाज की कुरीतियों को दूर करने के साथ ही महिलाएं अपने सामाजिक, राजनीतिक अधिकारों को लेकर जागरूक हुई किसी भी समाज का महिलाओं के सामाजिक, राजनीतिक अधिकारों में जागरूक हुए बिना तथा उनके राजनीतिक सहभागिता के अभाव में राज्य राष्ट्र विकसित नहीं हो सकता महिला राजनीतिक सहभागिता उनकी अपनी इच्छा से की जाने वाली राजनीतिक गतिविधियां है जिनके द्वारा निर्णय से संबंधित प्रक्रियाएं निर्धारित व प्रभावित होती हैं अतः महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का आशय केवल मतदान करना न होकर सरकार के प्रत्येक स्तरों तथा निर्णय निर्माण प्रक्रिया, नीतियों के निर्माण में व शक्ति के प्रयोग की भागीदारी में भी होता है।

महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता प्रदान करने की अवधारणा उनके द्वारा की जाने वाली राजनीतिक व्यवस्था में विभिन्न गतिविधियों से होती है जिसके अंतर्गत मतदाताओं के मध्य जाकर अभिमत करना, विधायकों से संपर्क, राजनीतिक मुद्दों पर विचार–विमर्श करना आदि क्रिया–कलापों को शामिल किया जाता है साथ ही उन गतिविधियों को भी सम्मिलित किया जाता है, जिनको राजनीतिक सहभागिता के तहत सामान्य तौर पर राजनीतिक परिधि से बाहर का माना जाता है, क्योंकि महिलाओं के राजनीतिक व्यवस्था में किए जाने वाले क्रियाएं मुख्यतः उनसे संबंधित होते हैं हमारे देश में ऐतिहासिक रूप से कई महिलाएं राजनीति में सक्रिय देखी गई है, जिनमें से रजिया सुल्तान, अहिल्याबाई होल्कर, लक्ष्मीबाई स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में बेगम हजरत महल, अरुणा आसफ अली, सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी आदि।[10]

महिलाओं ने आंदोलन का राजनीतिक संगठनों में प्रतिभाग किया है इसके अलावा क्रांतिकारी वामपंथी आंदोलन, वन कटाई की रोक को लेकर प्रदर्शन राष्ट्रीय आंदोलन के समय महिलाओं ने गांधी जी के अंतर्गत सर्वप्रथम 1917 में महिलाओं के द्वारा राजनीतिक मुद्दा उठाया गया सन 1930 में महिलाओं को मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ है संविधान निर्माता ने भी महिलाओं के विकास को लेकर संविधान में अनेक उपबंधों का प्रावधान प्रस्तुत किया है जिसके द्वारा महिलाओं को सशक्तिकरण की ओर अधिक मजबूत बनाया जा सके व इस तरह कई सारे प्रयास महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को किए जाते रहे हैं। भारत देश की पूर्व सशक्त प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी चिरस्मरणीय है व इनके अलावा जे. जयललिता (तमिलनाडु), सुचेता कृपलानी, उमा भारती, मायावती शीला दीक्षित, ममता बनर्जी आदि महिलाओं ने अपनी प्रशासनिक क्षमता कौशल के द्वारा राजनीतिक सहभागिता में व राजनीतिक सशक्तीकरण को नई दिशा प्रदान की है।

भारतीय संविधान में प्रदत मौलिक अधिकार सभी नागरिकों को समान रूप से प्राप्त हैं इन अधिकारों को लेकर धर्म, लिंग, जाति, जन्म स्थान आदि के बारे में किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव न करने व साथ ही प्रदेश के अधीन सभी व्यक्तियों को समान अवसर उपलब्ध करवाने की व्यवस्था प्रदान की गई है इसी तरह नीति–निर्देशक तत्व में सभी व्यक्तियों को समान कार्य को लेकर समान वेतन प्रदान कराई जाती है तथा साथ ही महिलाओं के लिए विशेष सुविधाएं प्रदान कराए जाने के संबंध में प्रावधान दिए गए हैं भारत देश में आजादी के पक्ष से ही संसदीय चुनाव को लेकर महिलाओं की संसद में सदस्यता के रूप में सहभागिता प्रदान की गई है।[11]

पहली लोकसभा 1952 में 499 सीटों में 22 महिलाओं ने लोकतंत्र लोकसभा की सदस्यता हासिल की भारत की प्रथम कैबिनेट मंत्री राजकुमारी अमृतकौर बनी द्वितीय लोकसभा 500 सीटों में 27 महिलाओं द्वारा सदस्यता ग्रहण की गई तृतीय लोकसभा में 1962 में 65 महिलाओं द्वारा चुनाव लड़ा गया व 34 महिलाओं द्वारा सफलता प्राप्त की गई। 24 जनवरी 1966 में श्रीमती इंदिरा गांधी प्रथम महिला प्रधानमंत्री बनी। चतुर्थ लोकसभा 1967 में 66 महिलाओं में से 31 महिलाएं सदस्यता ग्रहण करने में सफल रही पंचम लोकसभा 1971 में दो महिलाओं ने सफलता प्राप्त की छठवीं लोकसभा सन 1977 में 19 महिलाओं ने सदस्यता प्राप्त की सातवीं लोकसभा 1980 में 28 महिलाओं को सफल ता प्राप्त हुई आठवीं 1984 के लोकसभा चुनाव में 44 महिलाओं ने सफलता प्राप्त की नवी 1990 के लोकसभा चुनाव में 27 महिला उम्मीदवारों ने सदस्यता प्राप्त की इस प्रकार महिलाओं द्वारा राजनीति में अपनी सहभागिता प्रदान की जाती रही है। महिला राजनीतिक सहभागिता को लेकर व्यावहारिक धरातल पर संविधान के 73 में व 74 में संशोधन तथा स्थानीय नगर निकायों के संबंध में हर स्तर पर पदों में एक तिहाई स्थान में आरक्षण व्यवस्था रखी गई है। भारत देश में जनसंख्या का आधा हिस्सा महिलाओं का है, महिलाओं में सशक्तिकरण महिलाओं को मजबूत बनाकर ही हो सकता है। एक स्वस्थ लोकतंत्रात्मक गणराज्य के निर्माण में सभी व्यक्तियों की समान रूप से राजनीतिक भागीदारी आवश्यक है।

हमारे देश में आज भी यह देखा जाता है कि राजनीति तथा अभिशासन से महिलाओं को पूर्ण रूप से शामिल होते हुए नहीं पाया गया सक्रिय रूप से राजनीति में भागीदारी करने वाली महिलाओं की संख्या आज भी कम ही देखी जाती है महिलाओं को पुरुषों के समान समानता प्राप्त कर करने के लिए उन्हें समान स्तर पर सत्ता में भागीदारी करने की आवश्यकता है, तभी सही अर्थ में देश का विकास हो पाएगा अतः महिलाओं को उनके अधिकार प्रदान करने के लिए व हर स्तर पर उनका विकास करने के लिए उनका राजनीतिक व्यवस्था के प्रति रुचि लेना व जागरूक होना जरूरी है व उनके राजनीतिक व्यवस्था में किसी न किसी रूप में प्रतिभाग करना आवश्यक है।[12]

## टिहरी जनपद में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता पर किया गया अध्ययन

1– टिहरी जनपद की 86 प्रतिशत महिलाएं मतदान अपनी इच्छा से करती हैं तथा 14 प्रतिशत महिलाएं राजनीतिक दलों के पूर्ण ज्ञान के अभाव के कारण अपने परिवार के सदस्यों व सहयोगियों के विचारानुसार करती हैं।

2–टिहरी जनपद की 11 प्रतिशत महिलाएं चुनाव लड़ना चाहती हैं तथा 89 प्रतिशत महिलाएं का राजनीति में रुझान न होने के कारण चुनाव लड़ना नहीं चाहती।

3– टिहरी जनपद के अंतर्गत केवल 5 प्रतिशत महिलाएं ही राजनीतिक दलों से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई है व 95 प्रतिशत महिलाएं पारिवारिक वातावरण के कारण, सामाजिक कुरीतियों के कारण व इस क्षेत्र में ज्ञान के अभाव के कारण राजनीतिक दलों से जुड़ी हुई नहीं है।

4– टिहरी जनपद के अंतर्गत 22 प्रतिशत महिलाओं द्वारा स्वीकार किया गया है कि पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के राजनीतिक जीवन को महत्व न देने के कारण उन्हें राजनीतिक सहभागिता प्रदान करने से रोका जाता है तथा 78 प्रतिशत महिलाओं ने शिक्षित परिवार होने से व राजनीतिक महत्व को समझने को लेकर पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को राजनीतिक सहभागिता प्रदान करने से रोकने को नकारा है।

5– टिहरी जनपद की 61 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि सामाजिक कुरीतियों के कारण महिलाओं के राजनीतिक सहभागिता में अवरोध उत्पन्न होता है तथा 39 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि समाज के शिक्षित परिवारों में इस प्रकार की सामाजिक कुरीतियों का अनुसरण नहीं किया जाता है।

6– टिहरी जनपद की 58 प्रतिशत महिलाएं उत्साह पूर्वक राजनीति में सहभागिता प्रदान करती हैं व 42 प्रतिशत महिलाएं राजनीति में उदासीन होने के कारण उत्साह पूर्वक सहभागिता प्रदान नहीं करती हैं।

7– टिहरी जनपद की 47 प्रतिशत महिलाएं राजनीतिक आंदोलन में प्रतिभाग करना जरूरी समझती हैं तथा 53ः महिलाएं राजनीतिक दलों के पूर्ण ज्ञान न होने के कारण व आंदोलन में प्रतिभाग करने के महत्व के ज्ञान के अभाव के कारण राजनीतिक आंदोलन में प्रतिभा करना जरूरी नहीं समझती हैं।

8– टिहरी जनपद की 44 प्रतिशत महिलाओं के द्वारा राजनीति में सक्रियता प्रदान की जाती है तथा 56 प्रतिशत महिलाएं घरेलू काम के दायित्वों के चलते व ग्रामीण परिवेश में अधिक समय कृषि कार्य में व्यस्तता के कारण वे राजनीति में सक्रियता प्रदान नहीं कर पाती हैं।

9– टिहरी जनपद की 66 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि पारिवारिक वातावरण महिलाओं के राजनीतिक जीवन पर प्रभाव डालता है तथा 34 प्रतिशत महिलाएं परिवार के सदस्यों की ओर से राजनीतिक जीवन में सक्रिय रहने के लिए अभिप्रेरित नहीं किए जाने के कारण वह पारिवारिक वातावरण को उनके राजनीतिक जीवन में अवरोध मानती हैं।

10– टिहरी जनपद की 55 प्रतिशत महिलाएं चुनावी मुद्दों पर चर्चा करना पसंद करती हैं तथा 45 प्रतिशत महिलाएं राजनीति के विषय में अज्ञानता के कारण व इस क्षेत्र को लेकर जागरूक न होने के कारण चुनावी मुद्दों पर चर्चा नहीं कर पाती है।

11– टिहरी जनपद की 77 प्रतिशत महिलाएं राजनीतिक दलों से संबंधित ज्ञान रखती हैं तथा 38 प्रतिशत महिलाएं राजनीति में रुचि न लेने के कारण राजनीतिक दलों का पूर्ण ज्ञान नहीं रखती है।

12– टिहरी जनपद की 86 प्रतिशत महिलाएं अपनी राजनीतिक अधिकारों का ज्ञान रखती हैं तथा 14 प्रतिशत महिलाएं शिक्षा के अभाव के कारण अपने राजनीतिक अधिकारों का ज्ञान नहीं रखती है।

13– टिहरी जनपद की 27 प्रतिशत महिलाएं चुनावी दलों को चंदा देना सही समझती हैं तथा 73 प्रतिशत महिलाएं चुनावी दलों को आर्थिक सहायता प्रदान करने को आवश्यक न समझते हुए चंदा देने को सही नहीं मानती हैं।

14 – टिहरी जनपद की 16 प्रतिशत महिलाएं ही चुनावी रैली में प्रतिभाग करती हैं तथा 84 प्रतिशत महिलाएं घरेलू कार्यो व दायित्वों को लेकर समय न निकल पाने के कारण चुनावी रैली में प्रतिभाग नहीं कर पाती है।

15 – टिहरी जनपद की 38 प्रतिशत महिलाएं राजनीतिक सभा सम्मेलनों में प्रतिभाग करती है तथा 62 प्रतिशत महिलाएं सभा, सम्मेलनों का अपने राजनीतिक जीवन में महत्व न जानने के कारण वे इनमें प्रतिभाग नहीं करती है ।

**निष्कर्ष**

टिहरी जनपद की अधिकांश महिलाएं अपने राजनीतिक अधिकारों का ज्ञान रखती हैं इस क्षेत्र की महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता पर अध्ययन कर पाया गया कि सामाजिक कुरीतियों, शिक्षा का अभाव परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्ण रूप से सहयोग न देना तथा राजनीति के क्षेत्र में पूर्ण ज्ञान के अभाव के कारण भी इस क्षेत्र की महिलाएं राजनीतिक सहभागिता प्रदान नहीं कर पाती हैं तथा ऐसी महिलाओं की प्रतिशतता में भी अधिकता देखी गई जो राजनीतिक जीवन में रुचि नहीं दिखाती है अतः यह कहा जा सकता है कि टिहरी जनपद की महिलाएं राजनीति का ज्ञान तो रखती है, लेकिन राजनीतिक गतिविधियों में प्रतिभाग करने के महत्व को नहीं समझती है तथा इसमें सक्रियता नहीं दिखाती हैं टिहरी जनपद की महिलाओं को राजनीति के अंतर्गत समस्त गतिविधियों का बोध रखने के साथ ही इसकी उपयोगिता को समझने की आवश्यकता है।

❐

***सन्दर्भ –***


1. *लिप्सेंट एस. एन. पोलिटिकल, मैन बंबई फेकर एंड साउथ एशिया शालीमार पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी 1948, पृ. 1*
2. *धर्मा दासमी, एम.डी. पॉलीटिकल पार्टिसिपेशन एंड साउथ एशिया शालीमार पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी 1948, पृ. 1*
3. *बघेल, डी.एस. कुर्चली, टी.पी. सिंह , राजनैतिक समाजशास्त्र 2012, विवेक प्रकाशन, पृ. 211*
4. *Herbert mc Glosky: Political Participation, Quoted from David mills] op- cit vol- 12 p-253&254*
5. *लर्नर, डेनियल, द पासिंग आफ ट्रेडिशनल सोसाइटी, मॉडर्न ईजिंग द मिडल ईस्ट, द फ्री प्रेस, न्यूयॉर्क 1968, पृ. 71*
6. *पूनम, मोहन, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ वूमेन, इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स दिल्ली, 2000, पृ. 303*
7. *गुडिन, रॉबर्ट ई. एंड. हेंस, क्लिगमान( एडि.), ए. हैंड बुक ऑफ पोलिटिकल साइंस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस न्यूयॉर्क, 1996, पृ. 17*
8. *पैरी मोररचर एंड डे, पॉलीटिकल पार्टिसिपेशन एंड डेमोक्रेसी इन ब्रिटेन कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस कैंब्रिज 1992, पृ. 19*
9. *यादव डी.पी., तुलनात्मक राजनीति और राजनीतिक परिवर्तन, सुमित इंटरप्राइजेज, प्रथम संस्करण – 2012, पृ. 45, 46*
10. *वी.एन. सिंह व जनमेज्य सिह, नारीवाद, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2001 पृ. 22*
11. *उदय सिंह राजपूत, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता, (संपादक– हरिमोहन धवन व अरुण कुमार) महिला आरक्षण एवं भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर– 2011, पृ. 80, 81*
12. *आशा कौशिक, (सपा.) नारी सशक्तिकरणः विमर्श एवं यथार्थ पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर 2004, पृ. 34*

*पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 93–106*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# कबीर का अनुभववाद

**मेवालाल**
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (BHU) वाराणसी– 221005
E-mail : mevalal94@gmail.com

**सारांश**

*कबीर (1388–1518) ने लगभग 130 साल का लंबा जीवन जिया। यह मध्यकालीन समय था। उस समय जीवन का उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति माना जाता था। उसकी प्राप्ति का माध्यम भक्ति था। और भक्ति में ही लोग अपना कल्याण देखते थे। इसी के माध्यम से इहलोक के बजाय परलोक को बनाने में लग जाते थे। इन सब के लिए एक गुरु की दीक्षा आवश्यक होती थी। यह एक औपचारिक मान्यता थी। कबीर गृहस्थ भी थे और संन्यासी भी थे वह समाज से कटे हुए नहीं थे। वे साधु सत्संग भी किया करते थे उन्होंने देशाटन करके विविध प्रकार के समाज को देखा। विविध प्रकार के लोगों को देखा तथा उनके बीच संबंधों को देखा। यहीं से उनके विचारों में वृद्धि होती है। लोक से प्राप्त ज्ञान स्वतः शास्त्रीय ज्ञान का खंडन है। यही से उनके अनुभववादी बनने की प्रक्रिया शुरू होती है। इन्हीं अनुभव को उन्होंने कविता में ढाला।*

**बीज शब्द**– बुद्धिवाद, अनुभववाद, ज्ञानमीमांसा, आत्मज्ञान, आगमन तर्क, निगमन तर्क, सामाजिक चेतना, संशयवाद, मनोवेग, ईश्वरवाद, नैतिक मूल्य, मानवता, इंद्रीयबोध, आत्मनिष्ठ, लोकोत्तर।

## परिचय

रामस्वरूप चतुर्वेदी 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि 'कबीर में कई तरह के रंग हैं भाषा के भी और संवेदना के भी। हिंदी की बहुरूपी प्रकृति उनमें खूब खुली है।[1] कबीर के काव्य में ब्रह्म, आत्मा, रहस्यवाद, आधुनिकता के रंग तो है ही साथ ही अनुभव के रंग भी देखे जा सकते हैं। जो उनके काव्य का स्रोत भी है। उन्होंने जीवन के अनुभव को काव्य बनाया। उनके इस अनुभव में देखना सुनना सोचना भावना कल्पना आदि शामिल हैं। इसी अनुभव के कारण वे बाहरी दुनिया तथा आंतरिक दुनिया (अपने भीतर) को प्रत्यक्ष देख रहे थे और अपने समय के जागृत संत थे।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के प्रति सचेत होता है। सोचने का यही उद्देश्य भी है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के प्रति भी सचेत होता है यही मानव जीवन का उद्देश्य है। व्यक्ति अपने चेतन मन से संचालित होता है। जिस चीज के बारे में दिमाग सोचता है। उस विचार का स्रोत भौतिक जगत ही होता है। यदि मन अनास्तित्व संबंधी चीजों पर विचार करता है तो भी उसका आधार भौतिक जगत ही होता है। कबीर के काव्य में जो विचार उद्धृत है। वह इंद्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान है। वह शास्त्रीय ज्ञान से अलग है। कबीर व्यक्ति और समाज दोनों को देखते है तथा सोचते भी और गलत चीजों की आलोचना भी करते है। उनके अनुसार गलत वह है जो अतार्किक है जो अनुभव से परे है। जो बुधिसंगत नहीं लगती। इस प्रकार कबीर एक सामाजिक व्यक्ति के रूप में हमारे सामने आते है।

**अनुभववाद**

17वीं शताब्दी में एक प्रश्न पर बौद्धिक लड़ाई हुई। प्रश्न यह था कि ज्ञान का प्रारंभिक बिंदु क्या है? यूरोप में इस प्रश्न पर दार्शनिक दो भागों में बट गए। एक तरफ बुद्धिवादी थे दूसरे तरफ अनुभववाद। बुद्धि वादी ज्ञान का प्रारंभिक बिंदु बुद्धि को मानते थे जबकि अनुभववादी ज्ञान का प्रारंभिक बिंदु अनुभव को मानते थे। बुद्धिवाद के अंतर्गत प्लेटो, रेने डिकार्ट्स आदि आते हैं जबकि अनुभववाद के अंतर्गत जॉन लॉक, मिल, स्पिनोजा, डेविड ह्यूम आदि प्रमुख रूप से आते हैं।

बुद्धिवाद और अनुभववाद दर्शन के ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत आते हैं। यह प्रकृति का अध्ययन, स्रोत तथा ज्ञान की सीमा के बारे बताता है। ज्ञान विभिन्न चीजों के बारे में होती है। यह बहुत विस्तृत है लेकिन इसे तीन श्रेणियां में बांटा जा सकता है –

1. बाह्य संसार का ज्ञान
2. आंतरिक दुनिया का ज्ञान (आत्मज्ञान)
3. नैतिक मूल्यों का ज्ञान

- ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत तीन सवाल आते हैं।
  1. ज्ञान का स्वरूप क्या है ?
  2. ज्ञान कैसे प्राप्त किया जा सकता है?
  3. ज्ञान की सीमा क्या है?
- बुद्धिवाद और अनुभववाद दोनों एक–दूसरे प्रश्न से संबंधित दर्शन है।

अनुभववाद ज्ञान प्राप्त करने का दृष्टिकोण है। जो ज्ञान प्राप्त होता है उसको इंद्रिय के माध्यम से जांचा परखा जाता है। यह एक दर्शन भी है और विचारधारा भी है। 'इसमें उस ज्ञान को महत्व दिया जाता है जो जांच परख व प्रयोग पर आधारित हो। किसी आस्था या अंधविश्वास पर नहीं।[2] यह उन दावों को खारिज करता है जिसका परीक्षण अनुभवजन्य आलोक के माध्यम से नहीं किया जा सकता।

'ज्ञान मीमांसा में अनुभववाद मुख्यता दो अर्थों में प्रयुक्त होता है– (1) ज्ञान से प्राप्त होने वाला अनुभव (2) किसी भी रूप में होने वाला अनुभव ही ज्ञान और समझ की एकमात्र अंतिम

आधार है। यह अनुभवमूलक उपागम (आंख नाक कान जीव त्वचा) में विश्वास करता है।[3] भारतीय दर्शन में मन को भी एक इंद्रिय माना गया है। दूसरे अर्थ के अंतर्गत मन को एक अनुभविक अंग के रूप में रख सकते है।

इंद्रिय अनुभव का सामान्यीकरण अनुभववाद की विशेषता है। इसमें उदाहरण के आधार पर सामान्यीकरण का दृष्टिकोण का प्रयोग किया जाता है। 'घटनाएं किस प्रकार घटती हैं इस संबंध में प्रस्तुत किए गए एक सरल कथन को अनुभाविक सामान्यीकरण की संज्ञा दी गई है। जैसे यह कौवा काला है। वह कौवा काला है। इसलिए सभी कौवे काले हैं। इसमें दो या दो से अधिक चरो के बीच संबंधों का अवलोकन किया जाता है जैसे स्त्री गुणों में पुरुष से श्रेष्ठ है।

यह विचारधारा बुद्धिवाद के विरुद्ध है जो यह मानता है कि विचार जन्मजात नहीं होते है। अनुभववादी मानते हैं कि मानव मस्तिष्क जन्म के समय कोरा कागज की तरह होता है जो संवेदना और अनुभव के प्रयोग से भरता जाता है तथा बाह्य दुनिया का ज्ञान अनुभव पर आधारित होता है।

काई नीलसन अपने लेख 'इंपिरिसिज्म् एन आइडियोलॉजी' में लिखती है 'विचारधारा बारीकी से जुड़े विचारों, विश्वासो और दृष्टिकोण के समूह को संकेतित करता है। जो अनुभव की व्याख्या करता है तथा कार्य के लिए मार्गदर्शन करता है।[4] वे अनुभववाद को एक विचारधारा के रूप में देखती है। साथ ही इसे मार्क्सवाद के समक्ष रखती है जो शोषक वर्ग की संरचना को उजागर करता है।

### बुद्धिवाद और अनुभववाद में अंतर

1. बुद्धिवादी निगमन तर्क में विश्वास करते हैं। इसमें पहले सिद्धांत प्रतिपादित किया जाता है फिर बाद में उसे उदाहरण से सिद्ध किया जाता है जबकि अनुभववादी आगमन तर्क में विश्वास करते हैं। इसमें पहले उदाहरण दिया जाता है फिर उस उदाहरण के आधार पर सिद्धांत प्रतिपादित किया जाता है।

| आगमन तर्क प्रणाली | निगमन तर्क प्रणाली |
|---|---|
| यह गाय दूध देती है। | सभी गाय दूध देती हैं। |
| वह गाय दूध देती है। | मेरे पास एक गाय है। |
| इसलिए सभी गाय दूध देती हैं। | इसलिए यह गाय भी दूध देती है। |

2. बुद्धिवादी सत्य तक पहुंचाने के लिए बुद्धि के प्रयोग को महत्व देते हैं जबकि अनुभववादी अनुभव के प्रयोग को महत्व देते हैं।

3. बुद्धिवाद का प्रमुख क्षेत्र गणित है जबकि अनुभव का प्रमुख क्षेत्र विज्ञान है।

4. बुधिवादियों ने कहा कि नैतिकता ( वफादारी, मदद, सम्मान परवाह आदि) जन्मजात होती है। अनुभववादी मानते है नैतिकता व्यक्ति माता–पिता तथा सामाजिक वातावरण के आधार पर सीखता है।।

5. अनुभववादियों में जॉन लॉक, जॉर्ज बर्कले तथा डेविड ह्यूम आते है। जबकि बुधिवादियो में प्लेटो, रेने डिकार्ट्स, स्पिनोजा आते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि दोनों विचारधारा अपने–अपने जगह पर सही है। दोनों की अपनी–अपनी मान्यताएं हैं। मानव जीवन में कुछ भाव जन्मजात होते हैं तथा कुछ भाव अर्जित भी किए जाते हैं। तर्क के आधार पर ही अनुभव का वजूद है। तर्क से जुड़कर अनुभव बड़ा बनता है। ज्ञान की प्रकृति, यथार्थ आदि को समझने में दोनों महत्वपूर्ण है। इससे यही कहा जा सकता है कि दोनों एक दूसरे के पूरक है।

कबीर और अनुभववाद में समानता यह है कि पारंपरिक ज्ञान को दोनों स्वीकार नहीं करते हैं। कबीर ने पारंपरिक ज्ञान का खंडन उस ज्ञान से किया जो उन्होंने अनुभव से प्राप्त किया था। उपदेश भी अनुभव के आधार पर दिया जो बुद्धि संगत है। कबीर का आत्मज्ञान नैतिक मूल्यों का ज्ञान है। वह अनुभव और संवेदना पर आधारित है। शास्त्रीय ज्ञान को अनुभव की कसौटी पर कसा। जब वह वैध न लगा तो उसका उन्होंने खंडन किया।

यहां एक प्रमुख सवाल उभर कर आता है कि कबीर और तुलसी दोनों के गुरु रामानंद थे तो कबीर ने तुलसी के समान सगुन उपासना क्यों नहीं की? ईश्वर लीला का गान क्यों नहीं किया ? उत्तर यह है कि रामानंद के दिए ज्ञान को अनुभव के क्षेत्र में उन्होंने प्रयोग किया। जब वह उचित नहीं लगा तब उन्होंने उसे छोड़ दिया। कबीर दुनिया और समाज को निष्क्रिय रूप में नहीं देखते हैं बल्कि सक्रिय होकर देखते हैं। समाज में व्याप्त भेदभाव और शोषण की आलोचना भी करते हैं और व्यवहार परिवर्तन भी चाहते हैं।

अनुभववादियों के समान कबीर में भी ज्ञान का मौलिक तत्व विचार है जो अनुभव से प्राप्त किए जाते हैं। उसके लिए शास्त्र का अध्ययन आवश्यक नहीं है। दोनों में अवलोकन प्रधान है। अवलोकन का आधार भौतिक जगत है। अनुभव वादियों के समान कबीर के ज्ञान के पद्धति भी आगमनात्मक है। पहले उदाहरण आता है फिर सिद्धांत आता है। अपनी कविताओं में कबीर शास्त्रीय ज्ञान का खंडन उदाहरण के साथ करते हैं। उदाहरण उनके अनुभव क्षेत्र से आते है। वह अनुभव को समाज से लेते है । काव्य में उनका अनुभव सामान्यीकरण होकर पाठक का अनुभव बन जाता है।

**अनुभव का प्रमुख प्रकार**

**वास्तविक अनुभववाद**– इसके प्रवर्तक जॉन डेवी है। वह दार्शनिक, शिक्षाविद तथा समाज सुधारक थे। उनके अनुसार ज्ञान केवल दुनिया के निष्क्रिय अवलोकन का विषय नहीं है। यह जांच और प्रयोग की एक सक्रिय प्रक्रिया है। ज्ञान केवल अलग–अलग अवलोकन का संग्रह नहीं है। यह जांच की परीक्षण की चल रही प्रक्रिया का परिणाम है। मनुष्य कुछ मौलिक विचारों के साथ पैदा होता है। अता दुनिया को सटीक रूप से समझने के लिए इंद्रिय का प्रयोग आवश्यक है। स्पष्ट है वास्तविक अनुभववाद बुद्धिवाद के करीब है।

**आंशिक अनुभववाद**– इसमें साक्ष्य की भूमिका पहचाना जाता है। यह उस ज्ञान की संभावना को अनुमति देता है जैसे चेतना, नैतिकता या सौंदर्य शास्त्र की प्रकृति प्रत्यक्ष रूप में देखने योग्य नहीं है। उसको आत्मनिरीक्षण के माध्यम से समझा जा सकता है।

## पूर्ण अनुभववाद

जिन दावों को अनुभवजन्य अवलोकन के माध्यम से सत्यापित नहीं किया जा सकता। उन्हें खारिज कर देना चाहिए। यह मानता है कि अनुभव ही ज्ञान का एकमात्र स्रोत है। यह दुनिया और दुनिया के बारे में हमारे ज्ञान की अवधारणा को आकार देता है।[5]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वास्तविक और आंशिक अनुभववाद अनुभववाद का विस्तार है। वास्तविक अनुभववाद में जहां मौलिक विचारों को महत्व मिला वहीं आंशिक अनुभववाद में आत्मनिरीक्षण को महत्व मिला।

## प्रमुख अनुभववादी विचारक

**थॉमस हॉब्स** (1588–1667)

'हॉब्स लोकोत्तरवाद के विरोधी है उनके अनुसार दर्शन कार्य से कारण और कारण से कार्य के ज्ञान को बतलाता है। हम इंद्रियों के साक्षात्कार के द्वारा वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।[6]

'दर्शन गति एवं क्रिया का विज्ञान है। इस गति का ज्ञान प्रकृति पिंडों के भी हो सकते हैं। राजनीतिक पिंडों के भी हो सकते हैं। मनुष्य का स्वभाव, मानसिक जगत, राज्य प्राकृतिक घटनाएं उन्हीं गतियो का परिणाम है, विचार या प्रतिबिंब मस्तिष्क और हृदय की गतियां भौतिक पदार्थों की गतियां है। भौतिक तत्व और गति ये मूल तत्व है। वे जगत के हर एक वस्तु जड़ या चेतन सभी की व्याख्या करने के लिए प्राप्त है।[7]

इससे स्पष्ट है कि दर्शन जीवन से संबंधित है तथा विचारों का स्रोत भौतिक पदार्थ है जिससे मनुष्य अनुभव प्राप्त करता है। 'अरस्तु ने मनुष्य को सामाजिक प्राणी माना जबकि हॉब्स ने मनुष्य को सामाजिक भेड़िया माना। वह धन, मान, प्रभुता या शक्ति के पीछे पड़ा रहता है। उसका यह झुकाव उसे लोभी दोषी हिंसक बनाता है। जब कोई प्रतिस्पर्धा में आता है तो उसे मार डालने, अधीन बना लेने या भगा देने की कोशिश करता है।[8] इससे स्पष्ट है कि कबीर में भी लोभ द्वेष हिंसा की निंदा है जो शासन वर्ग का गुण है। यह शासक वर्ग समाजिक भेड़िया ही तो है जो एक समाज बनाने में एक बाधक तत्व है।

**जॉन लॉक** (1632 – 1704)

'लॉक 17वीं शताब्दी के अनुभववादी विचारक है। 'हॉब्स के भांति विचारो से परे ज्ञान को स्वीकार नहीं करते हैं पर वे ईश्वर को ज्ञान का वि ाय मानते है कहते है अपनी प्रकृति योग्यता को ठीक से उपयोग करके ईश्वर का ज्ञान हो सकता है।[9] इस प्रकार में ईश्वरवाद को भी ले आते हैं जो इंद्रियों के पहुंच से परे है। वे ईश्वर को अनुभूति का विषय मानते हैं।

लॉक की प्रमुख स्थापना है कि मस्तिष्क जन्म के समय एक कोरा कागज के समान रहता है और जब व्यक्ति ज्ञान अनुभव से प्राप्त करता जाता है तो यह कागज भरता जाता है। यह अनुभव भौतिक जगत से आता है। उन्होंने प्रत्यय को दो भागों में बांटा दृ पहली साधारण प्रत्यय दूसरा है संयुक्त प्रत्यय। साधारण प्रत्यय में वस्तु को देखकर मन ाांत रहता है सिर्फ महसूस करता है जबकि संयुक्त प्रत्यय में किसी घटना को देखकर मन सक्रिय हो जाता है सोचता है। 'लॉक जिंदगी और उसके रास्ते को बेहतर बनाने के लिए खोज पर बल देते हैं।[10]

'लॉक कहते हैं सार्वभौमिक सहमत किसी चीज को जन्मजात साबित नहीं करती है मनु य ज्ञान को तब जानता है जब तर्क का प्रयोग करता है।[11] 'ज्ञान प्राप्ति के पहले सामान्य सत्य के लिए व्यक्ति को तर्क का प्रयोग करना चाहिए यह समय की मांग है। व्यक्ति को तर्क करना जानना चाहिए।[12] आगे वे कहते हैं कि हमारा अवलोकन या तो बाहरी संवेदी वस्तुओं के बारे में या हमारे दिमाग के आंतरिक भागों से संचालित होती है जिसे हम महसूस करते हैं और उस पर प्रतिबिंब पड़ता है वह हमारी समझ को सोचने की सामग्री प्रदान करती है। दोनों ज्ञान के स्रोत है जहां से हमारे पास मौजूद या स्वाभाविक रूप से आने वाले सभी विचार उत्पन्न होते हैं।[13] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अनुभव में थॉमस लॉक तर्क को जोड़ते हैं और ज्ञान की प्राप्ति के लिए इसे महत्वपूर्ण भी मानते हैं। इस प्रकार लॉक तक आते–आते ज्ञान प्राप्त के लिए अनुभववाद में तर्क और अहसास जुड़ जाता है।

**जॉर्ज बर्कले** (1685–1753)

बर्कले आत्मनिष्ठ अनुभववादी है। उनके अनुसार जो दिखाई देता है उसी का अस्तित्व है जो दिखाई नहीं देता है उसका अस्तित्व नहीं है। इसके बावजूद इन्होंने ईश्वर की अस्तित्व को माना। संवेदी अंगों को श्रेष्ठ मानते हैं ज्ञान भी संवेदी अंगों से बंधी हुई है जो मैंने नहीं देखा उसे भगवान ने देखा इसलिए भगवान ने वह प्रत्यय हमारे अंदर डाल दिया इसलिए ईश्वर का अस्तित्व है।

**डेविड ह्यूम** (1711–1776)

'डेविड ह्यूम अनुभववाद के क्षेत्र में संशयवाद का प्रतिपादन किया। संशयवाद दो प्रकार का है – (1) पूर्ववर्ती संशयवाद (2) अनुवर्ती संशयवाद।

पूर्ववर्ती संशयवाद – जिसे चिंतन के पूर्व स्वीकार कर लिया जाता है। इसके अनुसार विश्वास सिद्धांतों ही नहीं बल्कि ज्ञान प्राप्त की शक्तियों पर भी संदेह करना चाहिए।

अनुवर्ती संशयवाद – हमारी इंद्रियां तथा मानसिक शक्तियां वस्तुओं का पूर्णता, विश्वसनीय और निश्चित ज्ञान कभी नहीं प्राप्त कर सकती।[14] अतः कहा जा सकता पूर्णता विश्वसनीय ज्ञान कुछ नहीं होता। इस आधार पर किसी भी ज्ञान पर संदेह प्राप्त किया जा सकता है।

स्पष्ट है कि संशयवाद में स्थापित ज्ञान, परंपरा, संस्कृति, सत्ता आदि किसी पर भी संदेह करने के लिए जगह है। संशयवाद ने ज्ञान के नए द्वार खोल दिए।

'ह्यूम के अनुसार नैतिकता का मूल आधार तर्क बुद्धि ना होकर मनोवेग या भावनाएं ही है। वे मनोवेग शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में करते हैं। वे केवल भय क्रोध घृणा प्रेम आदि संवेगों को मनोवेग नहीं कहते अपितु सुख–दुख आशा निराशा इच्छा गर्व नम्रता आदि को भी मनोवेग अंतर्गत ही रखते हैं। इतना ही नहीं वे सौंदर्य भावना, परोपकारशीलता, नैतिक अनुमोदन तथा अनुमोदन की भावना को मनोवेग के अंतर्गत रखते हैं।[15] डेविड ह्यूम का दर्शन शास्त्र में यह एक नया प्रयोग है। ऐसा करके उन्होंने नैतिकता का आधार जो धर्म माना जाता था उसको खारिज कर दिया तथा मानव के लिए एक कल्याणकारी विचारों को महत्व दिया। इसके विपरीत बुद्धिवाद में बुद्ध को प्रधान मानकर भावों को नियंत्रित करने की बात कही गई थी। डेविड ह्यूम का कहना है कि 'मनुष्य तर्क बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर नहीं करता वरन भावना द्वारा

प्रेरित होकर कर्म करता है।[16] उनका कहना है 'परोपकार वृत्ति और मानवता की भावना मनुष्य के लिए उतना ही स्वाभाविक है जितना उसकी सुख की कामना।[17] यह बातें कबीर के यहां भी पाई जाती है मानवता की दृष्टि से उनके लिए सभी मानव समान है। तथा उनमें न्याय की बाते भावना द्वारा प्रेरित दिखाई देती है।

ह्यूम ने समस्त सद्‌गुणों तथा नैतिकता को व्यक्ति एवं समाज के सुख का साधन मात्र माना है। उनका विचार है मनुष्य तर्क बुद्धि से नहीं अपितु सहानुभूति से प्रेरित होकर अपने सुख के साथ–साथ दूसरे के सुख को साथ रखता है।[18] ''कबीर काव्य में भी सहानुभूति के तत्व विद्यमान है। कबीर ने भी अस्प श्य जातियों के प्रति सहानुभूति दिखाई देती है। वह दूसरों के दुख देखकर दुखी होते हैं तथा उसे दुख को दूर करने की कोशिश करते हैं।

ह्यूम का विचार है कि 'निर्णय लेने में तथा कर्तव्य निर्धारण नैतिकता की भूमिका को स्वीकार करना चाहिए।[19] 'वह धर्म को आवश्यक नहीं मानते हैं क्योंकि इससे व्यक्ति के पास सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक कर्तव्यों के पूर्ति के लिए समय और शक्ति नहीं होता है।[20] कबीर में भी हिंदूआई तथा इस्लाम की आलोचना दिखाई देती है। जहां मात्र सिद्धांत है मानवीय चेतना नही है।

ह्यूम मानते है कि 'समाज का निर्माण समझौते से नहीं संगठन से होता है।[21] 'स्त्री पुरुष प्राकृतिक कामवासना के कारण एक दूसरे के करीब आते हैं तथा परिवार का निर्माण करते हैं इसके बाद समाज का निर्माण होता है। परिवार समाज की प्राथमिक इकाई है ।[22] इस प्रकार संगठन से समाज का निर्माण होता है।

अनुभववाद में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इस सामाजिक चेतना को निर्धारित करने वाले भौतिक कारक है। इस ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति उस ज्ञान को अस्वीकार करता है जो ज्ञान शासक वर्ग ने अपने हित के लिए गढ़ता है।

कबीर के देशाटन का उल्लेख रामचंद्र शुक्ल भी करते है।[23] रामनिवास चांडक लिखते हैं कबीर का जीवन संत जीवन है संत का एक स्थान पर रहना ही उसके उद्देश्य पूर्ति का पूर्ण लक्ष्य नहीं है। उन्होंने जीवन को सर्वोपयोगी बनाने का भावना को लेकर देश भ्रमण किया।[24] अत कहा जा सकता है उनके ज्ञान का स्रोत विविध समाज का अवलोकन है। जो उनके विचारों को धनी बनाया।

एक सवाल सबसे पहले गूंजता है वह है कि कबीर के गुरु रामानंद राम भक्ति शाखा से थे तो कबीर ने रामभक्ति सगुण उपासना को क्यों नहीं अपनाया ?

*सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।*
*लोचन अनंत उघड़िया, अनंत दिखावन हार।।*[25]

अवलोकन से स्पष्ट है कि गुरु ने दीक्षा देकर उनको छोड़ दिया और कबीर ने दीक्षा लेकर उनको छोड़ दिया। उन्होंने अपने विचारों से मुक्त रहने को भी कहा होगा। उनको मुक्त करके अपने अनुसार दुनिया देखने को कहा होगा। कबीर ने अपने अनुसार अपने आंखो से दुनिया को देखा। आंखों से अनंत देखने वाले कबीर अपने अनुभव के अनुसार बुराई, रूढ़ि, पाखंड आदि की आलोचना की तथा अपने विचारों की स्थापना भी की।

*पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।*
*आगे थे सतगुरु मिल्या, दीपक दिया हाथि।।*[26]

प्रारंभ में वे वेदमार्गी थे। इस बात को रामचंद्र शुक्ल भी स्वीकार करते है कि वे प्रारंभ में पूजा करते थे तिलक लगाते थे।[27] अवलोकन, अनुभव और बुद्धि का महत्व था। रामानंद में यह बात नहीं थी कि जो मैं कहूं वही सत्य है। मेरे विचारों के अनुसार दुनिया देखो और उसकी व्याख्या करो। उन्होंने उन्हें अंधानुकरण छोड़ने को कहा। उजाले में रखने के लिए दीपक रूपी बुद्धि (तार्किकता) प्रदान की।

रामचंद्र तिवारी कबीर मीमांसा में कबीर के संदर्भ में लिखते हैं 'वे गुरु प्रदत्त ज्ञान और अनुभव ज्ञान को प्रमाण मानते थे अनुभव ज्ञान को स्वसंवेद्य ज्ञान भी कह सकते हैं। कबीर ने अनुभव शब्द को तीन अर्थों में प्रयुक्त किया है। अनुभव अर्थात अनुभूति । अनुभव झ अनुभै निर्भय। अनुभव झ अनभव = अघटित। स्वसंवेद्य को भी उन्होंने दो अर्थों में प्रयुक्त किया है स्वसंवेद्य = अनुभूति से ज्ञात। स्वसंवेद्य = सूछमवेद = सूक्ष्मवेद = प्रचलित चारो वेदों के ज्ञान से अधिक सूक्ष्म ज्ञान।[28] इतना तो स्पष्ट है कि वे अनुभव को प्रमाण मानते है और उनके काव्य में अनुभववाद विद्यमान है। ' तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखन देखी' यह कबीर की ईश्वर विषयक अनुभूति है।

'सतगुरु तत् कहिए विचार। मूल गहै अनुभै विस्तार[29] कबीर के गुरु रामानंद कबीर के दीक्षा भर के गुरु थे। उन्होंने मात्र दीक्षा दिया बस यही उनके लिए जीवन का मूल था और उन्होंने अपने ज्ञान का विस्तार अपने अनुभव से किया।

अनभै कि नैन देखिया बैरागी अणे। बिनु भय अनभौ होइ बारणा हवै।[30] कबीर जैसे बैरागी के यहां जो आंखो से देखा उसी की अनुभूति है, ऐसा अनुभूति बिना किसी भय के है तार्किक है तभी उसका वरण किया जा सकता है।

जो इंद्रिय उनके अनुभव में ज्ञान की वृद्धि करती है। उस पर कबीर नियंत्रण भी रखते है। अगर नियंत्रण नहीं रखते तो ईश्वर का ध्यान नहीं लगा पाते। जगह जगह इंद्रियों को सताने की शिकायत भी राम से करते है।[31]

चांडक जी आगे लिखते हैं 'यह मानवीय तथ्य है कि ज्ञान प्राप्ति का सारा श्रेय उनके मानस से व्याप्त सत्संग की महान अभिलाषा को है। बहुश्रुति होने से ज्ञान क्षेत्र का स्थूल परिचय उन्हें प्राप्त हो ही गया था। रही सही कमी उनके निजी चिंतन से पूरा हो गया।[32] स्पष्ट है ज्ञान प्राप्ति में उनकी भागीदारी महत्वपूर्ण है और उनके ज्ञान में उनका निजी चिंतन का भी योगदान है।

हिंदी साहित्य और समाज में अनुभव की एक परंपरा दिखाई देती है। बुद्ध दर्शन में जहां इहलौकिक महत्व है वह अनुभववाद की शुरुआत है सम्यक दृष्टि भी अनुभववाद के तत्व है सिद्ध नाथों के काव्य में जहां भौतिक जगत का अवलोकन दिखाई देता है। वही निर्गुण संतों में भी ज्ञान की स्रोत के रूप में अनुभव आता है आगे चलकर छायावाद पूरी तरह से अनुभववाद की कविता है। यदि उनके काव्य का अवलोकन किया जाय तो कहा जा सकता है कि उनका सारा काव्य उनके अनुभव की अभिव्यक्ति है। उन्होंने कहीं भी कपोल कल्पना की बाते करके लोगों को अपने विचारो में बंधने का काम नहीं किया है।

## कबीर का ईश्वरवाद

कबीर का ईश्वर विषयक विचार निजी है। कबीर में ईश्वरवाद और नैतिकता एक साथ दिखाई देता है। उनका ईश्वर आत्मज्ञान का वि ाय है। उसके लिए शास्त्रीय ज्ञान आवश्यक नहीं है। ईश्वर मन का विषय है – 'राम तो भीतर रमि रहा[33]

*तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूं।*
*बारी फेरी बलि गई, जित देखो तित तूं।।*[34]

स्पष्ट है कि ईश्वर प्राप्ति के लिए जप माला छापछापा तिलक पूजा पाठ यज्ञ हवन आदि करने की जरूरत नहीं है बल्कि अहम के त्याग की जरूरत है। कबीर ज्ञान में धर्म को तथा क्षमा में ईश्वर को देखते है। यहां ईश्वर धर्म आधारित नहीं वरन नैतिकता आधारित है –

*जहां ज्ञान तहां धर्म है, जहां झूठ तहां पाप।*
*जहां लोभ तहां काल है, जहां छिमा तहां आप।*[35]

कबीर के काव्य में प्रेम की महिमा अनंत है। जब वह अंदर प्रकाशित होता है तभी ईश्वर मिल सकते है

*पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।*
*'संसा खूंटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत।।*

ईश्वरवाद और मानवता साथ साथ दिखाई देता है

*कौतिग दीठा देह बिन, रवि ससि बिन उजास।*
*साहिब सेवा माहि है, बेपरवाही दास।।*[36]

इतना सब होते हुए भी अपने अनुयायियों को अपना रास्ता चुनने को कहते है अपने विचारों के बंधन में बंधने की जरूरत नहीं समझी जो कबीर की प्रासंगिकता को और बढ़ा देता है।

*जामाणा मारणा विचारि करि, कूड़े काम विकारि।*
*जिनि पंथू तुझ चलना, सोइ पंथ सवारि।।*[37]

इस समय भक्ति पर वर्ग विशेष का अधिकार था। ईश्वर और उसकी पूजा पर भी वर्ग विशेष का अधिकार था। इस समय मुस्लिम राज्य था। धर्म परिवर्तन भी हो रहा था। ऐसे समय में ईश्वरवाद को नैतिकता से जोड़कर ईश्वर तक पहुंचने वाले रास्ते, भक्ति को सरल बनाया। ईश्वर विषयक उनके विचार या अनुभव निजी है। 'वर्कले के अनुसार यह विषय ( ईश्वर) अविनाशी आत्मा के मन में है।[38] कबीर ने अपने अनुभव के आधार पर तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार ईश्वर को धर्म से परे माना तथा उस तक पहुंचने वाले मार्ग नैतिक मूल्य को माना।

## कबीर का नैतिक मूल्य

डेविड ह्यूम तथा कबीर दोनों के दर्शन में नैतिक मूल्यों का महत्व है। कबीर में संसार के नश्वरता का बोध है। इस जीवन का कब अंत हो जाय, कुछ निश्चित कहा नहीं जा सकता। इसी के आधार पर कबीर नैतिक मूल्यों की स्थापना करते है कि हमें अपने ऊंचे आवास को देखकर घमंड नहीं करना चाहिए। 'यह शरीर कागद की पुड़िया के समान है कब बूंद पड़ने पर गल जाए कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता।[39] 'नैतिक मूल्य की स्थापना में जाति सबसे बड़ी बाधक है। इसलिए जाति आधारित व्यवस्था की निंदा करते है तथा कर्म को महत्व देते है।[40]

कबीर जीवन और दर्शन में उर्वशी सूरती लिखती है 'भिन्न–भिन्न विचारों तथा संस्कृतियों के संघर्ष के कारण एक नवीन प्रकार के समाज का निर्माण होता जा रहा था। लोगों को किसी योग्य मार्गदर्शन की आवश्यकता थी। यह विकट कार्य उसी के द्वारा संभव था जिसकी बुद्धि परस्पर विरोधी प्रकृतियों के बीच समंवय तथा सामंजस्य लाने की अतिरिक्त किसी स्थाई व सार्वभौम नियम तथा आदर्श का प्रस्ताव रखने में भी समर्थ हो।[41] कबीर में यह गुण था। कबीर समाज निर्माण में नैतिक मूल्यों को महत्व देते है। जहां इस्लाम एक अलग समाज का निर्माण कर रहा था वहीं कबीर एक अलग समाज का निर्माण कर रहे थे।

कबीर ने सामाजिक संबंध को बिगड़ने वाले भाव की निंदा की है। असत्य की निंदा की है।[42] कथनी करनी की एकता पर बाल दिया है।[43] जाति भेद को सामाजिक संबंध को बिगड़ने वाला मानते हैं इसलिए इसकी भी निंदा करते है। इस संबध को बनाए रखने के ढाई आखर प्रेम को महत्व देते है। ऐसे प्रेम को महत्व देते है जिसमे अहम भाव नहीं है शीश उतारि भुइ धरे।[44] मधुर वाणी का महत्व है। 'सो हिंदू सो मुसलमान, जिसका दुरुस्त रहे ईमान।[45] स्पष्ट है कि कबीर के यहां धर्म का नही नैतिक मूल्य–ईमान का महत्व है। डेविड ह्यूम भी नैतिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए धर्म को आवश्यक नहीं मानते है।

**व्यक्ति सत्ता का महत्व**

'कबीर जीवन और दर्शन' में उर्वशी सूरती लिखती है 'मध्य युग का समाज जीवन धर्म द्वारा संचालित और नियंत्रित था यह तथ्य हमें तत्कालीन साहित्य में प्रतिबिंबित जीवन से उपलब्ध होता है। उस समय समाज के प्रत्येक स्तर पर धर्म जीवन की धड़कन थी।[46] उर्वासी ऐसे समय में व्यक्ति की तुलना में धर्म का अधिक महत्व था। इसी धर्म के तले लोगो का शोषण हो रहा था ऐसे समय में कबीर ने व्यक्ति हित को महत्व दिया।

इन सब के बावजूद कबीर में नाम स्मरण, निर्गुण भक्ति, तार्किकता का महत्व तो है ही साथ ही व्यक्ति सत्ता का महत्व भी है। 'तंत न जानूं मंत न जानूं जानूं सुंदर काया[47]

कहु कबीर सुख सहज समाओ। आप न डरो न अवर डराओ।[48]

स्पष्ट है कि इसमें व्यक्ति कल्याण तो है ही साथ ही इसी 'जियो और जीने दो' की भावना में समाज का कल्याण निहित है।

कबीर की सखी और पदो में सुनहु भाई साधो, सुनहु भाई संतो, कहे कबीर , देखे कबीर आदि शब्द आते है इसमें कबीर अपने जीवन अनुभव की तार्किक बाते कहते है। न कि किसी वेद पुराण का उदाहरण देते है कि यह ईश्वर कृत है इसे मानो या इसे मानना चाहिए। हर क्रिया कलाप को तर्क की कसौटी पर कसे है फिर लोगो के सम्मुख रखते है।

**सामाजिक सामंजस्य**

'मध्यकाल में जब विविध धर्म साधनाओं के अगुवा पंडित, मौलवी, पीर, नबी, योगी शैव शाक्त आदि बिना समझे बुझे पोतिया में लिखित ज्ञान के आधार पर धर्म की व्याख्या करते हुए समाज में भेदभाव बढ़ा रहे थे, उस समय निष्ठा और विवेक दोनों के सामंजस्य को आधार बनाकर संतों ने जिस मनुष्य सत्य को ऊपर किया वह कोरे बुद्धिवाद का पर आधारित नहीं था। उसके एक ओर यदि अनुभवगम्य परम तत्व के अस्तित्व और कर्तव्य पर पूर्ण विश्वास था

तो दूसरी ओर पुस्तक ज्ञान पर अविश्वास।[49] कबीर भी धर्म गुरुओं की खबर लेते है तो दूसरी ओर धर्म में व्याप्त रूढ़ियों का विरोध भी करते है। कबीर को पुस्तकीय ज्ञान पर विश्वास नहीं बल्कि अनुभवगम्य अस्तित्व पर विश्वास है।

वे हिंदू मुसलमान के बीच सामंजस्य बिठाते हुए ईश्वर की एकता पर बल देते है –

कहे कबीर चेतहू रे भोंदू बोलनहारा तुरक न हिंदू।

यह सामंजस्य अपने समाज का अवलोकन है तथा सामंजस्य बिठाना उनकी जिम्मेदारी है। ब्राह्मणवाद, स्वर्ग नरक, काबा काशी, माला जप, टीका, मूर्ति पूजा, अंधविश्वास आदि का विरोध किया। जैसे पंडित वेद पढ़ते है पर जिंदगी समझ नहीं पाते है। जिंदगी को धर्मग्रंथ चला रहा था। ऐसे एक समुदाय हसीय पर जा रहा था। ऐसे रूढ़ियों पर कबीर तर्क करते है। उदाहरण से सिद्धांत को परखते है। जैसे

*कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूंढे वन माहि।*
*ऐसे घट घट राम है, दुनिया देखत नाहि।।*[50]

स्पष्ट है कि कबीर उदाहरण से अपने विचार या सिद्धांत को स्पष्ट करते है। यह कबीर का जीवन अनुभव है। दर्शन के क्षेत्र में इसे आगमन तर्क कहते है।

बच्चन सिंह लिखते हैं। 'कबीर में अस्वीकार का साहस था। उन्हें कोई भी मत स्वीकार्य नहीं है जो मनु य के बीच भेद उत्पन्न करता है। उन्हें कोई भी अनु ठान या साधना मंजूर नहीं है जो बुद्धि विरुद्ध है। उन्हें कोई भी शास्त्र मान्य नहीं है जो आत्म ज्ञान को कुंठित करता है। वेद कितेब भ्रमोंत्पादक है। अतः अस्वीकार्य है तीरथ व्रत पूजा नमाज रोजा गुमराह करते हैं।[51]

यह अस्वीकार की ताकत इसलिए है क्योंकि वे तार्किक है वह समाज का निष्क्रिय अवलोकन नहीं करते हैं अंध आस्था पर तर्क करते हैं। वे स्थापित अवधारणा में संदेह करते है। तर्क करते है। उनका तर्क अनुभव आधारित है जो उदाहरण के सहित अपनी बातों को स्पष्ट करते हैं अतः उनमें अनुभव का महत्व देखा जा सकता है।

**कबीर का आडंबरहीन भक्ति पद्धति**

कबीर की भक्ति शास्त्रीय भक्ति से अलग है। जो आडंबरहीन है। वह अनुभवजन्य है। इस भक्ति में देह को महत्व है ।

*मन मथुरा दिल द्वारिका, काया काशी जानि।*
*दसवां द्वारा देहुरा, तामे जोति पिछानि।।*

भक्ति में सच्चाई का महत्व है।[52]

कबीर की भक्ति में अनुभूति का महत्व है। इस अनुभूति को पंडित न समझ सकते है न काल में इसे बांधा जा सकता है। ऐसे अनुभव के ईश्वर का गुणगान नहीं किया जा सकता क्योंकि वह गुणों से परे है। वह अनुभूति का विषय है

*'संतो सो अनभै पद गहिये*
*कला अतीत आदि निधि निरमण ताकू सदा विचारत रहिए।*[53]

## कबीर का नारी विषयक दृष्टिकोण

कबीर सामाजिक चेतना के प्राणी है। वे समाज के सकारात्मक पहलू और नकारात्मक पहलू दोनों पक्षों को देख रहे थे। एक ओर तो उन्होंने नारियों की निंदा की है वहां उनका पारंपरिक दृ टकोण दिखाई देता है। जैसे नारी की माया रूप में चित्रण, कामिनी काली नागिन के रूप में, एक कनक एक कामिनी दोऊ अगानि की झाल के रूप में , नारी पाप की खान के रूप में चित्रण किया है। पर समाज में मात्र यही रूप नारी का नहीं है दूसरा रूप भी है कबीर ने उसको भी देखा दृ

*हरि जननी मै बालक तोरा*
*काहे न अवगुण बकसहू मेरा ।*[54]
*बालम आवहु गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे।*[55]

पहले कविता में ईश्वर स्त्री के रूप में और कबीर उनके बालक के रूप में है दूसरे कविता में ईश्वर पुरुष के रूप में है और कबीर स्त्री के रूप में । इन दोनों रूपों में स्त्री का महत्व है। इस प्रकार कबीर का नारी विषयक रूप सम्मानित है।

## कबीर की भाषा

कबीर की भाषा लोक की भाषा है। जिसको उन्होंने जिया उसी में कविता की। कबीर के उलटबासियों की भाषा दुरूह है। इसमें उन्होंने जो शब्दार्थ गाढ़ा है। वह शास्त्रीय शब्दार्थ से अलग है। जिस प्रकार सत्ता वर्ग मिथक गढ़ता है। उसी प्रकार उन्होंने भी कहानियां गढ़ी। जैसे एक अचंभा देखा भाई, ठाढा सिंह चरावे गाई।[56]

उन्होंने स्वयं कहा है ''साधन कचू हरि न उतारै। अनभै ह्वै तो अर्थ विचारै।[57]

अनुभव का इतना महत्त्व है कि जिसके पास अनुभव होगा वही इसका अर्थ निकाल पाएगा। इस प्रकार के नए शब्दार्थ में शासक वर्ग भाषा में पराजित करते है।

## निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर एक अनुभववादी कवि है पर उनकी भी अपनी सीमाएं हैं। जो इंद्रियां उनकी समझ और ज्ञान को बढ़ाती है उसको वे नियंत्रित भी करते है लेकिन उनके ज्ञान का स्रोत अनुभव है। भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों में दिखाई देता है।

❐

*सन्दर्भ –*

1. *रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, छब्बीसवाँ संस्करण 2019, पृ. 39*
2. *जे. पी. सिंह, समाजशास्त्र परिभाषिक कोश, बिहार हिन्दी ग्रंथ प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण अगस्त 2010, पृ. 149*
3. *उपरोक्त, पृ. 150*
4. *Kai neilsen, Is Impiricism an ideology? metaphilophy, volume 3, number 4, octuber 1972 jstor-org. page 268*

5. अनुभववाद www.textbook.com
6. राहुल सांकृत्यायन, दर्शन दिग्दर्शन, किताब महल प्रकाशन नई दिल्ली , संस्करण 2022, पृ. 229
7. उपरोक्त, पृ. 229
8. उपरोक्त, पृ. 230
9. उपरोक्त, पृ. 232
10. John lock, Essay on concerning human understanding, T-TEGG and sons publication cheap side glasgow , 27 addition, page 2
11. उपरोक्त पृ. 10
12. उपरोक्त पृ. 13
13. उपरोक्त पृ. 51
14. वेदप्रकाश वर्मा, डेविड ह्यूम का दर्शन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी,जयपुर, प्रथम संस्करण 1978, पृ. 50
15. उपरोक्त पृ. 54
16. उपरोक्त पृ. 69
17. उपरोक्त पृ. 70
18. उपरोक्त पृ. 75
19. उपरोक्त पृ. 77
20. उपरोक्त पृ. 95
21. उपरोक्त पृ. 113
22. उपरोक्त पृ. 144
23. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नगरी प्रचारणी सभा प्रकाशन वाराणसी, सोलहवां संस्करण 2019, पृ. 50.
24. राम निवास चंडक, कबीर जीवन और दर्शन, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण स. 2035 वि. प भठ 13
25. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी, चौदहवा संस्करण सं. 2034 पृ. 01
26. उपरोक्त पृ. 02
27. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी नगरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, सोलहवां संस्करण 2019, पृ. 49
28. रामचन्द्र तिवारी, कबीर मीमांसा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण 2021 पृ. 150
29. परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य की परख, भारती भंडार प्रकाशन इलाहाबाद, त तीय संस्करण 1972, पृ. 100
30. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी, चौदहवा संस्करण सं. 2034 पृ. 201
31. उपरोक्त पृ.121
32. राम निवास चंडक, कबीर जीवन और दर्शन, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण स. 2035 पृ. 15
33. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी चौदहवा संस्करण सं. 2034 पृ. 64
34. उपरोक्त पृ. 4
35. उपरोक्त पृ. 199
36. उपरोक्त पृ. 10
37. उपरोक्त पृ. 16
38. राहुल सांकृत्यायन, दर्शन दिग्दर्शन, किताब महल प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण संस्करण 2022, पृ. 239–240
39. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी चौदहवा संस्करण सं. 2034 पृ. 90
40. उपरोक्त पृ. 37
41. उर्वशी सूरती, कबीर जीवन और दर्शन, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद , पंचम संस्करण 2021 पृ. 18
42. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी चौदहवा संस्करण सं. 2034 पृ. 30
43. उपरोक्त पृ. 30
44. उपरोक्त पृ. 54
45. उपरोक्त पृ. 155

46. उर्वशी सूरती, कबीर जीवन और दर्शन, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पंचम संस्करण 2021, पृ. 18
47. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी चौदहवा संस्करण सं. 2034 पृ. 97
48. उपरोक्त पृ. 243
49. रामचंद्र तिवारी, कबीर मीमांसा, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण 2021
50. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी चौदहवा संस्करण सं. 2034 पृ. 64
51. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, दसवां संस्करण 2018, पृ. 87.88
52. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नगरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन वाराणसी चौदहवा संस्करण सं. 2034 पृ. 39
53. उपरोक्त पृ. 104
54. उपरोक्त पृ. 94
55. उपरोक्त पृ. 144
56. उपरोक्त पृ. 72
57. उपरोक्त पृ. 119

**पूर्वदेवा**– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 107–115*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# Dr. B. R. Ambedkar and Thoughts on the Eradication of Untouchability

**Rajesh Sharma**
Research Scholar, Department of Sociology & Social Anthropology
Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak, (M.P.)
Email- Rajeshbhu1997@gmail.com

## Abstract

*This paper analyses the ideas of Ambedkar on the eradication of Untouchability. Untouchability is a form of social evil which promotes and sustains the exploitation of people of particular social categories in Indian culture in an exploitative, degrading, and discriminatory manner. According to B. R. Ambedkar, a great social reformer and political leader who belonged to a community considered untouchable, was theoretically caused by the deliberate actions of the upper-caste Brahmanas. He claimed that the Brahmanas hated those who converted to Buddhism from Brahmanism. The Mahad Satyagraha was an effective Satyagraha led by Bhimrao Ambedkar on 20 March 1927 at Mahad place in Raigarh district of Maharashtra state to give Dalits the right to drink and use water from the public Chavdar pond. It is celebrated as Social Empowerment Day in India. He also gathered an enormous assembly of Dalits to burn copies of Manu Smriti, a text that supports untouchability and discrimination based on caste, on the 25th of December 1927. Further to this, Ambedkar and Mahatma Gandhi established the Poona Pact in 1932, which made it possible for Dalits, who were at the time known as the Depressed Classes, to be given seat reservations. He had earlier in 1930 guided over 15000 Dalits inside the Kala Ram Temple in order to enable them to experience God for the first time. Along with 365000 of his Dalit supporters, Dr. Ambedkar converted to Buddhism on October 14, 1946. He converted mostly because he thought Hinduism had a highly strict caste system that attempted to uphold the dominance of the "upper castes" but fell short of granting its adherents many fundamental human rights.*

***Keywords:*** *Discrimination; Caste; Race; Dalit; Untouchability; Eradication.*

## Introduction

Untouchability is one of the distinctive aspects of Indian culture. An Indian social reformer, economist, political leader and academic, Babasaheb Ambedkar dedicated his life to abolishing social inequity in India. He was inspired by the Dalit Buddhist movement, campaigned against social discrimination against untouchables, and supported the rights of farmers and women.[1] Dalit is a person or a class who has a low position in the society, who is a victim of oppression, and who lives a life of misery and humiliation. In the context of India, the term Dalit is used in relation to Scheduled Castes, Scheduled Tribes and other backward classes who live below the poverty line.[2] This class had to live with deprivation and taboos for a long time. In this context, Dr. Bhimrao Ambedkar made a big effort for the upliftment of the Dalit class. Ambedkar considers the caste system as the root cause of the Dalit class being neglected and backwards. In his book "Annihilation of Caste", he explains the need to completely abolish the caste system for a social system based on the dignified life of all. He believed that no good is going to happen to the untouchables in this system. It is based on the wrong assumptions of division of labour and labour stratification.[3] Caste is a closed door, no one can go out of it, no one can come in. A Hindu die as a member of the caste in which he is born. No Hindu is born without caste and cannot escape caste and he remains bound in the bondage of caste from birth till death.

He becomes a slave to the systems and traditions of the caste, over which he has no control. It is his compulsion to behave according to the caste in which a Hindu is born. Ambedkar believed that a person's status and prestige depended on his caste which he could not change.[4] If caste changes, he will lose his prestige. He said that in the beginning there was no caste system, it is the gift of selfish people. "The inertia of the Hindu society is the root of the caste system." Food and marriage have made him more fanatic. Ambedkar also said that untouchables are themselves responsible for their condition, that is, bad habits of untouchables are responsible such as eating meat, drinking, gambling, skinning dead animals, telling lies, etc. In order to change the condition of the untouchables, you have to change your thinking, you have to sacrifice your inferiority complex.

They have to be educated, they have to get organized and then they have to be ready for struggle. Reprimanding the illiteracy prevailing among Dalits, he said "If Mahar's do not think to see their children in a better condition than themselves, then there will be no difference between animal and man." He said to the Dalit women, as you are, so will your children. Turn your life towards good deeds. Your children are shining in the world.[5] He told women if they wanted you could bring change in their husband's life. Don't give food to your husband and children when they drink alcohol.

## Review of Literature

The review of literature is one of the most important aspects of any study. A literature review is a summary of the earlier written works on a certain subject. The

purpose of a literature review is to demonstrate a particular reader that they have studied, and have a strong grasp of, the key published material addressing a given issue. The author has reviewed some of the literature for this research paper which is as follows.

**B. R. Ambedkar,** He was a famous social reformer and Dalit thinker. He published "Annihilation of Caste," (1936) one of the most significant books on the caste system. Dr. Ambedkar experimented with a variety of tactics throughout his life to abolish caste and, more specifically, to liberate the Dalit people from these oppressive societal structures.[6] In the political sphere, he supported distinct electorates, party formation, and governmental initiatives like reservations. He also did not hesitate to work with the ruling power of the moment, whether it was the British or the Congress, to get things done. He fought for social changes at the grassroots level, with education as his first priority. As seen by the Hindu code, he also supported state-led reforms.

**Gail Omvedt,** makes a clear attempt to grasp Ambedkar's movement in her book "Dalits and Democratic Revolution" (1994).[7] She has chosen Maharashtra, Andhra Pradesh, and Karnataka as her research areas, and she tries to describe Ambedkar's movement as his understanding of democracy, which was based on India's reality, namely the caste system. She has studied Ambedkar's vision, political and economic choices, and rejection of caste and Brahmanism, as well as Nehruvian socialism, in depth. She captures the militancy, aggressiveness, resistance, and isolation of these people whose position in the Indian social system is uncertain.

**Louis Dumont,** in his book, "Homo Hierarchicus: The Caste System and Its Implication" (1966), the notion of caste hierarchy attributes pollution and purity distinctions as its origins with a dual focus on ideology and structure, his method combines the Indological and Structuralist approaches.[8] He has a concept and a value-based perspective on the caste system. According to Dumont, caste is a specific type of inequality whose essence has to be understood by sociologists rather than being a form of stratification. The author identifies hierarchy as the fundamental ideal that underlies the caste system that Hinduism upholds. He promoted using a structuralist and Indological method to research India's caste system and rural social structure.

**Eleanor Zelliot,** discusses Dalits in her 1996 book "From Untouchables to Dalits." She refers to Dalits in the context of how they are perceived by others in society.[9] She refers to the Dalit structure as a result of this. As a result, she coined the word Dalit to refer to untouchables who believe they are side-lined and oppressed in today's society.

**Research Objectives**

Research objectives clarify what your study seeks to accomplish and why you conduct it. They aid in narrowing the scope of your study and provide an overview of the methodology and objectives of your research these are some research objectives.

- To analyse the ideas of Ambedkar on the eradication of untouchability.
- To find out the Empowerment of Dalit through the works of Ambedkar.

**Methodology**

The Research Methods of the study are entirely dependent on secondary sources, related books, magazines, journals, research articles, newspapers and thesis that have been used in writing this research paper. Descriptive and explanatory methods have been used in this research work. I think this paper will be helpful to know about the ideas of Ambedkar on the eradication of untouchability and the emancipation of the Dalits through the works of Ambedkar.

**Rationale of the Study**

Untouchability is the practice in which certain groups of people are discriminated and isolated and treated inhumanely on the basis of their caste and culture. This practice has been going on for a long time in our society and is a major result of the caste system.[10] The main purpose of writing this research paper is to understand the prevailing inequality, untouchability, discrimination against Dalit and deprived classes in the society. To find out what kind of approach Ambedkar established to eradicate untouchability and caste system in the society and what efforts were made to create an egalitarian society.

**Caste System and Untouchability**

The caste system, which has roots in Hindu tradition dating back to 1200 BCE, is a significant aspect of Indian culture. Portuguese visitors to India in the 16th century were the first to introduce the word "caste." The earliest mention of the caste system is found in the Rig Veda, believed to have developed between 1500–800 BCE, where it was referred to as the Varna system. According to the caste system, a person's place, privileges, and responsibilities are determined by the group they were born into. It classified the society into four varnas: Brahmins: Priests, scholars and teachers; Kshatriya: ruler, warrior and administrator; Vaishyas: cattle herders, farmers, artisans and traders; and Shudras: laborers and service providers. Caste is a social group whose membership is based on birth and which imposes on its members a number of restrictions on food, marriage, money and social cohabitation.

Dr Ambedkar believed castes had been considered a part of the divine law in Hinduism; therefore, to end caste, the authenticity and recognition of the scriptures and Vedas will have to be ended. Inter-caste feasts and marriages will not eradicate the caste system because the caste system is an essential part of the Hindu religion. The religion of the Hindus comes in the way of breaking caste barriers.[11] It is not the Hindus who believe in caste but their religion which has given rise to caste discrimination. Hinduism has established caste discrimination as a sacred tradition. That's why Dr. Ambedkar concluded that if you want to break the caste system, regardless of the time, you must remember that the work cannot be done without paying tribute to the Vedas, which have given up on logic and morality.[12] It is necessary to abolish the religion of such Veda Shastras.

**Mahad Satyagraha Observed as Social Empowerment Day**

Mahad Satyagraha was an important movement for uplifting the depressed class, whose objective was to give Dalits equal rights and freedom from caste discrimination. This movement, there was a broad impact on society.[13] Consciousness was awakened in the Dalit classes or untouchables towards their rights. This was an effective Satyagraha led by Bhimrao Ambedkar on 20 March 1927 at Mahad place in Raigad district of Maharashtra state to give Dalits the right to drink and use water from the public Chavdar pond. This day is celebrated as Social Empowerment Day in India.[14] The period of 1926-27 is very important in the history of Dalit movement. This was the path of concerted action or struggle. In the Bombay Legislative Council, "S.K. Bole through a resolution demanded the use of public water sources, wells, government-built Dharamshala's, government schools, courts, offices and dispensaries for the untouchables. According to the government order of September 11, 1923 the above resolution was implemented. However, the local bodies and municipal boards defied this order and denied civil rights to the Dalits. The 'Mahad Municipal Board', in the context of the above proposal, opened the Mahad Talav, which was known as the Chabdar Talav, for the use of all castes. But the caste Hindus were resentful of this arrangement. On this, on March 19 and 20, 1927, in the presence of 10,000 delegates, a two-day meeting of the depressed castes was organized in which Dr. Ambedkar called upon them to come forward for their fundamental rights. They will be able to progress only through self-cooperation, self-respect and self-knowledge. He told his followers that they should become educated and get high jobs.[15] The symbol of slavery should be given up from hereditary patrimony and agriculture should be done on it by getting wild land. Through a resolution, a demand was made to the liberal upper castes and the government to help in the implementation of Bole sir's resolution. Two upper caste Hindus also supported this proposal.

**Rejection of Manusmriti by Ambedkar**

Ambedkar believed that Manusmriti is a Brahmin text that advocates for Brahmins only. Manusmriti treats the lower caste people with untouchability and keeps untouchables at the bottom of society.[16] This religious text never wants the welfare of the untouchables. Manusmriti considers Brahmin supreme and does not bringing equality into society, so Ambedkar burns the religious text Manusmriti. this was notorious for advocating casteist and patriarchal rules that belittled women and Dalits, took away their fundamental liberties, and left them at the mercy of affluent people. "Let's demolish the power of old Hindu texts created in inequity," Babasaheb urged the crowd. Slavery and religion are incompatible. During his lecture, Bapusaheb Sahastrabuddhe, one of his associates, declared, "Even though I was born a Brahmin, I oppose the principles of Manusmriti. It represents injustice, inequity, and cruelty rather than a particular faith. I propose that the Manusmriti, which has caused pain for countless generations, be set ablaze in public. To condemn the contentious book "Manusmriti," Dr Ambedkar rallied a large crowd at Mahad, a coastal city in

Maharashtra. It was notorious for its casteist teachings that encouraged injustice towards the Dalits. Their essential rights are taken away by Manusmriti, who declares that their only obligation is to serve the superior classes "without complaining." Ambedkar gave a speech to the crowd outlining the importance of this day. comments about feminism in India "Let's nullify the legitimacy of the antiquated, unequal Hindu texts. Slavery and religion are incompatible." His companion, Bapusaheb Sahastrabuddhe, who was in charge of setting it ablaze, condemned the Manusmriti's beliefs. I disapprove of Manusmriti's beliefs. He said it represents inequity, brutality, and injustice rather than religion.

**Participation in Dalit Movements**

Ambedkar took part in the movement for the upliftment of Dalits. In November 1917, two conventions of the Depressed Castes were held in Bombay. In one of the conferences, a resolution was passed demanding that the government protect the interests of the Untouchables by electing representatives of the Depressed Castes in the Assemblies in proportion to their population.[17] In another resolution, the conference endorsed the Congress-League pact to remove the disqualifications imposed on the depressed castes in the name of custom and religion. For this, the upper caste Hindus can be affected.

The Second Dalit Conference, while opposing the transfer of power to the upper caste Hindus, also demanded that they should get the right to choose their representatives. Ambedkar believed that the Congress-League pact was not in the interest of the Dalits. Due to this, there was a fear of the concentration of executive and legislative powers in their hands.[18] On March 23 and 24, 1918, under the chairmanship of Maharaja Sayajirao Gaekwad of Baroda, the All-India Depressed Classes Conference was held in Bombay in which prominent leaders participated. The main objective of this conference was to give a call to eradicate untouchability spread in the country. Tilak even went so far as to say that he would not accept the authority of God if the stigma of untouchability were not removed. But this type of anti-untouchability campaign launched by upper-caste Hindus was like a mirage in the eyes of Dr Ambedkar.

**Editing of 'Bahishkrit Bharat' Magazine**

Ambedkar believed that we need our own magazine for our salvation, through which the problems of Dalits can be solved. Dr. Ambedkar brought out the magazine 'Bahishkrit Bharat' in 1927 to give a new direction to the Dalit movement and to raise the socio-economic and political voice of the excluded society.[19] Returning from England, he did this era-changing work by dedicating his life's purpose to Dalits. In this context 1 on March 14, 1927 in Mahad, "Colaba District Excommunicated Council" was established under whose auspices the social movement and from April 1927 started the publication of 'Excluded India'. He himself took over the responsibility of editing it. He shattered the so-called Brahmin pride in the whole of Maharashtra (then Bombay Presidency) and the provinces touching Maharashtra. Untouchables Stormed against the exploitation and atrocities

of castes, the denial of their fundamental rights and social restrictions in fact, 'Excluded India' became the voice of millions of Marathi-speaking Dalit-untouchables. He continued to publish it regularly for almost two years. Meanwhile, as a member of the Bombay Legislative Assembly, He attacked the pitiable condition of Dalits and the weaknesses of Hinduism, the practice of untouchability and the caste system.

**Participation of Dalits in Authority**

Many castes in India are living in extremely pathetic and servile condition but the situation of Dalit classes is completely different, the only difference is that untouchability is not treated with agricultural workers and servants while Dalit class is suffering from untouchability is a victim of the curse.[20] On November 20, 1930, in the fifth meeting of the London Round Table Conference, Ambedkar, while presenting the views on the need for participation in political power for the depressed classes, said, "I am presenting the side of those depressed classes on the question of constitutional reforms in this meeting, which I and My colleague Rai Bahadur Srinivasan has the privilege of representing me. It is the party of 43 million people or 1/5 of the population of British India. The Dalit class itself is a group of people who are different and different from the Muslims.

According to Ambedkar, the bureaucratic system in India should be replaced by a government of the people, run by the people and for the people.[21] I am sure this aspect of the Depressed Classes will cause astonishment in some circles. What kind of political system do the Dalits want for their security and protection? If we come from a responsible government, but we do not want a government in which only the regime changes, although the executive has to be made responsible, then the legislature has to be made a completely representative body.

**Constitutional Provisions for the Dalits**

The Dalits are given particular protections and provisions under the Indian Constitution. These protections guarantee against discrimination for their development, educational, economic, social, political, and reservation benefits. Untouchability is abolished in Article 17 "Untouchability" is outlawed and its practice is prohibited in all forms.[22] According to Articles 330 and 332 of the Constitution, seats are reserved for the Scheduled Castes and Tribes in the House of the People and the State legislative assemblies, respectively. The National Commission for the Scheduled Castes is established by Article 338. Monitoring the protections outlined for Scheduled Castes under the Constitution or any other law is the responsibility of the Commission. Also, it has all the authority of a civil court when conducting investigations into complaints and taking part in the planning process for the socioeconomic development of Scheduled Caste community members. According to Article 340, the President has the authority to form a committee to look into the situations of the underprivileged classes and the challenges they confront and offer ways to improve their situation. According to Article 46, the State is obligated to "advance with particular care the educational and economic interests of the weaker parts of the population, notably the Scheduled Castes and the Scheduled Tribes, and to safeguard them from social injustice and all types of exploitation."

## Conclusion

It appears from Ambedkar's thoughts that untouchability is prevalent in the caste system itself. To end untouchability, we have to have a feeling of sympathy towards Dalits, not only this, we have to solve every problem of Dalits considering it as our own problem. Dalits have been described as untouchables in our religious texts. According to Ambedkar, casteism hollows out the roots of nationalism, it needs to be noted that the whole Indian politics rests on the basis of casteism. As long as inequality remains in the society on economic, social, political or other grounds, the relevance of Ambedkar's thoughts will also remain. Even today Ambedkar's thoughts are as relevant as they were in those days. But other issues raised by Ambedkar need attention. According to Dr. Ambedkar, the traditional caste system in the Indian society had given birth to class discrimination and inequalities, due to which the society continued to move towards degradation. He firmly believed that a society which does not have social consciousness and which is not able to adapt itself to contemporary changes, can never progress. In the context of Dr. Ambedkar's contribution for the upliftment of the outcasts, it is necessary to mention that he was a diligent person. He spent most of his time in study and writing work, despite struggling with social inequalities arising out of the ill effects of the caste system and the ill effects prevailing in Indian society.

❐


*References :*

1. *Chancharik, K. L. (2006). Dalit Movements in India, Srishti Book Distributors, New Delhi. pp.67.*
2. *Pai, Sudha, (2013). Dalit Assertion. Oxford University Press, New Delhi. pp.89.*
3. *Ambedkar, B. R. (2015). Annihilation of Caste, Navayana Publishing, New Delhi. pp.14-15.*
4. *Keer, D. (1971). Dr. Ambedkar: life and mission. Popular Prakashan. pp.67.*
5. *Jaffrelot, C. (2006). Dr Ambedkar and untouchability: analysing and fighting caste. Orient Blackswan. pp.56.*
6. *Lobo, C. J. (1984). Dr. BR Ambedkar: The Champion of Social Democracy in India. Hilerina Publications. pp.36.*
7. *Omvedt, G. (1994). Dalits and the democratic revolution: Dr Ambedkar and the Dalit movement in colonial India. SAGE Publications India. pp.35.*
8. *Dumont, Louis. (1981). Homo Hierarchicus: The Caste System and Its Implications. The University of Chicago Press. pp.56-59.*
9. *Zelliot, Eleanor, (1986) 'The Social and Political Thought of Dr. Ambedkar, in Pantham T. and Dutsch K. (eds) Political Thought in Modern India, New Delhi. pp. 161-175.*
10. *Kane, P.V. (2010). History of Dharmasastra. Uttar Pradesh Hindi Sansthan, Lucknow. pp.23.*
11. *Ambedkar, B. R. (2015). Education and Emancipation. Education and Empowerment in India: Policies and practices, 73.*
12. *Ambedkar, B. R. (1990). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches, Vol. 7. Government of Maharashtra, Bombay, 243.*
13. *Omvedt, G. (1994). Dalits and the democratic revolution: Dr Ambedkar and the Dalit movement in colonial India. SAGE Publications India. pp.88-96.*
14. *Ambedkar, B.R. (2011). Who were the Shudras how they came to be the fourth varna in the Indo-Aryan society, Samyak Prakashan, New Delhi. pp.52.*

15. *Ambedkar, B.R. (2011). Who were the Shudras how they came to be the fourth varna in the Indo-Aryan society, Samyak Prakashan, New Delhi. pp.84.*
16. *Kumar, K. P. (2008). Indian historiography and Ambedkar: Reading history from Dalit perspective. Indian Journal of South Asian Studies, 1, 93-108.*
17. *Omvedt, G. (1994). Dalits and the democratic revolution: Dr Ambedkar and the Dalit movement in colonial India. SAGE Publications India. pp.38.*
18. *Gottlob, M. (2011). History and politics in post-colonial India. Oxford University Press. pp.59.*
19. *Chancharik, K. L. (2006). Dalit Movements in India, Srishti Book Distributors, New Delhi. pp.64.*
20. *Gopal Guru. (1998). Understanding Ambedkar's Construction of National Movement. Economic and Political Weekly, 33(4), 156–157.*
21. *Teltumbdet, A. (2013). Ambedkarites against Ambedkar. Economic and Politic Political Weekly, 48(19), 10–11.*
22. *Gopal Guru. (1991). Appropriating Ambedkar. Economic and Political Weekly. pp.1697-1699.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 116–125

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

# China's Regionalism in South Asia and Its Impact on India-China Strategic Relations

**Ashutosh Kumar Singh**
Research Scholar, Department of Political Science,
Banaras Hindu University, Varanasi
Email – ashutoshks@bhu.ac.in

**Abstract**

*This article focuses on China's Regionalism in South Asia and Its Impact on India-China Strategic Relations. Assessing the objectives underlying Beijing's interest in engaging in regional groupings with India and other South Asian states, it finds that Beijing's pursuit of a 'regionalism foreign policy' reflects a 'comprehensive' approach to international security. China's regionalist foreign policy creates potential nexuses for regional cooperation between China and India. Against the backdrop of strategic insecurity between the two countries, however, Chinese policies, including a burgeoning paymaster role, galvanise New Delhi to bolster its traditional regional dominance. The discussion concludes that to avert worsening tensions with India and win Indian participation in its regional vision, Beijing must rethink its current approach, taking into account how New Delhi perceives its behaviour. The article suggests areas for further research concerning how regional institutions as forums for major power interaction might facilitate rival cooperation.*

**Key Words**: India; China; South Asia; Regionalism; Security.

## Introduction:

India and China, significant neighbouring powers in Asia, are the focus of this special issue, which aims to understand the foreign policy and strategic priorities major powers have in their shared regions and how they interact as a result. While previous studies often focus on China's bilateral relationships in South Asia, this research shifts attention to China's participation in South Asian regional organizations. Although many analyses of China's engagement in South Asia emphasise the bilateral rather than multilateral dimension of its interactions,[1] this study focuses on China's

efforts to participate in South Asian regional groupings, examining this 'regionalism foreign policy' by Beijing towards South Asia to discern its objectives and impact.

**Review of Literature -**

**Yunling Zhang (2010)** in his study "China and Asian Regionalism" provides an inclusive analysis of China's involvement in regionalism within the Asian context. Yunling explores China's evolving role in various regional forums, initiatives, and organizations across Asia. The book investigates into China's strategies, interests, and challenges in promoting regional cooperation and integration. It examines China's economic, political, and security engagements, highlighting its growing influence and impact on Asian regional dynamics.

**Zhao Suisheng (2012)** in his edited book "China and East Asian Regionalism: Economic and Security Cooperation and Institution-Building"[3], precisely scrutinizes China's participation in economic and security partnerships within the region, explicating its strategic objectives, encountered challenges, and notable contributions. Through a compilation of discerning essays, the book provides nuanced insights into China's interactions with East Asian nations and regional bodies, thereby illuminating the multifaceted nature and ramifications of China's regional strategies.

**Emilian Kavalsk (2016)** in his edited book "China and the Global Politics of Regionalization"[4] examines China's engagement with regionalization processes worldwide, providing insights into its strategies, challenges, and impacts. The contributors analyse China's interactions with various regional actors and institutions, shedding light on the complexities and implications of its regional policies. This book serves as an invaluable resource for scholars, policymakers, and practitioners seeking to understand China's influence on the global stage and its implications for regional cooperation and governance.

**Tiang Boon Hoo and Jared Morgan McKinney (2022)**, in their seminal work "Chinese Regionalism in Asia: Beyond the Belt and Road Initiative"[5] investigate how China's regionalism in Asia extends beyond the BRI. They explore various political, economic, and strategic dimensions that shape China's interactions and relationships with other Asian countries and regional organizations.

**Research Questions:**

- Is China's regionalist foreign policy a competitive tactic to decrease India's traditional supremacy in South Asia, or does it have other objectives? How has India responded to Chinese policy? And, how has China's policy affected the region?
- What are the evolving Chinese perspectives and debates on regionalism?
- How is Chinese regionalism impacting integrative (or disruptive) processes in South Asia?
- What are the implications of Chinese regionalism for the India-China Strategic Relations?

## Research Methodology:

This research paper is primarily based on qualitative methods. The primary and secondary data have been used. Primary data has been collected through interviews with government officials and renowned academicians. Apart from this, primary data also collected from the Ministry of External Affairs, India and China is available in the form of treaties, agreements, research reports, and official communication between them. In secondary data, books, articles in various national and international journals and magazines, different newspapers, audio and video materials and other literary and digital materials and sources have been used in this paper.

## China's Regionalism Foreign Policy: An Overview

China's Regionalism foreign policy[6] refers to the strategic approach and actions undertaken by the Chinese government to engage with and influence regional dynamics within its neighbouring regions and beyond. This policy framework encompasses diplomatic, economic, and security initiatives aimed at fostering cooperation, enhancing China's presence, and advancing its interests within specific geographic regions or across broader regional groupings. It involves active participation in regional organizations, the promotion of economic partnerships, the pursuit of diplomatic dialogue and engagement, and the management of security challenges. China's Regionalism foreign policy is characterized by a combination of bilateral and multilateral engagements, to shape regional order and dynamics in alignment with its strategic objectives and national interests.

## China's Comprehensive Approach to Security and Regionalism

Work theorizing the role of multilateral and regional institutions proposes that the existence of such forums facilitates the emergence of habits of cooperation and interdependence among states both conditions that can enable peace and stability.[7] Under investigation is how states may deliberately use and even promote regionalism as an instrument of what the editors of this special issue might categorize as 'structural foreign policy.[8] It refers to policies that seek to use regionalism to alter the regional milieu in which states operate.[9] T.J. Pempel explains the explosive growth in multilateral arrangements in Asia in this century as reflecting a widely-held view among policy elites in East Asia that supplying security requires a comprehensive security approach.[10]

The concept of comprehensive security extends the definition of security beyond its traditional hard security focus to managing threats to societies spanning multiple dimensions- economic disruptions, environmental issues, and human security dimensions.[11] A comprehensive view of security linking political relationships and economic goals has an inherent logic for the developmental state, or the state organized to serve the national development objectives that are also a key source of regime legitimacy.[12] Writing on the relationship between Chinese economic statecraft and Asian security, for example, Adam Segal observes that 'Beijing's promotion of regional multilateral institutions, its offer to enter into free trade agreements with ASEAN, and its promotion of direct investment in regional economies all have both

a strategic and economic logic.[13] Even sceptics of Beijing's 'strategic multilateralism in Asia conclude that China's deployment of regional engagement with realist intent is not inconsistent with economic development goals.[14] There are fewer studies evaluating China's use of regionalism foreign policy as a tool for enhancing security (comprehensively defined) where it faces strategic competition in its immediate geographic neighbourhood. Much existing research focuses on the competitive dynamics of China's engagement in East or Southeast Asia, where China confronts multiple major powers, not least the United States.[15] There is also growing research interrogating China's role in the Shanghai Cooperation Organization (SCO) in light of Sino-Russian competition in Central Asia.[16]

**Understanding the Roots of Sino-Indian Rivalry in South Asia**

The competition that contours Sino-Indian relations in the region has its roots in a dispute over a demarcation of territory between British India and Tibet by British negotiators. In 1962 China and India engaged in conflict over their competing claims. Although China chose to withdraw from most of the land it had captured, perhaps to catalyse negotiations,[17] the conflict set off two decades of estrangement between the two countries. Amid China's ideological and ultimately military clash with the Soviet Union, New Delhi's partnership with Moscow broadened Beijing's concerns about India to fears that working in tandem with Moscow, India could pose an existential threat. Although diplomatic ties were restored between the two countries in 1976, the failure of numerous rounds of border talks left the Line of Actual Control (LAC) marking the disputed Indian and Chinese borders undetermined and heavily militarized. China has preserved its strategic partnership with Pakistan, forcing New Delhi to worry about hostilities across both its western and northern borders, as well as potential intervention by China in an India- Pakistan conflict (Garver, 2002). Since 1998, India has returned China's nuclear threat with its nuclear arsenal.

Against this backdrop, China-India relations manifest many features of a security dilemma.[18] Yet, the two countries have shown a capacity to make tactical compromises when necessary to ease tensions and also to cooperate in some spheres. India's recognition of Chinese sovereignty over Tibet and China's de facto agreement that Sikkim is part of India are examples of the former. The two sides engage in regular dialogues, such as a Strategic and Economic Dialogue and a China-India Defence Dialogue.[19] Although on the global stage, there are points of friction related to India's membership in global security mechanisms, such as the Nuclear Suppliers Group, new international groupings such as the so-called BRICS and the BASIC blocs comprising Brazil, Russia, India, China, and South Africa offer forums in which the two countries often adopt common positions.

**Contextualizing China's Regionalism Strategy: South Asia's Historical and Geopolitical Dynamics**

China's regionalism foreign policy for South Asia in the context of Chinese foreign policy in Asia, this study thus concludes that realist interpretations

characterising China's push for regional engagement as driven foremost by strategic rivalry with India oversimplify China's policy intentions. Beijing's objectives are consistent with a multidimensional conception of security best examined through a political economy lens.[20] From this perspective, regional mechanisms serve as vectors for routinised consultation and policy coordination among states, making them instruments for more mutually beneficial exchanges, more stable and, therefore, more secure economic and political regional relations.[21]

China's regionalist foreign policy in South Asia is guided less by the perception of geostrategic competition with India than by a broader comprehensive conception of security that understands economic development and security as intertwined. [22] Beijing sees benefits to its security from boosting regional development, which It perceives as contributing to improving the stability of its complicated regional neighbourhood, this stability is valuable to its security as it pursues such fundamental interests as sustaining economic development and preventing external threats to domestic security particularly those that emanate from across its borders.[23] Where Beijing identifies opportunities to do so, it therefore also seeks to provide regional public goods to increase regional goodwill towards China.

However, as the study shows, Indian officials and security experts view the expansion of China's role in South Asia through the lens of strategic rivalry, assessing it as enabling Chinese military projection and threatening India's traditional hegemonic role in the region.[24] For the region, the Impact of China's expanding regional engagement and India's rising concerns presents, on the one hand, an opportunity for states in the region to act independently and play the two larger powers off against one another.[25] However, on the other, smaller states' interests could be harmed if they become targets of strategic competition between the two big powers, whether through direct bilateral interactions or within regional groupings - as the adage goes, 'when two elephants fight, the grass gets trampled.

Bilateral dialogues or global platforms are not the same as Chinese engagement in regional forums in South Asia, however. Within the former, interactions between Beijing and New Delhi are often aimed at crisis management; within the latter, they may address mutual transnational concerns without reference to their territorial disputes.[26] In contrast, China's push to increase its role in South Asia in regional groupings affects an arena in which historically India has been the hegemon. Moreover, historically, the region's multilaterals have been theatres of regional rivalry as much as space for intraregional cooperation. For example, when the South Asian Association for Regional Cooperation (SAARC) was established in the mid-1980s the objective was to promote a cooperative growth strategy in South Asia among its member countries (Afghanistan, Bangladesh, India, Pakistan, Nepal, Sri Lanka, Bhutan, and Maldives).[27] When the grouping was formed, the idea was that the animosity between India and Pakistan could be segregated the maxent mitigated by, the shared objectives of India and Pakistan er this has not been the case. Tensions between India and Pakistan have impinged on progress towards cooperative policies

on the part of the grouping, including a key proposal for the South Asia Free Trade Agreement (SAFTA).[28]

By 2000, China had become an active member of the Association of Southeast Asian Nations (ASEAN) and the ASEAN Regional Forum (ARF) and was among the architects of the ASEAN plus Three (APT) grouping. Working with Moscow, Beijing established the Shanghai Five, the precursor to the Shanghai Cooperation Organization.[29] Subnational regional arrangements offered other tools to promote Chinese cooperation with neighbours on development along mutual borders towards what were often both security and economic objectives. Among the 'mini-lateral' initiatives - mini-lateral' in the sense that their principal actors were subnational launched in the 1990s and early 2000s, for example, the Bohai economic zone can be seen in light of China's strategy to normalize relations with South Korea, which in the late 1980s had set as its strategic priority the development of its Southwestern coast. Similarly, the Tumen[30] River development project served both China's Jilin province's development aspirations and Beijing's interest in encouraging North Korea to undertake policies aimed at reform and opening to integrate it economically into Northeast Asia and make it a stakeholder in regional stability.[31]

Although New Delhi agreed to join the SCO and AIIB, it has declined to become more directly involved in the BRI. It should be noted that joining both SCO and AllB was domestically politically controversial.[32] In India, opponents of changing India's status from observer to member objected that India would stand alone as the only democratic member in the grouping, otherwise an organization of illiberal states. Moreover, in a view shared by some experts in Washington, some in New Delhi view the SCO as principally designed to function as a counterweight to Western influence in the region.[33] AllB's emphasis on infrastructure has drawn the concern of numerous citizen groups in India, groups also critical of the decision to ratify membership without public debate. Nevertheless, the AllB's positioning as an alternative to the World Bank's dominance of development finance and broad international membership made it politically palatable to New Delhi.[34]

The BRI has remained a touchstone for alarm in official circles in India, however. Prime Minister Modi was conspicuously absent at the May 2017 BRI Forum held in Beijing.[35] The lack of processes to ensure transparency in both governance and implementation and the risk that the initiative will impose unmanageable debt burdens are among the concerns about the BRI articulated by officials as well as policy experts. Indian security and foreign affairs establishments have been the harshest critics of the BRI because it is enabling China's military force projection, even as it may benefit economic flows. They point to a cornerstone of the first leg of the BRI, the China-Pakistan Economic Corridor (CPEC), linking China's Xinjiang with Pakistan's Baluchistan Province and traversing Kashmir, a region that India claims and Pakistan claims and occupies.[36]

The BRI's 'Maritime Silk Road' is another source of acute concern. Indian security experts worry that a China liberated from the 'Malacca dilemma', and with

the potentially dual-use ports it envisions as part of the Maritime Silk Road, will have the capacity to encircle India and constrain its navy.[37] There are also fears that China will gain far more economically than India from the BRI, with unease about the possible advantages BRI gives China in the areas of logistics and related trade flows. Although the BRI is not without support among policy experts in India, several prominent figures argue for its value as a link between India's economy and Asia's production and supply chains.[38]

## China's South Asian Regionalism: Implications for India's Strategic Landscape

China's regionalism in South Asia has direct and indirect effects on the intricate tapestry of India-China strategic relations[39]. Directly, the most significant impact arises from China's involvement in projects that have territorial implications, notably the China-Pakistan Economic Corridor (CPEC). As CPEC traverses through Pakistan-administered Kashmir, an area India claims as its own, it exacerbates long-standing disputes and heightens regional tensions. This direct interference in contested territories contributes to a strained bilateral relationship.[40]

Indirectly, China's regionalism reshapes the geopolitical landscape of South Asia. The Belt and Road Initiative (BRI), a flagship project, amplifies China's economic and strategic influence. By investing in infrastructure projects across the region, China gains leverage and soft power. This indirect influence extends beyond economic realms and enters the domain of geopolitics, impacting India's traditional sphere of influence. The strategic implications of China's expanded footprint in South Asia prompt a re-evaluation of India's regional strategies.[41]

The economic dimensions of China's regionalism also contribute to the indirect effects on India-China relations. China's economic collaborations and investments in South Asian countries foster dependencies that can alter the balance of power. India perceives the Belt and Road Initiative as a means of strategic encirclement, challenging its regional dominance.[42] This indirect competition for influence intensifies as both nations strive to secure their interests in a rapidly evolving geopolitical landscape.[43]

In the broader context, the indirect effects extend to regional security dynamics. China's military assertiveness and strategic partnerships in South Asia contribute to an altered security calculus for India.[44] The increased Chinese presence challenges India's traditional role as a regional power, fostering a complex environment where both nations navigate a delicate equilibrium of cooperation and competition.[45]

## Conclusion

China's regional influence in South Asia stands out as a transformative force, significantly impacting the economic, diplomatic, and strategic dimensions of the region. The profound effects of China's initiatives are evident, shaping the regional landscape in ways that extend beyond mere economic engagement. From extensive infrastructure projects to active participation in diplomatic forums, China's role in

South Asia has become integral to the region's overall dynamics. The combination of economic investments, diplomatic moves, and strategic alliances demonstrates China's complex impact, ushering in a new age in South Asia's geopolitical landscape. China's regionalism in the South casts a dual shadow on India-China strategic relations. The direct impact is manifested through territorial disputes, while the indirect consequences ripple through the broader geopolitical landscape, shaping economic, diplomatic, and security dynamics. The interplay between cooperation and competition defines the complex relationship, with both nations seeking to secure their interests while navigating the evolving contours of South Asian regionalism.

China's regionalist foreign policy has been incrementally successful in both expanding its membership in regional groupings and engaging South Asian states within the more expansive groupings in which it is a leading member. A look at regional groupings in which both China and South Asian states participate reveals, first, that there is considerable overlap among member states; and, second, that these overlapping groupings span functions that make them potential channels for policy coordination on a range of development and non-traditional security issues.

❒

*References :*

1. *WAGNE, C. (2016). THE ROLE OF INDIA AND CHNA IN SOUTH ASIA. Strategic Analysis, 40(4), 307-320*
2. *Zhang, Y. (2010). China and Asian regionalism. World Scientific.*
3. *Zhao, S. (Ed.). (2012). China and East Asian Regionalism: Economic and Security Cooperation and Institution-building. Routledge.*
4. *Kavalski, E. (Ed.). (2016). China and the Global Politics of Regionalization. Routledge.*
5. *Hoo, T. B., & McKinney, J. M. (Eds.). (2022). Chinese Regionalism in Asia: Beyond the Belt and Road Initiative. Taylor & Francis.*
6. *Freeman, C. P. (2018). China's Regionalism Foreign Policy and China-India Relations in South Asia. Contemporary Politics, 24(1), 81-97.*
7. *Nye, J. S. (1971). Peace in Parts: Integration and Conflict in Regional Organization. Boston: Little, Brown.*
8. *Schunz, S., Gstöhl, S., & Van Langenhove, L. (2018). Between Cooperation and Competition: Major Powers in Shared Neighbourhoods. Contemporary Politics, 24(1), 1-13.*
9. *Manoli, P. (2017). A Structural Foreign Policy Perspective on the European Neighbourhood Policy.In S. Gstohl & S. Schunz (Eds.), Theorizing the European Neighbourhood Policy. Oxon: Routledge*
10. *Pempel, T. J. (2010). Soft balancing, hedging, and institutional Darwinism: The Economic-Security Nexus and East Asian Regionalism. Journal of East Asian Studies, 10(2), 209-238.*
11. *Capie, D. H., & Evans, P. M. (2007). The Asia-Pacific Security Lexicon. Institute of Southeast Asian Studies.*
12. *Buzan, B., & Zhang, Y. (Eds.). (2014). Contesting international society in East Asia. Cambridge University Press.*
13. *Segal, S. (2007). Chinese economic statecraft and the political economy of Asian security. In W. W. Keller & T. G. Rawski (Eds.), China's rise and the balance of influence in Asia. Pittsburgh: University of Pittsburgh Press.*
14. *Moore, T. G. (2007). China's rise in Asia: Regional cooperation and grand strategy. In H. Dieter (Ed.). The Evolution of Regionalism in Asia: Economic and Security Issues. London: Routledge.*

15. Zhao, S. (Ed.). (2012). China and East Asian Regionalism: Economic and Security Cooperation and Institution-building. Routledge.
16. Carlson, B. (2007). The limits of Sino-Russian strategic partnership in Central Asia. Journal of Public and International Affairs, 18, 165-187.
17. Kissinger, H. (2011). On China. New York: Penguin
18. Garver, J. W. (2002). The Security Dilemma in Sino?Indian Relations. India Review, 1-38.
19. Gupta, A. (2015, April 19). The China-India Defence Dialogue: The Two countries seek to improve cooperation ahead of next month's summit. https://thediplomat.com/2015/04/the-china-india-defense-dialogue/
20. Singh, G., & Godbole, A. (2011). China's relations with South Asia: Why is India weary? Harvard Asia Quarterly,13(1), 32-40.
21. Wu, X. (2012). The spillover effect of the ASEAN-plus-three process on East Asian security. In A. Goldstein & E. D. Mansfield (Eds.), The Nexus of Economics, Security, and International Relations in East Asia. Stanford: Stanford University Press.
22. Freeman, C. P. (2018). China's Regionalism Foreign Policy and China-India Relations in South Asia. Contemporary Politics, 24(1), 81-97.
23. Callahan, W. A. (2016). China's "Asia Dream" the belt road initiative and the new regional order. Asian Journal of Comparative Politics, 1(3), 226-243.
24. Panda, J. P. (Ed.). (2019). India and China in Asia: between equilibrium and equations. Routledge.
25. Gordon, A. D. (2014). India's rise as an Asian power: nation, neighbourhood, and region. Georgetown University Press.
26. Bisley, N., & Taylor, B. (2015). China's Engagement with Regional Security Multilateralism: The Case of the Shangri-La Dialogue. Contemporary Southeast Asia, 37(1), 29–48. http://www.jstor.org/stable/24916513
27. Chakma, B. (2018). SAARC and region-building: is South Asia a region?. Journal of the Indian Ocean Region, 14(2), 189-205.
28. Hirantha, S. W. (2004). From SAPTA to SAFTA: Gravity analysis of South Asian free trade. European Trade Study Group (ETSG).
29. Wu, X. (2012). The spillover effect of the ASEAN-plus-three process on East Asian security. In A. Goldstein & E. D. Mansfield (Eds.), The Nexus of Economics, Security, and International Relations in East Asia. Stanford: Stanford University Press.
30. Ong, R. (2002). China's Security Interests in the Post-Cold War era, New York: Routledge.
31. Freeman, C. P. (2010). Neighbourly relations: The Tumen development project and China's security strategy. Journal of Contemporary China, 19(63), 137-157. doi:10.1080/10670560903335850
32. Yu, H. (2020). Motivation behind China's 'one belt, one road'initiatives and establishment of the Asian infrastructure investment bank. In China's New Global Strategy (pp. 3-18). Routledge.
33. Stobdan, P. (2014, July 14). Shanghai Cooperation Organization and India. Institute for Defence Studies Policy Brief. https://www.idsa.in/policybrief/Shanghai Cooperation OrganizationandIndia _pstobdan_140714
34. Hanlon, R. J. (2017). Thinking about the Asian Infrastructure Investment Bank: Can a China?Led Development Bank Improve Sustainability in Asia?. Asia & the Pacific policy studies, 4(3), 541-554.
35. Freeman, C. P. (2018). China's Regionalism Foreign Policy and China-India Relations in South Asia. Contemporary Politics, 24(1), 81-97.
36. Ahmad, S., & Malik, A. H. (2017). China-Pakistan economic corridor: impact on regional stability of South Asia. International Journal of Political Science and Development, 5(6), 192-202.
37. Ganguly, Š., & Mistry, D. (Eds.). (2022). Enduring and Emerging Issues in South Asian Security. Brookings Institution Press.
38. Thaliyakkattil, S. (2019). China's Achilles heel: the Belt and Road Initiative and its Indian discontents. Springer.
39. Jain, B. M. (2010). India in the new South Asia: Strategic, military and economic concerns in the age of nuclear diplomacy. Bloomsbury Publishing.

40. *Gill, D. M. (2019). The geopolitics of the China-Pakistan economic corridor (CPEC) and its security implications for India. The Korean Journal of International Studies, 337-353.*
41. *Garlick, J. (2020). The regional impacts of China's Belt and Road Initiative. Journal of Current Chinese Affairs, 49(1), 3-13.*
42. *Ranjan, R., & Changgang, G. (Eds.). (2021). China and South Asia: Changing Regional Dynamics, Development and Power Play. Taylor & Francis.*
43. *Storey, I. (2013). Southeast Asia and the rise of China: The search for security. Routledge.*
44. *Mastro, O. S. (2014). Why Chinese assertiveness is here to stay. The Washington Quarterly, 37(4), 151-170.*
45. *Scott, D. (2008). Sino-Indian security predicaments for the twenty-first century. Asian Security, 4(3), 244-270.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 126–135

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

# The USA factor in Arab-Israel Peace It's Impact on India's Foreign Policy

**Dr. Rahul Shrivastava**
Department of Political Science, Banaras Hindu University, Varanasi-221005

**Abstract**

*The United States has made several efforts on behalf of many states to achieve peaceful and friendly relationships in the Middle East region for Israel. The United States has been at the centre of some of those efforts for the Middle East to achieve Peace both before and after the normalization of New Delhi's approach to Tel Aviv. From time to time Washington has been seeking to influence various Indian leaders to re-examine and modify the traditional reluctance vis-à-vis Israel. Several scholars believed, despite three wars with Pakistan and one with China, that India somehow managed to maintain diplomatic relationships with both adversaries. Then why such hesitation from Israel then the situation is obvious that it will be India's failure as a third party for holding terms up things could have been managed by being neutral and maintaining its foreign policy with Israel in friendly terms. Even today when we can see the whole Arab world is making peace with Israel after years of conflict and several wars, certainly India can also make positive efforts to achieve a strong position for Tel Aviv.*

**Keyword:** United States; Israel; Middle East; India; Peace; Conflict.

"In all affairs it's a healthy thing now and then to hang a question mark on things *you have long taken for granted."*- Bertrand Russell

## Introduction

The Ancient Israelites and Judaism controlled the Jerusalem-centred history long before Jesus or Muhammad was born. The first stage of Jewish rule over the land of Israel began in the thirteenth century Before the Common Era (BCE) and lasted until the Babylonian conquest of Judea and the enforced lengthy exile of Jews in 586 BCE.[1] The Jews regained the control of the Jerusalem around 164 BCE, including the brief revival of the Kingdom of Judea in 64 CE, soon later the Roman rule began in the 70 CE and with it, the Jewish state ended for two millennia.

The initial presence of Islamized Arabs in the contested city of Jerusalem was its conquest by Caliph Omar in 638 CE, only six years after the death of Muhammad. Though his attitude towards the Jews in Medina started on a conditional positive note for Jews and Christians, the special status of 'dhimmi' was allowed to practice their faith even Jews can observe Sabbath only on requirement of Jaziya for their annual Protection.[2] But later on the unwillingness of Jews to convert to Islam created an ideological conflict between Jews and Muslims.

This ideological level of conflict between the Arabs and Israel took the conflict to the next level and a series of events carried out by French Revolution led to the formation of the World Zionist Organization in 1897[3] and this inter-communal conflict shaped the struggle for Jewish Nationalism. Later carried out by several cumulative tensions between Jews and Arabs influenced the British Mandate to carry out some Political and Military Acts from 1923 to 1948 and series of events created an environment and British proposed the Palestine Partition Resolution 181 in United Nations in November 1947.

The UN partition plan of Palestine recommended the creation of independent Arab and Jewish State and a special status to the city of Jerusalem. Some saw it as a solution to the long going struggle and conflict whereas some forgot to figure out the competing objectives between Palestinian nationalism and Jewish nationalism. Despite of several criticism during final votes many states including United States of America, USSR, France and 30 others countries voted in favour of the resolution securing 72% of total votes, whereas 13 states including India voted against the resolution, ten abstention and one absent was followed by it. Jews got their national identity back but the permanent solution was not achieved. Arab lobby from time to time tried to suppress the Israeli government.

**United States effort: Pro-Israel Policy**

United States bilateral relationship with Israel holds a very important place in the United States Middle East policy. Though United States fully supported the UN's resolution of creation of Israel and it is also said that United States also pressured several states to vote in support of the UN's partition plan, but since 1960s the United States has been a strong supporter of Israel and Since 1985, the United States has provided nearly US$3 billion in grants annually to Israel, with Israel being the largest annual recipient of American aid from 1976 to 2004 and the largest cumulative recipient of aid ($142.3 billion, not inflation-adjusted) since World War II.[4]

The United States from time to time have tried to solve the tension between Palestine and Israel. During Presidents Nixon's days Israel was an American ally but the support was not unconditional instead he believed that Arab and Israel must make peace.[5] Later on when President Reagan explicitly called for the two-states find a solution, meanwhile Israel gained a special place in America's approach compared to the rest of the world. Not only the Jewish State perceived a shield against Soviet influence in the Middle East, it was also seen as a defender among

the leadership of free world and serving the American interest as well.[6] Many POTUS one after another tried to bring Arab lobby in a state of finding a permanent solution but Islamic fundamentalist always failed the strategy of peace process. Even on 9/11, clearly mentioning Israel as one of the reason he attacked United States on its own soil, Laden Said, "I say to you, Allah knows that it had never occurred to us to strike the towers. But after it became unbearable and we witnessed the oppression and tyranny of the American/Israeli coalition against our people in Palestine and Lebanon, it came to my mind.

The events that affected my soul in a direct way started in 1982 when America permitted the Israelis to invade Lebanon and the American Sixth Fleet helped them in that. This bombardment began and many were killed and injured and others were terrorized and displaced."[7]

**Israel-Palestine conflict status quo**

The genesis of conflict between the two is millennia old but the fire was forged since Israel's formation, not only Palestine's partition escalated the whole situation but several incidents also shaped the scenario.

- ***1948 Arab-Israel war:*** The formal declaration of Israel's independence earlier and end British mandate for Palestine at the midnight. A military coalition of Arab States advanced in Palestinian territory the next day on 15th. Causing first death in November carrying out ambush and targeting civilians in bus carrying Jews raised the tension between Arabs and Israel led to a war situation that lasted for 9 months. As a result of the war, the Israel defeated Arabs and not only gained control over area allotted to it by partition plan but also 60% of area allotted Arab states, which affected 7,00,000 Palestinian Arab to lead a life of refugee and were supposed to fled from their homes.

- ***Suez Crisis:*** In late 1956, The Egyptian President Gamal Abdel Nasser nationalized the Suez Canal, aiming to regain the control over the canal, Israel invaded Egypt and followed by the United Kingdom and France. After the intervention of United States, United Nations and the Soviet Union all the three invaders were supposed to withdraw their troops, which led to the humiliation of United Kingdom(British Prime Minister resigned) and France as well, however Sinai came under Israeli occupation until march 1957 and Straight of Tirans were reopened to Israel which were blocked by Egypt.

- ***Six day war:*** The third Arab-Israel war was fought between Israel and the neighbouring States of Egypt, Syria, Jordan, Iraq and Lebanon. Following the two previous wars the tension got much worse, when Israel reiterated its post 1956 position that closing the Straight of Tiran for Israeli shipping would be a cause of war. The Egyptian President Nasser blocked the Israeli vessels. Reacting to it Israel deployed air strike against Egyptian airfields. All of these neighbouring states attacked Israel but it resulted negative for them, as a result of the war Israel captured Golan Height, Sinai, some part of West Bank and Gaza Strip.

Arab-Israel conflict is not just because of reorganization or Partition of Palestine but was a also because of a shift in the interest and approach of west smoothening for Jews. Since the formation of Israel, Jews never negotiated the very one thing, Aspiration of their Nationhood! Which was reason for bothering whole of the Arab world creating turbulence and chaos for the Jews, for which Israeli responded in the best possible way possible they could have.

This made the Israel a non-compromising strong state despite of limited geography, whereas Arab was found out of options, but to make peace with Israeli. However, State sponsored Islamic fundamentalism in the Middle East created a mess in between every approach to make peace. Even several American President's made historic landmark in the peace process but it seems Arabs never saw it the way it must have been.

**United States and the Peace Process**

The foreign policy of United States set standards for American Citizens to be valued, the very idea America believes is National Security of United States and well-being of American lives. Other than United States, Department of State officially explains its mission as "Advance freedom for the benefit of the American people and the international community by helping to build and sustain a more democratic, secure, and prosperous world composed of well-governed states that respond to the needs of their people and act responsibly within the international system."

United States Diplomatic agenda hold a better control in the global community since World War II and downfall of United Kingdom after 1956's war gave American Government a strong hold on the side of diplomacy for rest of the world.

Several American President made efforts to make peace between Israel and the Arabs by initiating peace talks, accords, treaties and conventions etc. including:

- **President Nixon's Effort also known as Roger's Plan:** President Richard Milhous Nixon's administration strongly supported Israel as an American ally in the Middle East, though Nixon never supported Jews unconditionally. He believed that Israel should make peace with Arabs and neighbours which may be encouraged by United States. Nixon's Secretary of State William Pierce Rogers[8] directly involved himself making serious efforts to make peace deal between both the parties to achieve an end to belligerence in the Arab-Israel conflict and war of attrition. He believed "there should be a binding commitment by Israel and the United Arab Republic to peace with each other, with all the specific obligations of peace spelled out, including the obligation to prevent hostile acts originating from their respective territories."[9]

Efraim Inbar has described post 1973 phase as the American arms transfer to Israel. The main factors in the weapons relationship, There were three main parameters of the Israeli–American weapons relationship:

(1) A sole donor–recipient relationship;

(2) American ambivalence toward Israel's military strength; and

(3) The considerably greater Israeli requirements[10].

Despite of Washington's consistent effort the outcome of the Plan was not successful as Israel rejected it calling it "an attempt to appease the Arabs at the expense of Israel. Egyptian President called it a whole different deal even if Egypt recovers all of Sinai rejecting the deal and Soviet called it pro-Israeli and one-sided.

· **President Carter's Camp David Accords:** The President of the United States James Earl Carter Jr. (Jimmy Carter) and his Secretary of State Cyrus Vance's initiative at Camp David marked historic accord Known as Camp David Accord. Within the end of the first year of his term President Carter met with President Anwar El Sadat of Egypt, King Hussein of Jordan, Hafez al-Assad of Syria, and Yitzhak Rabin Prime Minister of Israel. In the fear that Jordan may be isolated from Arab world King Hussein opposed the peace initiative and also provoked Syria as well as PLO if they involve in any such event, other refused to meet Carter where Hafez al-Assad agreed to meet Carter in Geneva but it didn't worth.

· Later on, followed by a couple of weeks secret negotiation at Camp David, the country retreat of the American President (POTUS) a pair of political agreements signed by Egyptian President Anwar Sadat and Israeli Prime Minister Menachem Begin on 17th of September 1978 known as Camp David Accords.[11]

The first framework was a framework for peace in the Middle East, which also dealt with Palestinian territories, was written without the participation of the Palestinian and was later condemned by Arabs and United Nation as well.[12]

Whereas, the second framework which was a framework for the conclusion of a Peace treaty between Egypt and Israel. Due to the agreement, Egyptian President Anwar Sadat and Israeli Menachem Begin received the Nobel Peace Prize 1978 (shared by both).

This accord changed the whole perception in the Middle East politics, even Egypt was subsequently suspended from Arab League from 1979 until 1989 leading to assassination of Egyptian President Sadat by Egyptian Islamic Jihad (Al-Jihad) [13] on 6th October 1981 and 11 other were dead and 28 injured including Egyptian Vice-President, Irish Defence Minister and 4 American Military liaison officers. The group later merged with Al-Qaeda which was sponsored for the 9/11 attack.

• **Reagon's Approach towards Middle East:** A peace initiative was made by President Ronald Wilson Reagon on 1st September 1982, following the Israel's invasion of Lebanon and successful expulsion of PLO troops over 15,000 estimated fighters from that country. Referring on the basis of Camp David Accords he stated "With respect to the Arab-Israeli conflict, we've embraced the Camp David framework as the only way to proceed. We have also recognized, however, solving the Arab-Israeli conflict in and of itself cannot assure peace throughout a region as vast and troubled as the Middle East."[14]

He then called for elections to a self-governing Palestinian authority, inaugurating with a five year of transitional period during which Israeli settlements must not be expanded.[15] Reagon's vision supported a settlement based on the

"territory for peace" principle, enshrined in UN Security Council Resolution 242, and the creation of a Palestinian self-government in association with Jordan.

However, the assassination of Lebanese President-elect Bashir Jumayyil, massacre of Palestinian civilians and returning of US Marines to Beirut as well as ongoing deterioration of the Lebanese situation refocused US situation way aside and Israel-Palestine peace fell apart.

- **The Clinton Parameters:** The guidelines for a permanent status agreement to resolve the Israel-Palestine conflict were known as The Clinton Parameters. Both Israelis and Palestinians accepted with reservations President Clinton's "parameters" for final status peace negotiations.[16] If we see things in the term of Clinton's legacy we may found few things curiously mixed being the President who helped bringing peace in the region. The failure of Camp David 2000 was also of the strong reason why President William Jefferson Clinton (Bill Clinton) found there was reason to believe that both parties within their margins can come to peace within the reservation of the Parameters.[17]

- **Bush Administration and the Arab-Israel Conflict:** The Bush Administration's arrangement toward the Arab-Israeli clash has developed through five phases in its early days. The stages were:

1) the inauguration until the Powell visit to the Middle East in February 2001 ;

2) the Powell visit to the Middle East until the Sharon, Mubarak and Abdullah visits to the U.S. in March and early April 2001 ;

3) the temporary reoccupation of Gazan land by Israeli forces in mid-April 2001 until the issuance of the Mitchell Report in mid-May 2001;

4) the period between the suicide bombing of the Dolphinarium in Tel Aviv in June to the suicide bombings of the World Trade Centre and Pentagon in September; and

5) the period since the September 11th suicide bombings.[18]

In later phase President George Washington Bush proposed a potential diplomatic solution for the two nations in hopes of establishing peace between Israel and Palestine, even Bush Administration proposed the road map for peace at Quartet on the Middle East, calling for an independent Palestinian State living side by side with Israel in peace[19] but his plan was not implemented and tension was at its height followed by the Victory of Hamas in the 2006 Palestinian elections.[20]

- **President Obama amidst Arab-Israel: As** the US Presidential candidate Barack Hussein Obama-II showed his commitment towards the security of Israel, referring his daughters Malia and Sasha, he said "If somebody is sending rockets into my house where my two daughters sleep at night, I'm going to do everything in my power to stop that - and I'd expect Israelis to do the same thing."[21]

Later, when he became President he supported Israel as the US alliance but he also took a liberal road toward the Arabs. His Secretary of State visited Israel in

March, 2009 and before that in January, President Obama sent a special envoy George J. Mitchell to negotiate the Peace process in the West Bank between Israel and Palestine while stopping by in Egypt, Saudi Arabia, France and Britain. But Hamas as the de facto governing body in the Gaza Strip has always been obstacle in the peace processes between Israel and Palestine. Hamas, whose charter specifically calls for the destruction of the state of Israel, is listed as a terrorist organization by the United States, Canada, Japan, Australia, Israel, the United Kingdom and the European Union and is banned in Jordan.[22]

According to the Israeli Ministry of Foreign Affairs, from 2000 to 2004, Hamas was responsible for killing nearly 400 Israelis and wounding more than 2,000 in 425 attacks and since 2001 through May 2008, Hamas launched more than 3,000 Qassam rockets and 2,500 mortar attacks against Israeli targets[23].

- **President Trump:** Donald J. Trump as US presidential candidate criticized Palestinian authorities and blamed for lack of two state solutions he said "…the Palestinian Authority has to recognize Israel's right to exist as a Jewish state… [and they] have to stop the terror, stop the attacks, stop the teaching of hatred," the billionaire insisted, stressing that in order to reach a two-state peace deal "you have to get those basic things done.[24]" He supported a robust national defence and while he was POTUS he relied more on military personnel than previous administration [25]of President Obama's, even he improvised 10% increase in defence budget with deep cuts of other agencies including 28% cut from the State Department budget. He specifically laid out three points on his approach to the world and his priorities:

1. Defeating ISIS: which as POTUS, he continued United States war against ISIS, including the death of its leader Abu Bakr al-Baghdadi in October 2019.

2. "Rebuild" the military: In his first budget proposal as President he proposed a $ 54 Billion increase for defence budget, to a total of $639 Billion for fiscal year 2018, for which he even reduced budget for other agencies, even the Department of State. When he ordered the raid of Yakla, without any input from State Department, it was assumed that Secretary of State has been sidelined and resulting in the dismissal of Rex Tillerson as Secretary of State, President Trump nominated Michael Richard Pompeo former CIA director as his Secretary of State in 2018.

3. "Embrace diplomacy"..."We are always happy when old enemies become friends...": The embracing diplomacy along with strong military hold in the region, President Trump made the historic landmark for whole world, specially Middle East. Criticising President Obama's administration he said "Israel has been totally mistreated by the United States.[26]" Even after supporting Israel as his strong ally President Trump made effort to bring peace in the whole region between Israel and Arabs.

**The Abraham Accord:**[27] The historic Abraham accord marked first normalization between Arab countries and Israel since Egypt in 1979 and Jordan 1994. After

President Trump's effort the original accord was signed between UAE's Foreign Minister Abdullah bin Zayed Al Nahyan[28], Bahrain's Foreign Minister Abdullatif bin Rashid Al Zayani[29] and Israeli Prime Minister Benjamin Netanyahu and President Donald Trump as witnessing this historic peace process on 15th of September 2020 at the White House.[30] This accord marked a significant change in the foreign policy of many states whose foreign policy was subject to Arab-Israel conflict including India and United States. The Accord signed allowed the future opportunity in many aspects for several states including cultural, educational, legal cooperation, consular services etc. UAE also granted Visa to Israeli citizens after this accord was signed and for the very first time Jews visited Emirate since Israel was formed. This Accord gave the way for more than two dozen of Arab and African Muslim States to normalize their relationship with Israel.

**Arab-Israel Conflict and India's Foreign Policy**

The Introduction of The United Nations Partition Plan for Palestine at United Nations, which recommended partition of the State of Palestine at the end of British Mandate and formation of Israel was adopted by United Nations General Assembly as the Resolution 181(II), which recommended the Partition of Palestine, Creation of Israel and Special International Regime for the city of Jerusalem.[31] The first Indian Prime Minister Jawahar Lal Nehru opposed the formation of Israel and even didn't recognize Israel till 1950. Firstly, Prime Minister Nehru feared that supporting Israel may offend the Arabs, and secondly, India's own partition on religious ground may provide opportunity to Pakistan getting close to the Arab world gaining support on Muslim sentiments.[32] Though, India officially recognized Israel but India never established Diplomatic relations with Israel until Prime Minister P.V. Narasimha Rao made some historic efforts in setting new landmarks of India's foreign policy to the next level and opened its embassy at Tel Aviv in 1992. Ties between the two have flourished since then but India has repeatedly condemned Israel for its military action in the Palestinian territory, many political critics believe that reason behind this motivation is Indian Nation Congress lead United Progressive Alliance (UPA) government's desire for Muslim votes in India.[33]

Ezer Weizman became first Israeli President to make the diplomatic visit to India in 1997 where as Lal Krishna Advani became the First Indian Minister to visit Israel, later Jaswant Singh turned out to be the first foreign minister to visit Israel and made successful effort to set-up a joint anti-terror commission between the two states, intensifying the cooperation on counter-terrorism and information technology.

Since, then India-Israel has worked on mutual strategic interests and security threats but Communists and Muslim circle in India has always made negative efforts to stress the relationship between two. Even, Israeli Minister Sharon's visit to India in 2003 and Prime Minister Narendra Modi's visit Israel in 2017 was also centre of

propaganda among the communist and Pro-Arab lobby. Even media described Prime Minister Modi's move toward Israel as the "dehyphenation" of India's relation between the two states.[34]

**Conclusion**

The intricacies of the Arab-Israel conflict have wielded profound influence over the trajectory of India's foreign policy throughout history. From Jawaharlal Nehru's initial resistance to the establishment of Israel to the pivotal initiatives of Prime Minister P.V. Narasimha Rao in fostering diplomatic ties, India's stance towards Israel has undergone a metamorphosis. Despite strides made in bilateral relations, India has often proceeded with caution, mindful of political sensitivities, both domestic and international, particularly in regard to its ties with Arab nations and the electoral landscape at home.

The recent landmark Abraham Accord, facilitated by the United States, signifies a seismic shift in the geopolitical terrain of the Middle East, as nations like the UAE and Bahrain normalize relations with Israel. This epochal event presents a propitious juncture for India to reassess its position and recalibrate its foreign policy towards a more proactive engagement with Israel.

India's reluctance to fully embrace a pro-Israel stance has frequently been steered by considerations of Muslim sentiment, both domestically and internationally. However, the evolving dynamics in the Middle East, coupled with India's burgeoning strategic interests, particularly in realms of counterterrorism, intelligence-sharing, technology, and defence, mandate a re-evaluation of its foreign policy priorities.

Looking ahead, India stands to glean manifold advantages from deepening its entente with Israel across various sectors, harnessing Israel's expertise in defence, agriculture, technology, and counterterrorism. By nurturing a closer partnership with Israel, India can fortify its national security apparatus, bolster its technological prowess, and assert its stature as a pivotal player in Middle Eastern geopolitics. In light of the shifting geopolitical paradigms and the imperative for India to safeguard its strategic interests, it is imperative for Indian policymakers to adopt a pragmatic and forward-thinking approach towards Israel. By doing so, India can seize the opportunities afforded by the evolving landscape in the Middle East and carve out a distinctive role as a key stakeholder in the quest for peace and stability in the region.

❒

***References :***


1. *pp. 9; Brecher, Michael; Dynaimcs of the Arab-Israel Conflict-Past and Present: Intellectual Odyssey II; Palgrave Macmillan, Quebec(2017); ISBN 978-3-319-47574-5*
2. *Goitein, Shelomo Dov; The Yemenites – History, Communal Organization, Spiritual Life (Selected Studies); Ed: Ben-Sasson, Menahem; Ben Zvi Institute for the Study of Jewish Communities in the East, Jerusalem(1983); ISBN 965-235-011-7*
3. *The Jubilee of the first Zionist Congress, 1897-1947;The Executive of the Zionist Organization, Jerusalem(1947)*

4. *Sharp, Jeremy M.; U.S. Foreign aid to Israel; Congressional Research Service, CRS Report; (2019) https://web.archive.org/web/20200115021105/https://fas.org/sgp/crs/mideast/RL33222.pdf*
5. *pp. 68; Merkley, Paul Charles; American Presidents, Religion, and Israel: the Heirs of Cyrus; Westport, Conn.: Greenwood Publishing Group(2004); ISBN 978-0-275-98340-6.*
6. *pp.19;Marrar, Khalil; The Arab Lobby and US Foreign Policy: The two-state solution; Routledge, New York(2009); ISBN 978-0-415-77681-3*
7. *Full transcript of bin Ladin's speech; (https://www.aljazeera.com/archive/2004/11/20084916333645722 3.html)*
8. *https://mfa.gov.il/MFA/ForeignPolicy/MFADocuments/Yearbook1/Pages/ 9%20Statement%20by%20Secretary%20of%20State%20Rogers-%209%20Decemb.aspx*
9. *Vol.1-2; XII; Full Statement by Secretary of State William P. Rogers, 9 Dec. 1969; Historical Documents, Israel Ministry of Foreign Affairs; 1947-1974;*
10. *pp.24; Inbar, Efraim; Israel's National Security: Issue and challenges since the Yom Kippur War; Routledge, New York(2008); ISBN 978-0-415-44955-7*
11. *http://www.jimmycarterlibrary.gov/documents/campdavid/accords.phtml*
12. *http://unispal.un.org/UNISPAL.NSF/0/45650594884CB837852560DD0051C2AF*
13. *http://www.upi.com/Audio/Year_in_Review/Events-of-1981/Anwar-Sadat-Killed/12311754163167-5/*
14. *https://www.reaganlibrary.gov/archives/speech/address-nation-united-states-policy-peace-middle-east*
15. *https://ecf.org.il/issues/issue/158*
16. *http://www.usembassy-israel.org.il/publish/peace/archives/2001/january/me0103b.html*
17. *http://transparency.aljazeera.net/files/48.PDF*
18. *pp.6; Freedman, Robert O.; The Bush Administration and the Arab-Israel conflict: Year One; Vol.17, No.2; Israel Studies Forum; Berghahn Books, Springs(2002); ISSN- 1065-7711*
19. *https://georgewbush-whitehouse.archives.gov/news/releases/2002/06/20020624-3.html*
20. *.. https://www.washingtonpost.com/wp-dyn/content/article/2007/06/14/AR2007061402098.html*
21. *https://www.smh.com.au/national/israel-takes-little-comfort-from-obama-20090103-gdt8he.html*
22. *https://fas.org/irp/world/para/docs/880818.htm*
23. *http://www.foxnews.com/story/0,2933,473448,00.html*
24. *https://www.israeltoday.co.il/read/trump-blames-palestinians-for-lack-of-two-state-solution/*
25. *https://www.wsj.com/articles/military-brass-fill-national-security-council-1485478127*
26. *https://time.com/4378270/donald-trump-hillary-clinton-foreign-policy-speech-transcript/*
27. *https://www.state.gov/the-abraham-accords/*
28. *https://www.state.gov/wp-content/uploads/2020/09/UAE_Israel-treaty-signed-FINAL-15-Sept-2020-508.pdf*
29. *https://www.state.gov/wp-content/uploads/2020/09/Bahrain_Israel-Agreement-signed-FINAL-15-Sept-2020-508.pdf*
30. *https://www.state.gov/wp-content/uploads/2020/10/Abraham-Accords-signed-FINAL-15-Sept-2020-508-1.pdf*
31. *https://unispal.un.org/DPA/DPR/unispal.nsf/0/7F0AF2BD897689B785256C330061D253*
32. *pp.124; Kumarswamy, P.R.; India's Recognition of Israel, September 1950; Middle Eastern Studies , Jan., 1995, Vol. 31, No. 1 (Jan., 1995); Taylor & Francis; ISSN: 1743-7881*
33. *https://www.thehindu.com/news/the-india-cables/West-Asia-policy-hostage-to-lsquoMuslim-vote/article14949553.ece*
34. *https://indianexpress.com/article/india/plan-to-dehyphenate-pm-modis-israel-visit-may-not-include-palestine-4553099/*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 136–147

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

# Rise of BJP as Dominant Party in Contemporary Indian Politics
## ( An analysis of 2019 Lok Sabha Election)

**Dr. Jyoti**
Assistant Professor, Department of Political Science,
Central University of Himachal Pradesh. India
Email: jyotipolsc@hpcu.ac.in

**Rishi Kumar**
Research Scholar,Department of Political Science,
Central University of Himachal Pradesh. Dharamshala, Campus Dehra- 177101
Email: rishibhardwaj722@gmail.com

**Abstract**

*In India, with each passing year, the national reach of the Bharatiya Janata Party (BJP) has grown, while the reach of the Congress has shrunk. The BJP gains have largely come at the expense of the Congress; whereas the latter ran thirteen states prior to the last general election (2014), today it governs in just three state, Karnataka, Himachal Pradesh amd Telangana (also as coalition partner in Jharkhand and Tamil Nadu). Riding on a massive saffron surge sweeping through most parts of India, the BJP-led National Democratic Alliance (NDA) government became the only non-Congress government to return to power in the Indian political history. Altogether, the seat and vote gains mark a new high in the history of saffron politics in India. The lion's share of the credit for the BJP's resurgence belongs to Modi, who remains the most popular politician in India. Based on secondary sources, the present paper is an attempt to analysis the major factors in the 2019 Lok Sabha election that dominance in the favour of BJP.*

**Key Words**: Electoral Politics, Saffron Politics, Political Parties, Dominant Party, BJP

## INTRODUCTION

The 17th Lok Sabha poll 2019 has established the inviolability of the Constitution as the basic norm of Indian Polity. Peaceful transfer of power after seventeenth consecutive General Elections since 1952 makes India a truly Democratic nation that stands out as the world's largest democracy where the roots of democracy are deepening with the conclusion of each election. When India became independent in 1947 and choose the path of a constitutional democracy, many western scholars were sceptical about the success of democracy in a nation as diverse as India. Giving universal franchise to a largely illiterate population was a huge decision as

many of the western countries, including Switzerland conferred right to vote on women only in the 1970s. As many newly independent countries of Asia and Africa witnessed military coups and dictatorships, they kept speculating about the survival of democracy in India. Free and fair elections, freedom of speech, expression and association, political awakening, and independent judiciary are the fundamental basis of democracy. People's participation in shaping and sharing power in democracy requires their awareness towards the system.

Elections constitute the corner stone of our democracy and are main spring of a healthy democratic life and a barometer of its strength and validity. It is a process by which political opinion of the people is shaped. Political participation in the election is essential in a real democratic system. Elections in a democracy are the true interpreters of the policies and programmes of political parties. Thus institution like democracy is considered to be handicapped without the political process like elections.[1]

The earlier Indian Party System, which was callied the 'Congress system' by Rajni Kothari, a 'one party dominant system' by Morris-Jones, a 'predominant party system' by Giovanni Sartori, is no longer in existence.[2] Today it is a new party system which you saw on pan India level.

Today, the BJP is the largest, and most dominant political party in India. Ever since Modi became Prime Minister on May 26, 2014, the BJP has been working like a well-oiled electoral machine. Prime Minister Narendra Modi's Popularity remained continuously at national as well as international level was high during his five years term as a strong leader. It helps BJP to won state elections as well as national elections. BJP has won one state election after another and is dominating the national discourse like no other party has done in contemporary times. In 2014, the BJP won 282 out of 543 seats. this number rose to 303 seats in 2019 Lok Sabha elections. In consecutive elections, the BJP has formed the majority in government, the first time this has occurred since 1971, with a mandate to consolidate its power. This has allowed the BJP to expand its footprints across India- not only in electoral terms but also in cultural terms.[3]

## LITERATURE REVIEW

*Rekha Diwakar*[4] argues that a competitive party system plays a crucial role in the functioning and sustenances of Indian democracy, and the parties remains the most important link between the state and its citizens. *Yogendra Yadav*[5] argued the period of 1989-99 as 'third party system,' which was best characterised as a new electoral system in India since 1952. *Suhas Palshikar, K.C. Suri and Yogendra Yadav*,[6] tried to expand the temporal context of the state level analyses between 2008-2013, which find out patterns of state-level competition and also to understand the relationship between the state-level party competition and the all India patterns. *Arjan H. Schakel, Chanchal Kumar Sharma and Wilfried Swenden*[7] critically assesses claims that India has entered a new party system after the 2014 general elections. *Yamini Aiyar and Neelanjan Sircar*[8] argue that the electoral performance

of the BJP, and the popularity of the Narender Modi, has significantly altered the dynamic of regional party politics in India. *Christophe Jaffrelot and Gilles Verniers*[9] indicated the five aspects of the BJP's election campaign which contributed to its success in 2019. The first is the personal appeal of the Prime Minister Modi, which played a major role. Second focus on security related themes, third, the most formidable election campaign machinery assembled by the party. Fourth, using the traditional as well as social media tools for Constructing the Modi's image as a *Vikas Purush* and the firth one is, BJP's campaign style. *Adam Ziegfeld*[10] evaluates the BJP's prospects for achieving single-party dominance in 2019 Lok Sabha elections.

**OBJECTIVES**

1. To understand the BJP's emergence and the Congress's decline in national level politics.

2. To analyse the major factors behind BJP's victory in 2019 Lok Sabha elections.

**PARTY COMPETITION IN INDIA AFTER 1990s**

The Congress had traditionally been the dominant party in the Indian party system, but by the 1990s the party had begun to weaken. The rise of post-Congress polity resulted in further opening up of the field of party competition. Decline of the Congress meant that political space emerged at the Centre for many contenders and also that in many states the Congress receded in favour of new political formations. This development has produced a multi-party structure of political competition.[11] The BJP started to gain in popularity, at the same time, with significant help from the Ram Janambhoomi movement. The BJP formed government with its coalition (National Democratic Alliance) allies, for the first time ever in 1998. This was signalling a shift in the Indian party system- from a dominant party system to a bipolar system with BJP and Congress forming the two poles (NDA or UPA)- often referred to as the third party system by scholars of Indian politics (Yadav 1999).[12] Last 30 years witnessed that the national governments of India have always had either Congress or BJP as their leading partners and even when non-Congress, non-BJP governments came to power, they always depended on the support from either of these two parties. Thus a large number of regional or state parties in the competition arena are relevant only in connection with the two major national parties (BJP and Congress).[13]

Parties do present themselves differently on matters of performance- both in terms of governance and in terms of leadership style. Similarly the way in which parties mobilize popular support and engage in expressive action distinguishes them from each other.[14]

The governments have come to be identified with one supreme leader of the party. Therefore, leadership continues to be an important issue and quite a few states present the voters with a choice between leaders who are at loggerheads with each other. There are either two contending leaders as in the case of Tamil Nadu, UP, Bihar. Even in states like Punjab, Madhya Pradesh, Chhattisgarh, Gujarat

and Rajasthan leadership operates as a moderately important factor. Finally the political culture of competitive politics of some states contributes to a greater sense of belonging participation for the citizens and thereby expands the choice space available to them.[15] Luckily for the BJP, the opposition remains in disarray. The Congress has been slow to rectify the organizational and leadership deficiencies laid bare in 2014. Left parties have seen a precipitous decline nearly everywhere save for the state of Kerala, its last remaining stronghold. The party (BJP) has become the central pole around which politics in India revolves. This distinguished position once belonged to the Congress, but its recent electoral stumbles and the BJP's abundant successes have decisively changed the equation.[16]

## BJP AND ELECTORAL POLITICS IN INDIA

Bharatiya Janata Party (BJP) organized in 1980. Emergence of the BJP as a major force in Indian politics soon overwhelmed the Congress as the largest party in 1996, 1998, 1999 and majority party in 2014 and 2019 general elections. Over the period of time, this party has become one of the largest political party in the country. It has challenged the supremacy of the Indian National Congress (INC), which upholds a form of secular nationalism and hold sway over the Indian politics for quite a long period. In the journey of political parties after the independence a new dimension is added into the party system that is emergence of the alternate to the Congress. In the last seventy years (till 2014) accept Congress no party was able to get majority in the Lok Sabha on its own. Being an important institution in the Indian politics it is inevitable to understand the evolution of the BJP in the Indian politics

The Lok Sabha elections of 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 and 2009 witnessed the stabilisation and expansion in the electoral support of the BJP both at the Centre and in the State politics of India. The BJP obtained 86 Lok Sabha seats in 1989, 120 seats in 1991, 160 seats in 1996, 182 seats in 1998, same seat share obtained in 1999, 138 seats in 2004 and 116 seats in 2009 General Elections.[17] It is important to explain the growth of the BJP in 2014 to 2019 general elections because in the 1984 Lok Sabha elections it obtained only two seats and was a very marginal player in national politics. It seems paradoxical that the party of Hindutva could not get the support of Hindu voters even when the post-partition Hindu-Muslim divide was quite deep because of post-partition tragedy of Hindu-Muslim migrations. It looks quite paradoxical that Hindutva has come to occupy a central position in the Indian politics after seven decades of Indian Independence at a time when inter-community relations had improved as compared with the situation of 1947-50.[18] In 2013, the BJP was in power in five states- Gujarat, Madhya Pradesh, Rajasthan, Chhattisgarh and Goa and was sharing power with allies - JD (U) in Bihar and Shiromani Akali Dal (SAD) in Punjab. Its political fortunes have changed dramatically since then**.** By May 2018, the BJP, either on its own strength or with its alliance partners, was ruling in 21 of the 31 states and union territories, expanding to the regions and states where it was never in power before. Recently, in 12 states where BJP ruled, has its own chief ministers and in the other six, it shares power with its allies. [19]

## FAILURE OF CONGRESS

In Every state where the Congress has gone head to head with the BJP, voters have given BJP a huge thumps up. The harsh reality is this; the Congress has emerged even weaker in 2019. Although its seat tally has gone up by 8 from 44 to 52, the bulk of its seats have come from local boosters in three states. It won 15 seats in Kerala against a fast-fading CPM, nine seats piggy-backing on DMK in Tamil Nadu and eight seats in Punjab, thanks to the continuing popularity of its that time Chief Minister Capt. Amrinder Singh[20]. Without these 32 seats, its tally would have slumped to 20 seats. Now while the Congress tally has gone up to 52 seats, its vote share has remained the same pitiable 19.5 per cent. The BJP from its part, won 303 seats- up from the 282 it won in 2014 and in a majority of the states where it has a bipolar contest against the congress, its vote share crossed the 50 per cent marks, a remarkable feat in India's first-past-the-post electoral system. The principle opposition party could not open its account in as many as 17 state/UTs. The most definitive symbol of the Congress's demolition is Rahul's personal defeat on the family turf of Amethi[21] where he lost the BJP candidate Smriti Irani.

While the party's rout-the second worst defeat in the 134 year old party's history, has been ascribed to the overpowering Modi magic. It's also true that a sense of missteps over the last five years, organisational ineptness, misconceived strategic, tactical blunders and poor or clumsy messaging played their part[22]. Congress was unable to deliver its Nyuntam Aay Yojana (NYAY) message (of a minimum income guarantee scheme) to beneficiaries of the proposal. It got stuck on the 'Chowkidar Chor hai' slogan without realising the backlash it was inviting. Most importantly it has done nothing through its years in the opposition to stem the rot in the organisation or build an election machine to match Amit Shah's formidable nuts and bolts system.[23]

The Indian National Congress is no more in a position to set the terms of political competition or set the agenda. Its relation with many social sections and various regional parties has been tenuous. Its prospect of retaining power is only contingent. Overall this condition has been understood as the characteristic of the post-congress politics, a condition in which the INC was no more central poll of party competition against which all other political parties, termed as non-congress opposition, are arrayed on its either side. During the mid-way 1990s, the decline of the INC appeared to be arrested. It came back to power in 2004 leading the UPA and in 2009 significantly added to its seat share in the Lok Sabha. This later development allowed the party to retain its role in the politics of the country as the prominent one among the important players and to prevent it from fading away but it failed.

Once we moved beyond the Parliamentary elections of 2004 and 2009, the picture in the different states on India presents a much more complex story of electoral politics. The volatility of electoral support has come down, at the national level and in many states, as the parties were able to consolidate the electoral support

bases over the years.[24] This development has affected both the party system and the election outcomes.

The party at present does not have a strong leader and workable structure and its ideological agenda. Congress needs to rewrite its ideological agenda and open the entry gates of the party for people with rightist views within its broad spectrum of secular politics. The party can revive itself by rebuilding the party organisation by repopulating its cadres with foot soldiers and flag bearers at the grassroots level and set up realistic goals to do a political rebound in the distant future.[25]

## EXIT POLL'S PREDICTIONS

After voting concluded of the seven phase Lok Sabha election 2019, a series of exit polls predicted a clear mandate for the BJP-led NDA. None of the polls suggested that the BJP, which won 282 seats in the 2014 elections, would claim a majority of its own this time. Similarly most of the polls indicates the Congress winning less than 100 seats. The NDA was projected to get 287 seats by republic-C voter survey, 242 by Neta-NewsX, 306 seats by Times Now-VMR and 282-290 by News Nation. These polls gave the Congress-led UPA 128, 164, 142, 118-126 seats respectively[26].

Exit polls have been reasonably accurate in the past, especially in 2014 when they projected a broad swing towards the BJP-led NDA. However they have gone wrong, too, most notably in 2004 when they suggested that the BJP-led NDA under Atal Bihari Vajpayee would return to power.

In 2014 too, none of the poll pundits had anticipated that the BJP would get a clear-cut majority, and would later proceed to explain it away as an outcome of Modi's campaign. It is therefore very tempting to look at the 2019 elections as a repeat of what happened five years ago. The CSDS-Lokniti's National Election Survey revealed that about one-fourth of BJP voters would have opted for other parties had Modi bot been the PM Candidate. That's why the BJP campiagn was on Modi-centric.[27]

## BJP AND 2019 GENERAL ELECTIONS

The BJP-led NDA government became the only non-Congress government in Indian political history to return to power in 2019 Lok Sabha elections. Modi matched the track record of Jawaharlal Nehru and Indira Gandhi and became the third leader to retain power for a second term with a full majority for his own party in the Lok Sabha. The NDA's final tally is 353 seats out of 542, with the BJP itself winning 303 seats and improving on its 2014 tally of 282. In terms of vote share too, it got 37.4 per cent of the votes this time compared with the 31.4 per cent it got five years ago. The BJP and its allies in the NDA touched approximately 45 per cent vote share.[28] Altogether the seat and vote gains mark a new high in the history of saffron politics in India. The lion's share of the credit for the BJP's resurgence belongs to Modi, who remains the most popular politician in India.

Although BJP emerge strongly in many south states but failed to win a single seat in three southern States, namely Tamil Nadu, Andhra Pradesh, and Kerala and the Union Territory of Puducherry. However it improved its position in Karnataka and Telangana, raising its tally from 17 and zero respectively to 25 and four this time. BJP made significant inroads into eastern states such as West Bengal and Orissa. Throwing a stiff challenge to the ruling parties of West Bengal (TMC) and Orissa (BJD) it won 18 and 8 seats respectively. The party also swept its traditional strongholds of Madhya Pradesh, Chhattisgarh, Rajasthan, Gujarat, Haryana and Himachal, and thwarted the challenge thrown by two "Mahagathbandhans" in two crucial North Indian states, Uttar Pradesh and Bihar.[29] Of the total 25 seats in the eight north-eastern states (Sikkim, Assam, Arunachal Pradesh, Nagaland, Meghalaya, Manipur, Mizoram and Tripura), the BJP won 14 seats, Congress four and three or the BJP's allies in the North East Democratic Alliance (NEDA) - the Nationalist Democratic Progressive Party (NDPP), the National People Party (NPP) and the Mizo National Front (MNF) - won one seat each.[30] The Congress victory in the region was restricted to Assam and Meghalaya.

Modi's campaign style in 2019 was as populist as in 2014. While Modi rivals may have attacked, the mandate indicates all of the message of Modi and the Modi campaign- Good governance, Nation first, raising India's stature in the world, fighting corruption or teaching lesson to Pakistan. BJP has focused on the concept of 'New India' glorifying India's past and promising rapid economic progress, the new narrative is about a resurgent India which has shed its 'third world' status. Prime Minister Modi wants the nation to have countless starts-up and become a leader in renewable energy. He wants India to be a ?10 trillion economy.[31] Other side Congress has chosen poverty reduction as its main plank, which is not something new. Rahul Gandhi has claimed that he will undertake 'surgical strike on poverty'. In his election manifesto, the Congress has promised review of the controversy surcharged- Armed Forces Special Power Act (AFSPA).[32] This Act was passed in 1958 to counter the growing insurgency in the North-East and later extended to Jammu and Kashmir. BJP oppose that any such move will taken away the shield from the army and weaken the national security.

Thus the opposition had neither concrete programmes or alternative politics, nor any charismatic leadership to offer. It was the same old caste and alliance formulas and empty slogans of secularism that they themselves do not practice anymore. The arrogance of the opposition parties and their supporters was palpable as they mirrored the very forces that they were contesting against.[33] The major factors that dominant in this elections are:

**The first** factor that dominats in the favour of BJP was Narendra Modi's Charismatic Leadership. Since Modi was declared the prime ministerial candidate in September 2013, he built an image of a decisive and strong leader, a disruptor for change, a messiah of poor and the saviour of Hindutva. At every global event, there were photos of him with key counterparts, hugging or smiling, which were then

circulated and publicised as a sign of his bounding with world leaders and his standing in the global stage. If technology helped him to connect with party workers up to the booth level, '*Mann ki Baat*' addresses him bond with the common man.

In his an article published in Indian Express, Pratap Bhanu Mehta argued that 'democracy displays a will to simplicity when the answer to every question, the remedy for anxiety becomes one man and one man alone. The only authentic analysis of this election is two words: Narendra Modi'. According to him "Modi can literally make himself the object of attention every second of public discourse. Many leaders win because the public does not see an alternative. Modi won because he made an alternative unthinkable."[34] In parliamentary elections Modi was seen as the great unifier by the party cadres who canvassed for votes in his name, reducing the candidates to non-entities. Therefore, any anti-incumbency sentiment against the sitting MPs did not have an effect. In many places, the Prime Minister's image was printed more prominently than that of the candidates.[35] The massage was that a vote for the BJP was a vote for Modi. The opposition had no answer to PM Modi's strong emotional pitch. Modi effectively intermixed his personality, his development programmes of the last five years and the ideology in action to generate a strong emotional sentiment among the masses in his support. Modi has many achievements in the past five years to showcase, reaffirming his nationalist credentials. In fact this mandate is a proud reaffirmation of the people's commitment to nationalism. In a way, it is an answer to all those critics both domestic and international, who called Modi a divisive figure. It is the most expansive and inclusive mandate in support of the nationalist idea of India. Modi argued that the situation demanded a strong leader and a coalition government run by his opponents would inevitably be a weak one. Some voters took this "strong leader" rhetoric at face value. Among them many felt that the opposition did not offer a viable alternative because Rahul Gandhi is not sufficiently experienced.[36] In Modi, people perceived the realisation of the politics of aspiration and more importantly they saw him as one of their own who risen through the ranks facing adversity and resistance.

Yadav and Palishkar argue that identities alone may be becoming inadequate for attracting the voter. Governance issues are emerging as an important consideration in shaping voters choice. In fact, they argue that caste issue and development issue get combined in the political rhetoric and in voter considerations. The new phase of post-congress polity is that national as well as state leadership does not appear to be in a position to sway the voters and win election.[37] Thus election are about both governmental performance and image of the leader**.**

**Secound,** was the NDA's Beneficiary Schemes that Got Edge. Parties do present themselves differently on matters of performance-both in terms of governance and in terms of leadership style. Parties do shy away from sharp ideological polarizations and yet choices often present themselves in the form of personality or leadership style, identity markers, and governmental performance. The National Election Study 2019 found that performance did matter in the shaping of the outcome of the Parliamentary elections.[38]

Performance is often seen in terms of the ability of the government to deliver. The use of socio-economic indicators to target the poorest households for its social welfare schemes in rural India appears to have paid dividents for the BJP-led NDA in this Lok Sabha elections. It has won 71 or over 60% seats in constituencies that cover the 115 districts identified by NITI Aayog "as pirational". The most number of these districts fall in Bihar (13), and Jharkhand (19) and cover 12 constituencies each. The rural household data from the socio-economic caste census (SECC) has been the basis for the NDA's governments outreach to the most backward areas. Under the Pradhan Mantri Awas Yojana in last five years, 15 million houses were completed, including 7 million approved under the Indira Awas Yojana. 10 crore toilets were built under Swachh Bharat Abhiyan. Within 11 months launching the scheme Ujjwala Yojana, the government gave out 2 crore LPG connections. After clean cooking fuel the government launched a scheme to focus on electrifying all the households in the country. Under this till September 2017 nearly 2.63 crore households have been electrified across the country. These schemes not only strengthened the BJP in states where it won in 2014, it also provided inroad into states where it had not managed to win many seats. The appeal of the schemes also created goodwill among classes that were not intended beneficiaries- - showcasing all as directed towards its goal of "Sabka Saath, Sabka Vikas".

Projecting the Congress's programmes to eliminate poverty as total failures, the Modi government overhauled many of the schemes. The BJP succeeded in convincing people that the Jan Dhan Yojana had financially empowered them; Ujjwala Scheme for LPG connections to the poor had provided a clean cooking, the Pradhan Mantri Awas Yojana had made affordable housing possible; Ayushman Bharat had ensured quality healthcare and PM-Kisan Yojana would take care of the small and marginal farmers. His emphasis on open defecation free villages and toilets made him a Prime minister concerned with the health of poor. The message was consistently hammered home that the total beneficiaries of these schemes numbered are 22 crore.[39] Ahead of the general election, efforts were made to track beneficiaries of welfare schemes initiated by the central government and mobilise them as the party's core support base.

**Third,** was the BJP's Organisational set-up. Both in terms of governance and in terms of the party's growth and expansions it has been an unparalleled phase in the annals of post independent India's political history.[40] Right of centre is BJP in the contemporary Indian party system. The phenomenal rise of the BJP in late 1980 and early 2014 has been the most significant development in Indian politics. Powerful organisational network of the BJP has changed the political agenda as well as the map of party system in India. The prominent non-BJP parties have come together and ranged themselves against the BJP.[41] The BJP has been able to expand its political base in the country because of various factors including superior electoral strategies, planning, hard work, and a voter outreach programme that was far better than those of its rivals. Under the leadership of Prime Minister Narendra Modi and

BJP President Amit Shah, the party devised electoral strategies taking into account micro details of caste, sub-castes, religious compositions and other specifics of the constituencies while selecting party candidates.[42] Other side the organisational set up of the BJP is highly cadre based. The party's organisational structure spreads all over India, starting from national level to both levels. Different party cells also contribute to the organisational strength of the party.[43]

**Fourth,** Modi-Shah mutual bounding is undoubtedly the biggest story of the unprecedented 2019 mandate. They have the same goal of seeing a saffron India. They have placed great importance on expanding the BJP's footprint into parts of the country where it traditionally has been weak**.** It was Shah who had backed the idea of Modi contesting from Varanasi in 2014 to strengthen the party in eastern UP.[44] In 2014, Shah was party general secretary in charge of UP, so he has a limited role. This time they worked in tandem to expand the footprint beyond the Hindi heartland. Modi is not treating him as a protégé anymore but as a partner. Shah enjoys complete freedom in party affairs. He enjoys the total support of Modi, stands firm in his decisions and brooks no interference from any leader.

Amit Shah a man with the avowed aim of having the BJP rule from 'Panchayat to Parliament', has built up his party into a formidable machine after he took charge in July 2014. The electoral map of India has turned almost saffron signalling the rise of the BJP as a dominant player in the indian politics. Shah was 17 years old when he met Modi in RSS shakha at Ahmedabad's Naranpura for the first time. Then Modi was a pracharak, in charge of youth affairs in the state and shah was an ABVP activist. Modi saw a spark in Shah and that bond has only grown since. Modi taps into Shah's sharp strategizing and ingenious execution. Shah works with single-minded determination and loyalty. They together broke the Congress stranglehold over Gujarat and have now done the same in almost the entire country

**Fifth**, Modi Challenged Caste Based Politics. The result also marked a full circle for Mandal politics that held sway in vast swathes of country since late 80s and shaped the nature of the Central government since mid-90s. In 2014 General elections BJP's presence in Uttar Pradesh, Delhi and Bihar change the paradigms. This time BJP succeed to win almost 85 percent of seats in these two states. It is best reflected in BJP's success in politically crucial UP, Bihar and Karnataka again in 2019 elections that witnessed a major political realignment against the BJP.[45] Mandate 2019 has challenged caste based identity for the first time in 30 years, since the Mandal Commission's report to give job reservations to the OBCs came into effect in 1990. It spawned backward class politics, changed the power balance and threw up a crop of backward class leaders all over North India, Like Mulayam Singh, Mayawati and Lalu Prasad Yadav. In one stroke, the 'Modi wave' has washed away caste based alliances (like 'Mahagathbandhan') in UP and Bihar. Mandal and Kamandal have fed into each other in the last three decades- the regional parties, like the SP and BSP, relying on caste mobilisation and the BJP on Hindu consolidation. Election 2019 has diluted caste loyalties, but it has further reinforced religious identity.

In his first post victory statement, Narendra Modi gave new definition of caste identity. He said that there were only castes, one of the poor and the other of those who wanted to alleviate poverty.[46]

**Conclusion**

Thus, In 2019 Lok Sabha elections, BJP again emerged as the majority party. Both in terms of governance and in terms of the party's growth and expansion it has been an unparalleled phase in the annals of post-independence India's political history. The rapid political and geographical expansion of the BJP and its emergence as a main political force, after 2014 general elections, was due its ability to delicately redefine itself and its social base and forge alliances with regional parties having different social bases. The BJP's decisive victory this time has been attributed to the party's 'India needs a strong leadership' rhetoric. The voters were convinced that their interests were safe only in the hands of Narendra Modi-led BJP government. Altogether the seat and vote gains mark a new high in the history of saffron politics in India and all the credit for the BJP's resurgence belongs to Modi, who remains the most popular politician in India. A strong and affective organisation has been another important factor that contributed to the growth of the party in Indian politics.

❒

*References :*

1. *Ali, Raisa. (1996). Representative Democracy and Concept of Free and Fair Elections. New Delhi: & Deep Publications. p. 389.*
2. *Singh, MP. (2005). "The National Party System." (ed.) by MP Singh and Himanshu Roy. Indian Political System. Manak Publications. p. 254*
3. *Aiyar, Yamini and Neelanjan Sircar. (2020). "Understanding the decline of regional party power in the 2019 national elections and beyond." Contemporary South Asia- Routledge. http://doi.org/10.1080/09584935.2020.1765989*
4. *Diwakar, Rekha. (2017). Party System in India. Oxford University Press.*
5. *Yadav, Yogendra. (2014). "Electoral Politics in the Time of Change India's Third Elecoral System, 1989-99." Economic and Political Weekly, Vol 34. pp. 2393-2399.*
6. *Palishkar, Suhas. K.C. Suri, Yogendra Yadav. (2014). Party Competition in Indian States: Electoral Politics in Post-Congress Polity. Oxford University Press*
7. *Schakel, Arjan H., Chanchal Kumar Sharma and Wilfried Swenden. (2019). "India after the 2014 General Elections: BJP Dominance and the Crisis of the Third Party System." Regiona And Federal Studies. Vol. 29, No. 3. https://doi.org/10.1080/13597566.2019.1614921*
8. *Aiyar, And Sircar. Op. cit.,*
9. *Jaffrelot, Christophe and Gilles Verniers. (2020). "The BJP's 2019 Election Campaign: Not Bussiness as Usual." Contemporary South Asia- Routledge. https://doi.org/10.1080/09584935.2020.1765985*
10. *Ziegfeld, Adam. (2020). "A New Dominant Party in India? Putting the 2019 BJP Victory into Comparative and Historical Perspective." India Review. Routledge. Vol. 19, No. 2. pp. 136-152.*
11. *Palishkar, Suri, and Yadav. Op. cit, p. 17*
12. *Aiyar, Yamini (2019). "Modi Consolides Power: Leveraging Welfare Politics." Journal of Democracy 30(4).*
13. *Mukherjee, Pranav. (2017), The Coalition Years 1996-2012. New Delhi: Rupa Publications, p. 20*
14. *Palishkar, Suri, and Yadav. Op. cit., p. 23*
15. *Ibid., p. 24.*

16. *Vaishnav, Milan. From Cackwalk to Contest: India's 2019 General Election. Carnegie Endowment for International Peace. April 2018. p. 4*
17. *Ibid., p. 17*
18. *Ibid., p. 47*
19. *Mishra, Satish. (2018). "Understanding the Rise of Bharatiya Janata Party." ORF Issue Brief. Issue no. 258. p. 1*
20. *The Indian Express. May 27, 2019*
21. *Outlook (Magazine). June 10, 2019. p. 40*
22. *The Sunday Express. May 26, 2019*
23. *The Indian Express. May 27, 2019*
24. *Palishkar, Suri, and Yadav, Op. cit., pp. 1-2*
25. *Rai, Praveen. Sanjay Kumar. (2017). "The Decline of the Congress Party in Indian Politics." Economic & Political Weekly. Vol. 52, Issue No. 12.*
26. *The Indian Express. May 20, 2019*
27. *Jaffrelot and Veriers. (2020). Op. cit.,*
28. *Amar Ujala. May 24, 2019*
29. *Frontline. June 7, 2019. p. 8*
30. *Ibid., p. 64*
31. *Bharatiya Janata Party Manifesto-2019*
32. *Indian National Congress Party Manifesto-2019*
33. *The Indian Express, May 31, 2019*
34. *The Indian Express, May 24, 2019*
35. *Frontline. June 7, 2019. p. 37*
36. *Outlook (Magazine). June 10, 2019. p. 26*
37. *Palishkar, Suri, and Yadav. Op. Cit., p. 16*
38. *Ibid., p. 23*
39. *The Indian Express, May 24, 2019. Op. cit.,*
40. *Outlook (Magazine), June 10, 2019. p. 26*
41. *Ahuja, G.M. (1994). BJP and Indian Politics: Policies and Programmes of the Bharatiya Janata Party. New Delhi: Ram Company. p. 241*
42. *Mishra, Satish. Op. Cit., P. 6*
43. *Swain, P.C. (2001). Bharatiya Janata Party: Profile and Performance, New Delhi: A.P.H. Publishing Corporation. p. 102*
44. *Outlook (Magazine). June 10, 2019. Op. cit., p. 29*
45. *Ibid., p. 31*
46. *The Sunday Express. May 26, 2019. Op. cit.,*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 148–154

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

# Subaltern Hindutva Discourse in Indian Politics and Quest for Social Justice

**Dharmendra Kumar**
Ph.D. Scholar, Department of Political Studies,
Central University of South Bihar, Gaya (Bihar), India-824236
Email: dharmendrakumar@cusb.ac.in , Mobile: +91 7903719440

**Abstract**

*Subaltern Hindutva refers to the nuanced and often marginalized perspectives within the broader framework of Hindutva, a political and cultural ideology associated with the assertion of Hindu identity in India. However, the term "subaltern" refers to the socially, economically, and politically marginalized groups whose voices are often unheard or neglected in mainstream discourses. Subaltern voices within the broader spectrum of Hindutva ideologies have gained prominence, revealing complex narratives that intersect with social justice concerns. The article employs an ideological underpinnings, and contemporary socio-political developments in Indian politics. This article delves into the intricate relationship between Subaltern Hindutva and Social Justice, exploring the emergent dynamics of inclusive politics in the modern Indian socio-political landscape.*

**Keywords:** Subaltern Hindutva, Marginalized Groups, Social Justice, Party Politics, India

## Introduction

The term 'Subaltern' has deep historical roots, encompassing those marginalized across social, economic, and political spheres – including scheduled castes, tribes, backward castes, women, and minority communities (Nilsen et al., 2015: 1-27)[1] Within the contemporary 'Hindutva wave,' a unique phenomenon known as 'Subaltern Hindutva' has emerged. This paradigm seeks to extend its influence by actively integrating traditionally marginalized groups into the broader Hindutva narrative, moving away from exclusivist and majoritarian narratives. In the realm of Subaltern Hindutva, the objective is not merely to acknowledge marginalized communities but to dynamically integrate them, reshaping the social fabric. This involves a strategic reconfiguration of cultural symbols, political strategies, and ideological articulations,

aiming to provide inclusion within the larger Hindutva framework while addressing specific concerns (Nigam, 2019).[2] Subaltern Hindutva represents a conscious effort to diversify and broaden the appeal of Hindutva, fostering connections with demographics historically distant from mainstream Hindu nationalist discourse. As a dynamic and evolving approach within the broader Hindutva movement, it navigates the complexities of identity, representation, and social reorganization within India's diverse societal tapestry. In the multifaceted landscape of Indian politics, Subaltern Hindutva introduces layers of complexity to ongoing discourse, challenging conventional narratives (Narayan, 2008).[3] Over time, Hindutva has evolved as a political ideology rooted in cultural and religious identity. Subaltern Hindutva, as a distinctive variation, emphasizes inclusivity and addresses socio-economic challenges marginalized communities face. Expressed through various movements and political entities in Indian politics, it offers an alternative vision, advocating for the rights and representation of marginalized groups.

Statistical analysis by the Centre for the Study of Developing Societies reveals a significant backing for the Bharatiya Janata Party (BJP) among Scheduled Castes (SCs), Scheduled Tribes (STs), and Other Backward Classes (OBCs). This shift marks the BJP as a formidable force in democratic battles, particularly in states with above-average populations of these communities. In states like Rajasthan, Madhya Pradesh, Uttar Pradesh, Haryana, and Chhattisgarh, where the BJP has become dominant, the party's success can be attributed to its innovative political strategies and cultural events that resonate with OBCs, SCs, and STs. However, despite political gains, the economic benefits and political changes have often been controlled by conventional social elites, sidelining the Dalit-Bahujan masses. As the general election approaches, the BJP must address issues of social discrimination and economic injustice more sensitively (Wankhede, 2023).[4] Subaltern Hindutva, while making significant strides in political mobilization, needs to ensure that the fruits of development and political change are accessible to all sections of society, especially those historically marginalized. This delicate balance is crucial for a more inclusive and just political landscape in India.

**Subaltern Hindutva Strategy**

To comprehend the conceptual underpinnings of subaltern Hindutva, it is imperative to initially grasp the term "subaltern," coined by Italian Marxist Antonio Gramsci. The notion of subaltern denotes socially and politically marginalized groups within a given society. Such groups contend with various forms of oppression, including caste discrimination, economic deprivation, and religious persecution (De Jong, 2016).[5] The fundamental objective of subaltern Hindutva is to assimilate these marginalized communities into the broader Hindu nationalist discourse, thereby addressing their concerns and aspirations in a more inclusive manner. At its core, subaltern Hindutva endeavors to bridge the existing gap between marginalized communities and the overarching Hindu nationalist movement. This ideological stance acknowledges the historical injustices confronted by these communities and fervently advocates for their representation and empowerment.

In contrast to conventional Hindutva, which has faced criticism for its perceived exclusivity, subaltern Hindutva places a pronounced emphasis on the principles of social justice and inclusivity. The growing power of the political narrative, social engineering, and "subaltern Hindutva" ideological consolidation of the Bharatiya Janata Party (BJP)-Sangh Parivar. Going by their vision and mission, this strategy of the Sangh seems to comprise three elements— first, social and cultural patronage to the militant strata of marginalized Hindu castes. Second, Political consolidation on the Hindutva agenda with overt anti-Muslim politics. Third, Electoral representation for the most neglected but numerically important "Hindu" castes while keeping the hegemony and domination of the 'upper' castes intact (Shivasunder, 2022).[6] The ideology of subaltern Hindutva posits that the pursuit of social justice necessitates more than mere advocacy for Hindu nationalism. Recognizing the intersectionality of caste, class, and religion, it endeavors to rectify the structural inequities perpetuating specific groups' marginalization. By integrating the principles of social justice into its framework, subaltern Hindutva offers a more nuanced and inclusive approach to political discourse, recognizing the intricate interplay of social forces within the Indian societal context.

**Subaltern Hindutva Voices**

In the intricate landscape of Indian politics, the emergence of subaltern voices within the Hindutva paradigm reflects a nuanced effort to address the diverse narratives and identities within the Hindu community. Despite the overarching narrative of Hindu nationalism, the inclusion of subaltern voices within the broader Hindutva discourse underscores a commitment to social inclusivity and recognition of historical injustices. One noteworthy instance is the active participation of Dalit communities in Hindutva politics, exemplified by leaders like Udit Raj, a prominent Dalit activist turned politician associated with the Bharatiya Janata Party (BJP). Their efforts aim to assimilate Dalit concerns into the larger Hindutva narrative, attempting to bridge historical divides rooted in caste-based discrimination (Kumar, 2016).[7] Similarly, the advocacy for gender justice within Hindutva politics is manifested through organizations like the Rashtra Sevika Samiti, the women's wing of the Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS). While promoting women's empowerment within the context of Hindutva, it operates within certain cultural boundaries. The recent Bihar Caste Survey report reveals that economically backward classes (EBCs) face precarious conditions social insecurities, and are distanced from basic entitlements. While 'Subaltern Hindutva' may strategically contribute to BJP's electoral victories, it lacks a comprehensive mandate to address the aspirations of the most marginalized social groups (Mishra, 2023).[8] With Chief Ministers Vishnu Deo Sai and Mohan Yadav in Chhattisgarh and Madhya Pradesh, the BJP demonstrates a willingness to promote subaltern leadership, initiating a democratization process (Hebbar, 2023).[9] However, this should be complemented by effective policies for empowering marginalized groups in economic development and social change. The BJP faces a social justice test as historically disadvantaged

sections have joined with expectations for economic welfare and increased political participation. In Madhya Pradesh and Chhattisgarh, where Dalits and Adivasis constitute nearly 40% of the population, their representation in political power remains negligible. EBCs are similarly neglected in the distribution of key political assets, with social elites continuing to dominate Hindutva's developmental agenda (Lakshman, 2023).[10] To truly pass the social justice test, the BJP must ensure the emergence of an influential class among Dalits and Adivasis as new leaders, entrepreneurs, and influencers in the economic sphere. This approach challenges traditional social justice policies, positioning Dalits and Adivasis as essential contributors to neoliberal economic development, deserving an equitable share in the benefits of urbanization, industrial production, and technological advancements. Additional policy directives and affirmative action policies are necessary to empower the Dalit-Adivasi class, enabling them to become influential contributors to the national economy.

**The Impact on Social Justice**

In recent Indian Assembly elections, the Bharatiya Janata Party (BJP) has undergone a perceptible transformation, challenging its prior image as a party primarily catering to social elites. This evolution is attributed to the rise of "Subaltern Hindutva," a strategic approach that seeks to mobilize marginalized social groups by addressing their grievances and incorporating their concerns into the broader Hindutva narrative. The success of the BJP in recent elections, particularly in gaining substantial support from Scheduled Castes (SCs), Scheduled Tribes (STs), and Other Backward Classes (OBCs), signifies a departure from its historical association with the upper echelons of society. Under the leadership of Prime Minister Narendra Modi, the party has strategically employed measures encompassing general welfare and addressed the concerns of non-dominant OBC castes (Jagannathan, 2021).[11] Emotive narratives focusing on history, icons, and caste pride have been instrumental in engaging with the lower strata.

Reserved Seats Vote Share (2003-2023) (in percent)

| 2003 | | | 2008 | | |
|---|---|---|---|---|---|
| **Party** | **ST** | **SC** | **Party** | **ST** | **SC** |
| **BJP** | 24 | 05 | **BJP** | 19 | 05 |
| **INC** | 09 | 04 | **INC** | 10 | 04 |
| **BSP** | 00 | 01 | **BSP** | 00 | 01 |
| **2013** | | | **2018** | | |
| **Party** | **ST** | **SC** | **Party** | **ST** | **SC** |
| **BJP** | 11 | 09 | **BJP** | 03 | 02 |
| **INC** | 18 | 01 | **INC** | 25 | 07 |
| **BSP** | 00 | 00 | **BSP** | 00 | 01 |
| | | | **JCC (J)** | 01 | 00 |
| **2023** | | | | | |
| **Party** | **ST** | **SC** | | | |
| **BJP** | 17 | 04 | | | |
| **INC** | 11 | 06 | | | |
| **GGP** | 01 | 00 | | | |

***Source:*** *Compiled by author from Election Commission of India Website.*

The emergence of Subaltern Hindutva holds the potential to usher in profound changes in the realm of social justice in India. By centering the concerns of marginalized communities, this paradigm challenges the predominant narrative of Hindu nationalism and endeavors to dismantle hierarchical structures that perpetuate inequality. The focus on representation and empowerment within Subaltern Hindutva aims to create a more egalitarian society where equal opportunities abound for all individuals. A critical aspect of Subaltern Hindutva is its dedication to addressing caste discrimination, historically a source of oppression for marginalized communities in India. Recognizing the need to dismantle the caste system, Subaltern Hindutva advocates for equal rights and opportunities across all castes. The overarching goal is to create a society where an individual's social and economic status is not determined by their caste (Singh, 2019).[12] Social justice through the lens of subaltern ideology involves recognizing and amplifying the voices of traditionally marginalized groups, including women, ethnic and religious minorities and economically disadvantaged groups. This emphasis on diverse perspectives challenges existing power structures and hierarchies, aligning with the concept of participatory democracy, where marginalized communities actively contribute to shaping policies. Intersectionality is acknowledged, understanding the interconnected nature of various forms of oppression (Jaffrelot, 2003: 254-271).[13] The subaltern approach critiques cultural hegemony, seeking to challenge dominant narratives that contribute to the exclusion and misrepresentation of certain groups. Through solidarity and activism, advocates of subaltern ideology aim to address systemic injustices, building alliances to foster meaningful social change. Therefore, Subaltern Hindutva represents a transformative force in Indian politics, challenging the BJP's traditional image and offering a unique perspective within the broader Hindutva movement. The commitment to social justice through inclusivity, participatory democracy, and dismantling oppressive structures signifies a shift toward a more equitable and just society (Wankhede, 2022).[14] As Subaltern Hindutva continues to evolve, its impact on social and political landscapes remains a crucial aspect to monitor, highlighting the intricate intersections of ideology, politics, and social justice in the Indian context.

**Inclusive Politics in India**

It's important to note that the term "subaltern" is often associated with the marginalized and oppressed groups in society, and its use in relation to Hindutva ideology may raise questions, as Hindutva is generally linked to Hindu nationalist movements that have faced criticism for promoting exclusionary and majoritarian agendas. Nevertheless, if we consider the concept of inclusive politics within the context of diverse perspectives within the Hindu community, there are some key aspects to consider**.**

**Diverse Representation:** Inclusive politics under a subaltern Hindutva ideology would involve recognizing and incorporating the voices of various subgroups within

the larger Hindu community. This includes acknowledging the diversity of caste, class, gender, and regional identities among Hindus.

**Addressing Caste Disparities:** Subaltern Hindutva could focus on addressing historical and existing caste-based disparities within the Hindu community. Efforts to uplift marginalized castes and ensure equal opportunities for all Hindus would be crucial for promoting inclusivity.

**Religious Pluralism:** An inclusive approach would respect the Hindu community's diverse religious beliefs and practices. It would recognize that Hindus follow various traditions, sects, and interpretations of Hinduism and would safeguard the rights of minority groups within the broader Hindu fold.

**Empowering Women:** Inclusive politics would address gender disparities within the Hindu community. It would seek to empower women, challenge patriarchal norms, and ensure equal participation in political, social, and economic spheres.

**Dialogue and Understanding:** Fostering dialogue and understanding among different groups within the Hindu community is crucial for inclusive politics. This involves acknowledging differences, addressing historical grievances, and working towards common goals that benefit all.

**Protection of Minority Rights:** Inclusivity should extend beyond the Hindu community to ensure the protection of minority rights. An inclusive subaltern Hindutva ideology would advocate for the rights and dignity of religious and ethnic minorities, fostering a pluralistic and tolerant society.

It's important to approach discussions about inclusive politics within the context of Hindutva ideology with sensitivity, as interpretations and applications of these ideas can vary. Additionally, political ideologies are dynamic and can evolve over time based on societal shifts and new perspectives. In any case, fostering inclusivity within the Hindu community would involve addressing internal diversities and working towards social justice and equal representation for all.

## Conclusion

In conclusion, the discourse of Subaltern Hindutva in Indian politics represents a nuanced attempt to reconcile the ideals of Hindutva with the principles of social justice. By acknowledging the diverse voices within the Hindu community and addressing historical inequalities, Subaltern Hindutva seeks to forge a more inclusive political narrative. The emphasis on diverse representation, caste reconciliation, and intersectionality demonstrates a commitment to rectifying systemic injustices within the Hindu fold. However, the challenge lies in translating these discursive ideals into tangible policies that promote social justice on the ground. For Subaltern Hindutva to truly contribute to social justice, it must go beyond rhetoric and actively engage in dismantling structural inequalities. This involves implementing policies that uplift marginalized communities, empower women, and protect the rights of religious and ethnic minorities. Moreover, fostering dialogue and understanding among diverse Hindu groups is essential for building a pluralistic society.

❐


*References :*

1. *Nilsen, A.G. & Roy,S. (2015). Reconceptualizing subaltern politics in contemporary India. New subaltern politics: Reconceptualizing hegemony and resistance in contemporary India, P.1-27.*
2. *Nigam, A. (2019). Hindutva, caste and the 'national unconscious'. Democratic Marxism Series,P.118.*
3. *Narayan, Badri. (2008). Fascinating Hindutva: Saffron politics and Dalit mobilization. New Delhi: Sage*
4. *4.Wankhede, Harish S. (2023). BJP's subaltern Hindutva strategy and the crucial social justice test. The Hindu. https://www.thehindu.com/opinion/op-ed/subaltern-hindutva-and-the-crucial-social-justice-test/article67663212.ece*
5. *De Jong, S., & Mascat, J. M. (2016). Relocating subalternity: scattered speculations on the conundrum of a concept. Cultural studies, 30(5), P.717-729.*
6. *Shivasunder. (2022). Subaltern Hindutva Is Gaining Ground – BJP's Victories in Vijayapura, Kollegal Are Proof. The Wire. https://thewire.in/politics/subaltern-hindutva-bjp-vijayapura-kollegal-polls*
7. *Kumar, KP Narayana. (2016). Udit Raj: BJP's most prominent Dalit face reckons party needs to do more to annihilate cast prejudices. Economic Times. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/udit-raj-bjps-most-prominent-dalit-face-reckons-party-needs-to-do-more-to-annihilate-caste-prejudices/articleshow/50786524.cms?from=mdr*
8. *Mishra, Anand. (2023). Bihar caste survey results challenge BJP's Hindutva unity narrative. Frontline. https://frontline.thehindu.com/politics/bihar-caste-survey-report-game-changer-in-indian-politics-results-challenge-bjp-hindutva-unity-narrative/article67402996.ece*
9. *Hebbar, Nistula. 2023). BJP's CM picks for three states will be pointer to shape of its politics ahead. The Hindu. https://www.thehindu.com/elections/suspense-continues-over-choice-of-cms-in-mp-rajasthan-and-chattisgarh/article67614987.ece*
10. *Lakshman, Abhinay. (2023). BJP sweeps tribal seats across M.P., Chattisgarh; BAP opens account. The Hindu. https://www.thehindu.com/news/national/bjp-sweeps-tribal-seats-across-mp-chhattisgarh-bap-opens-account/article67602226.ece/amp/*
11. *Jagannathan, R. (2021). Mandir yoked to Mandal, BJP's 'subaltern Hindutva' faces a tough test in the 2022 UP elections. Economic Times. https://economictimes.indiatimes.com/opinion/et-commentary/view-mandir-yoked-to-mandal-bjps-subaltern-hindutva-faces-a-tough-test-in-the-2022-up-elections/articleshow/84563391.cms?from=mdr*
12. *Singh, Abhinav Prakash. (2019). A common Hindu identity has always appealed to OBC and Dalit castes. Hindustan times. https://www.hindustantimes.com/columns/a-common-hindu-identity-has-always-appealed-to-obc-and-dalit-castes/story-n8CXPw1CKTx0V27Zk8VTSJ.html*
13. *Jaffrelot, Christopher. (2003). India's silent revolution: The rise of the lower caste in India. Permanent Black. P.254-271*
14. *Wankhede, Harish S. (2022).Droupadi Murmu: New icon of subaltern Hindutva. The Deccan Herald. https://www.deccanherald.com/opinion/droupadi-murmu-new-icon-of-subaltern-hindutva-1125499.html*

**पूर्वदेवा**– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 155–165*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

# Witch Hunting in India
# Mystifying Women's Lives and Identity

**Monika Tiwari**
Assistant Professor, Department of Sociology and Political Science
Dayalbagh Educational Institute, Dayalbagh, Agra - 282005
Email: monikatiwari15m4m@gmail.com

## Abstract

*Witch hunting has been a primitive practice in various communities across the world. Owing its origin primarily to primitive ways of countering adversities, it continues in modern societies as a way to deal with mystified mis happenings. Though, the practice endures due to multiple reasons, such as wide-spread superstitions, illiteracy, lack of health of facilities but majority of the attacks are significantly motivated by the socio-cultural positionality of victims. The data shows that in majority of the cases women of lower caste, of lower class or widows or women in general, are the prime targets of the attacks. Thus, from a cynical hunt for blaming woman for misfortunes to extort her for material and sexual gains stands the core of the menace. In India, Jharkhand, Odisha, Madhya Pradesh, Chhattisgarh are the worst affected states in terms of witch hunting practice. Despite of the many state legislations implemented by the state governments, the practice continues to haunt several lives. The paper delves into the historical, social and legal aspects of the practice. It also explores the question of caste and gender as significant factor behind the attacks. The paper emphasizes the role of gender stereotypes in perpetuating violence as a means of societal control over women, who defy the power structures. Drawing upon the intricacies of the issue, it advocates the need for comprehensive legal framework at grassroot as well as national policy making level.*

**Keywords:** Witch-Hunt, Women, Gender, Caste, Violence, Law, Human Rights.

## Introduction

"They forced me to eat human faeces and beat my children, calling them 'children of a witch.' I had nowhere to escape. They tortured me mercilessly."[1]

Imagine, a parade in the hamlet, with hundreds of villagers strolling together, carrying a nude woman, violently pulling her and cursing her with insults. From now on, she may be murdered, starved to death, raped, forced to eat human fasces, drink blood, or experience all of the above. Even after this process, her punishment would be incomplete. It will continue until her death, leaving her destitute, stigmatized and alone, with no personal or social life. In most circumstances, this is the standard approach for dealing with a 'Witch'. The preceding phrase is a mental image that one might form after reading and listening to news about witch hunting instances. The statement is not an isolated narrative of crime against humanity. The instances of burning women alive, breaking their nails, smashing head with stones, shaving or cutting hair are few ways to punish the 'Witches' in Odisha, Jharkhand, Assam and many other states of India. The modern society, marked with scientific temper, has not been able to distance itself from brutality inflicted in the name of superstitions. The reality speaks in such cases of violence, where a 72-year-old woman is set on fire for allegedly practicing Witchcraft or people forced to consume excreta, to drink blood after being identified as Witch in their perceptions. This practice, having several aspects, is primarily taken up as a solution to any social or family adversity. The practice of Witch hunting is not specific to any society. It has been practiced in many parts of the world such as India, Africa, England, America etc. There are many stereotypes governing society which paralyze women with several labels. The practice of Witch hunting mystifies women identity by believing in such patriarchal stereotypes working against women. Despite the legal actions, the practice has acquired a vast space in the rural and urban spaces. The practice has a strong social, psychological and cultural base.

In recent years, the cases of Witch hunting as a practice has received attention worldwide and United Nations has formally acknowledged it as a crime against humanity. The Director of the Witchcraft and Human Rights Information Network (WHRIN), in a press release, mentioned that "Reported data shows that in the last decade that there have been at least 20,000 victims of these harmful practices across 50 countries and 6 Continents who have faced extreme human rights violations including loss of life, limbs and property due to harmful practices. Today marks an important step towards delivering justice for them and preventing more abuses" (WHRIN, 2021)[2]. The UN resolution was passed in 47th session of the United Nations in 2021. The practice is not specific to any continent but has been part of many folk cultures. A study of 'Elimination of Harmful Practices: Accusations of Witchcraft and Ritual Attacks' mentions that the cases of Witch hunting are underreported and hence there is inadequate data. The report says "that more than 2,586 older women were killed between 2004 and 2009 in Tanzania and more than 20 older women were killed in Zimbabwe, as a result of Witchcraft accusations. In the United Kingdom, in the period of 2017/2018, there were 1,630 reported cases of child-survivors of abuse related to accusations of Witchcraft. That number increased by 11% from the previous year" (OHCHR, 2020)[3]. Apart from that stigmatization, discrimination, trafficking, disappearances, body mutilation, burning, banishment from

community are common repercussions of the practice. The most vulnerable to the accusation are old women, children, single women, persons with disabilities, persons with Albinism. Thus, the practice stands as grim reality of the modern world.

**Witch Hunting as a practice:**

Etymologically derived from the old English term 'bewitch'; 'Witch' is someone, who posses' supernatural or special powers and use it for the evil purposes. Witches have been very interesting mystic figures in folklores, representing dark side of human lives. In various cultures, the name assigned to Witches vary, such as; *Tonahi, Dakin, Dakini, Dayan* etc. But, they all carry similar connotations and perceptions. Witch hunting is a practice usually carried out for the purpose of punishing the people who are allegedly responsible for wrongs of society, for example, excessive natural calamities, outbreak of epidemics, sudden illness of a family member, agriculture crop failures and death of family members, ill fate of family or village. In ancient times, people began worshiping supernatural powers out of fear of unknown. This fear of unknown still drives human behavior. When people are skeptic of the actual reasons behind unfortunate occurrences, they start hunt for blaming women in most of the cases. In such areas, the profession of *Khonses, Sokha, Janguru*, or ojha is very popular, who are hired for identifying and conducting the hunt (Yadav,2016)[4]. In practicing Witch hunting, people are brutally punished; they are stripped, dragged to death, beaten ruthlessly, publicly molested, raped and murdered. For community members, this practice holds great importance as they consider it as a healing process. The practice usually has three stages; Accusation, declaration, persecution (*ibid.*)[5]. The first stage includes identifying cause or any incident to accuse a person and blaming for any harm done to community or individual, then declaration stage, this stage involves Witch branding by declaring and confirming the accusations by ojhas and the final stage is the persecution, which is the stage of punishing accused for all the wrong and harm. The persecution generally involves exclusion form community, physical and mental violence, rapes, naked parades etc. According to Hutton, the people who believe in Witch craft, they hold following assumptions about Witches:

- Witches use nonphysical mode of harming others
- Harm is not caused to somebody unknown but in most of the cases the Witch is either a kin or neighbor
- Disapproved behavior by society and their motives are malicious
- The Witch can be tackled by nonphysical customs or by counter magic and execution. ( UNHCR, 2011)

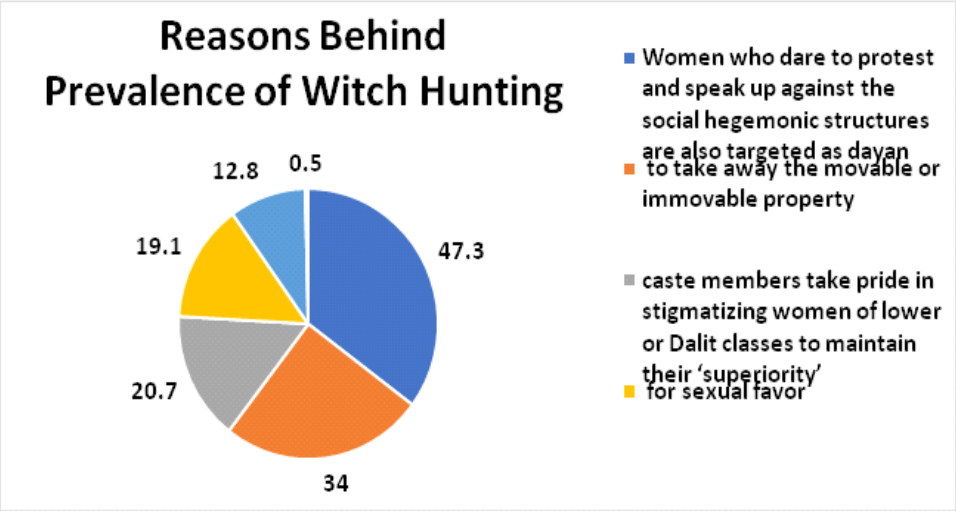


**Source:** *Study, Conducted by Centre for Alternative Dalit Media (CADAM) and supported by National Commission for Women (NCW)*[6],

In the practice of Witch hunting, the supposed Witch of the community does not bear only physical violence but the aim of the perpetrators, is to set a standard of atrocity to make people learn a lesson from her situation and so the mental harm or distress is taken to such an extent that it breaks the boundaries of one's dignity and self-respect. This practice is based upon the old superstitions, prejudices, social hierarchies and gender biases. It is not limited to any class, caste or religion. It is practiced in rural as well as urban settings. Thus, this practice is prevalent not as physical crime but as a psychology in itself. Like, rapes are not only sexually driven act but psychologically enabled crime, having non-physical motives. Likewise, this practice also has its own psyche.

**History and continuity**

The origin of the practice can't be traced to particular event and country. It has been an integral part of the early modern Europe. Witch hunting and trials were conducted by states officially and judicial trials were held. From 14th to 18th century, it was supposed that Witches are to repudiate Jesus Christ and to promote Satan or devil. The most famous Witch trial was Salem, Massachusetts in colonial America between 1682- 1693. In this trial, nearly 150 people were imprisoned and 19 were executed[7]**.** Apart from the Salem trials, there have been many other Witch trials under supervision of states. "The age of Witch-hunting spanned more than four centuries (from the 14th to the 17th century) in its sweep from Germany to England. It was born in feudalism and lasted—gaining in virulence—well into the "age of reason". The Witch-craze took different forms at different times and places, but never lost its essential character: that of a ruling class campaign of terror directed against the female peasant population. Witches represented a political, religious and

sexual threat to the Protestant and Catholic churches alike, as well as to the state" (Ehrenreich and English, 1988)[8]. The practice continued throughout middle-ages and modern period. It is still persisting, not in Europe but more prevalent in developing and underdeveloped countries like Africa, Papua New Guinea, India, Congo, Tanzania etc. The last famous Witch trial was observed in Switzerland in 1782. Though, some incidents are still witnessed in developed country as in 2005, in London, an eight-year-old girl was accused to be a Witch by her own family member and chili pepper was rubbed into her eyes to separate devil spirit from her[9]. Even United Nations has acknowledged the presence of the practice which is often used as a weapon against refugee women and stigmatizes them. In India, the presence of this practice has been primitive and customary. At the time of 1857, mass level Witch hunting was practiced in Chotanagpur region. The famous Devi movement was also marked by landlords as Witch craft by the Dalit Adivasi women as they were protesting against the land grabbing and atrocities. Moreover, the Santhal tribe of India, has been centre for attraction to many western scholars since colonial rule, due to their unique practice of Witch hunting. Bodding noted that "there is no Santhal, who does not believe in Witches" (Sinha, 2007)[10]**.** It was socially and culturally embedded practice of Santhals and any illness was considered to be the sign of evil spirit present in the body. The administrators had to face strong revolts when they tried to ban Witch hunting practices. They used to consider Witches as alive and cruel as British or any other caste people. Witch hunting is still prevalent in many parts of India and the world. In this period, Witch hunting supporters had posed great resistance to British administration.

'A history of Witchcraft is a history of women': A Gendered Violence and Historic Reality

In India, woman has been assigned the status of Goddesses and in daily lives, they are considered as *Grihlakshmi, shakti, devi* etc. But, facts tell different story. The respect, they hold in Indian society, is undoubtedly ideal and in reality has stark contradictions. This is tough exploration to dive into this paradox of imagination, where on one side they are occasional Goddesses with blessings and on the other, Witches with ill intentions. Uma Chakravarty, in her groundbreaking explorations of Brahmanical patriarchy, addressed the roots of these conceptions. She says that woman and her sexuality has been considered as morally corrupting force in society. The ancient texts like Manu smriti, Jatakas, Mahabharata have treated woman as essentially betraying and corrupted. Chakravarty mentions "The congenital fickleness of women's nature is especially pertinent to the problem of dealing with the innately overflowing and uncontrollable sexuality of women. Thus, in the ancient texts it is repeatedly stated that they can never be trusted; further the Mahabharata states that they are difficult to control. The cunning tricks of the demons are known to be unique to women [XIII.39.51.]" (Chakravarty, 1993)[11]. The above statements highlight a strong gender essentialism in context of woman. It also equate a woman with demon; sharing similar 'cunning tricks'. Due to such popular prejudices, Witch

hunting has strong gender base. The Study, Conducted by Centre for Alternative Dalit Media (CADAM) and National Commission for Women (NCW), shows that in 47.3% of cases, women who defy social norms and speak against the hegemony are more likely to be declared as a witch[13]. Another study, conducted by Partners of Law in Development in selected districts of Jharkhand, Bihar, Chhattisgarh, shows that in 46 out of 48 cases women were primary targets. Out of 88 victims, mentioned in FIRs, 75 were females and 13 were males ( Partners of Law in Development, 2021). Barabara Ehrenreich and Deirdre have explained the rise of Witch hunting practice as response to rising status of women as 'healers' (someone to cure illness and restore health). In medieval era, women were the primary 'healers' of the society as midwives and nurses. This healthcare profession was dominated by women. In due course of time, their occupation faced a strong opposition from their male counterparts. This profession of healing was then defamed as a work of Witches and magical practices. This conspiracy led to the rise of male scientific doctors and women healers were persecuted as Witches. Ehrenreich mentions "The other side of the suppression of Witches as healers was the creation of a new male medical profession, under the protection and patronage of the ruling classes. This new European medical profession played an important role in the Witch-hunts, supporting the Witches' persecutors with "medical" reasoning" (Ehrenreich and English, 1988)[14]**.** Mr. Sanjay Basu Mallick, renowned writer from Jharkhand also shares the similar views regarding the origin of Witch hunting. He says that in traditional societies woman were prime agricultural workers, used to have great knowledge about herbs and natural medicines. This made women well equipped healers in the society to cure minor ailments. This made men envious and vindictive. This resulted in mass level discrimination and exploitation against women by men ( Mallick quoted by CADAM report). According to Mallick "It might be a conspiracy by men to subordinate or weaken women who are more powerful and have control over many things". The reason behind this lies in the already prevailing prejudices against women confirming to the norms of patriarchy. The deterministic view about women or to say her essence, is supposed to be jealous, vindictive, supports the accusations and Witch branding. There has been a sustained prejudice against woman and one such instance is well observed by Stuart Clark in the writings of G. Puttenham where the poet has portrayed woman as a 'quarrelling' figure . The couplets present women as a contradictory figure, defying her husband all the time and always creating opposite situations through her actions.

*My neighbour hath a wife, not fit to make him thrive,*
*But good to kill a quicke man, or make a dead revive.*
*So shrewd she is for God, so cunning and so wise,*
*To counter with her goodman, and all by contraries*
*For when he is merry, she lurcheth and she loures,*
*When he is sad she singes, or laughes it out by houres.*

*Bid her be still her tongue to talke shall never cease,*

When she should speake and please, for spight she holds her peace,

Bid spare and she will spend, bid spend she spares as fast,

What first ye would have done, be sure it shalbe last.

Say go, she comes, say come, she goes, and leaves him all alone,

Her husband (as I thinke) calles her overthwart Jone.2 ( as quoted by Clark, 2019)[15]

Clark mentions that these poetic lines were depiction of a woman of early modern Europe and who stands different from the norms of society. This shows how the ill nature of Witch associated with woman figure essentially. Clark suggests the reason behind Witch-hunting and Witch branding against women lies in the change of social situations. For example, changing patterns of marriage and preferences to remain single became a question of social disorder. Society didn't find any way to deal with this trend. Also, the charity mechanisms of society were not willing to help these women and viewed them as constant socio-economic burden. These factors led to gradual demarcation of such women from the social structure. The practice of Witch hunting had become an effective measure of social control in societies, sometimes based on stereotypes and sometimes on economic gains. The aim of the crime is not only suppressive blame game but extends to economic gains such as to acquire land and property of the victims. They find women as easy targets to attack; specifically widows, single women and old women. In one such case from Ganeshapur village of Jharkhand, where 65-year-old Holo Devi was branded as Witch for asking her share in the family property. Later on, she was also accused for the death of son of Tati Devi ( The first wife of Holo Devi's husband) and after that she was publicly insulted and brutally murdered[16]. The women also act as perpetrators of violence in many cases. They are also the ones who accuse other women of being Witch. In some cases, when woman deny sexual favor, she is branded as Witch. It is easier to stigmatize her identity to punish her in return of denial of sexual favors. These targeted attacks on women are manifestation of patriarchy where it tries to pull women back for economic reasons. Therefore, the practice has separate grounds for being called gendered violence, inflicted against women for being women. Behind the practice, lies a well-built foundation of prejudices and gendered socialization, which makes it natural to blame a woman rather a man.

**Intersecting gender and caste**

Caste is an integral part of the Indian social stratification. It guides social interactions and focuses on maintenance of traditional social order. Dr. Ambedkar described caste as division of laborers rather simply division of labor. In this division, Dalits have been placed at the lowest and more specifically, Dalit women hold the last position in a caste ridden patriarchal framework. Ambedkar not only dealt with the issues of caste but also highlighted the mechanisms of caste, in which he stressed upon the role of women in maintaining the caste purity. He said woman is the carrier

of progeny and by controlling woman's sexuality, the caste purity is ensured. He discussed the issue of surplus woman and surplus man who are big threats to social order in caste ridden society. He says "And so, the surplus woman (= Widow), if not disposed of, remains in the group: but in her very existence lies double danger. She may marry outside the caste and violate endogamy…." (Ambedkar, 1916)[17]. Chakravarty also notes that caste and gender hierarchy is the organizing principle of Brahmanical patriarchy. Dalit woman, loaded with multiple identities, is oppressed on the bases of caste, class and gender. In caste bound patriarchal society, a Dalit woman stands the most oppressed being as a Dalit, a labor and a woman altogether. The feminist discourse has also recognized Dalit feminism as one of the major variants of feminism, which identifies itself with the intersectionality framework. In Witch hunting cases, it is easier to conduct Witch hunt against the already subjugated Dalit woman. In a case from Jharkhand, the daughter-in-law of the village sarpanch was branded as a Witch because upper castes were not happy with the Dalit Sarpanch. The main reason for targeting Dalits, is the upper caste notions of superiority and their will to sustain the hegemony. Whenever, Dalits appear to be successful and going ahead in their lives, it is supposed they are defying the years old social order and prescribed roles. The practice of Witch hunting has become a popular custom in many rural areas to sustain the caste system and patriarchy. Dalit women are the easy targets as they are the lowest in the social hierarchy in terms of gender and caste structure. There have been instances where any mishappening in the land lord's family results in Witch hunting in the village, targeting Dalit women for the wrongs. Moreover, it has become a tool in the hands of upper castes to snatch Dalits of their properties and making them devoid of their socio- political and economic rights.

**Interface with law and society**

The practice of Witch hunting and Witch branding is a common practice in 12 major states of India, with National Crime record Bureau recorded 2097 cases of Witch hunting between 2000 -2012. It is practiced due to various reasons. Jharkhand is a leading state in terms of cases and deaths due to Witch craft. In 2018, 26 % of the total deaths due to Witch hunting, were from Jharkhand[18]. The rise in cases has shown the inefficacy of the measures taken so far and indicates the magnitude of the problem. This practice has evolved as a grim gender offence, which promotes the evil projection of women for larger blame game. In India, there is no national criminalization of Witch craft. It is not dealt with separate provisions but some sections of 1860 Indian penal code are applied as the alternative course of action such as Sec.302 which charge for murder, Sec. 307 attempt for murder, Sec. 323 hurt, Sec. 376 which penalizes for rape and Sec. 354 which deals with outraging a woman's modesty. National Crime Record Bureau reported (NCRB) that from 2001 to 2019, 2,937 women were killed for allegedly practicing Witch craft. 1n 2019 alone, NCRB noted 102 cases of Witch hunting. Bihar was the first state in India to pass a law "Prevention of Witch (Dayan) Practices Act" in 1999. Then "Anti

Witchcraft Act" (Jharkhand) 2001, "Chhattisgarh Tonhi Pratama Bill" 2005, "Rajasthan Women (Prevention and Protection from Atrocities) Act" 2006, Anti superstition law of 2019 in Maharashtra etc[19]. Apart from these state laws, India has signed Convention on Elimination of all forms of discrimination (CEDAW) 1993 and Universal Declaration of Human Rights (1948). National Commission for woman once drafted a bill titled "The Prohibition of Atrocities on Women by Dehumanising and Stigmatising Them in Public" for addressing the issue in 2014 (Mehra and Agarwal, 2016)[20]. In Bhim Turi vs. state of Assam, Guwahati High Court stated that the practice of Witch hunting is rooted in "quasi-religious beliefs and socio cultural traditions blended with superstitions" (Yadav, 2016)[21]. Gladson Dungdung also opines that "In the Adivasi communities, it is largely women who are considered to have an evil influence and thus, capable of being witches. Witch hunting is common among the Santhal, Munda, Oraon and Kharia Adivasis" ( Dungdung, 2004)[22]. A study, conducted by Centre for Alternative Dalit Media (CADAM) and supported by National Commission for Women (NCW), found that in such cases, family and victim, hesitate in filing FIRs. It states that more than 60 per cent of the households believe that the victims have lack of access to the law or police, because of their social and educational backgrounds. In the study it was also found that the punishment and fine lodged on the criminal, in such cases, is very minimal, which fails to teach an effective lesson to them. On the part of locals, in Jharkhand the awareness about the Acts was 83 % and in Odisha it was 71 % but the study concludes that locals were not aware about the provisions and punishments was not partial and not up to the mark. Coming to the remedies of the problem, nearly 64% of the respondents suggested and demanded the opening of new schools in their localities and nearly 63% of the respondent suggested improvement of health care systems to counter the menace. In terms of organizing the awareness programs about witch hunting NGOs accounted highest i.e. 27.6% of the programs as opposed to the programs organized by political leaders, which stood the lowest i.e. 3.2 % only. This shows the disinterest of the pollical leaders to address the problem and to take initiatives[23].

**Conclusion:**

Near Assam- Meghalaya border, away from mainland villages, there exists a remote place called *Daninigaon*- A witch village. There live nearly 70 people with no recognition and identity. This *Daninigaon* (Witch village) is a permanent home of banished and dislocated people, branded as Witch in their localities and never accepted thereafter. The Daninigaon is a shelter for banished people, who were robbed off their dignity, home, family and much more beyond one can imagine. This area does not any governmental record and formal recognition. For government, this doesn't exist, but for these people it exists as Home and ironically, for locals it exists as *Daninigaon*, which means place where Witch resides. The practice of Witch hunting is denigrating crime against humanity. It is a social menace which has its roots in old stagnant supernatural assumptions. It has taken many lives. Currently, states are fighting a toothless battle against the menace but national laws can improve

the situation and can bring the issue in mainstream. There is a need to have conceptual understanding of the practice to deal with the problem. It is required to train local people to empathize and support the victims rather stigmatizing them. There is a need to strengthen local networks and awareness to counter the practice. Though, not limited to women, but it has developed as a serious gender violence against women. The village level counseling to victims, providing rehabilitation, security help lines can improve the situation. The role of local women self-help groups should be promoted. Besides these initiatives, there are structural improvements to be made such as proper healthcare mechanism, better education, development of scientific temper and access to justice. The practice of witch hunting is not solely based on lack of scientific temper but has socio-cultural, economic and structural bases. Hence, the measures must address the issue with holistic approach which involves legal, socio- political and psychological efforts.

❐

***References :***


1. *Rane.S, (2018). If you think Witch hunting is history, think again. Feminism in India. https://feminisminindia.com/2018/04/13/Witch-hunting-rampant-practice/*
2. *"New Hope for Survivors as They Celebrate Historic UN Resolution Condemning Harmful Practices Related to Accusations of Witchcraft and Ritual Attacks". WHRIN (2021). https://www.whrin.org/new-hope-for-survivors-as-they-celebrate-historic-un-resolution-condemning-harmful-practices-related-to-accusations-of-witchcraft-and-ritual-attacks/*
3. *Elimination of harmful practices: accusations of witchcraft and ritual attacks, March, (2020). Office of the United Nations High Commissioner for Human Rights. https://www.ohchr.org/sites/default/files/Documents/Issues/Albinism/CN-Witchcraft_EN.docx*
4. *Yadav.T, (2016). Witch Hunting: A Form of Violence against Dalit Women in India. CASTE: A Global Journal on Social Exclusion. Vol.1, No.2, pp.169–182, October 2020 ISSN 2639-4928.*
5. *Ibid.*
6. *Research Study on Violence against Dalit Women in Different States of India by studying the Sources of Materials that are Available and Conducting Interview of the Perpetrators, Victims and Witnesses, CADAM & NCW. http://ncw.nic.in/content/research-study-violence-against-dalit-women-different-states-india-studying-sources*
7. *Wallenfeldt, J. (2023, December 3). Salem witch trials. Encyclopedia Britannica. https://www.britannica.com/event/Salem-witch-trials*
8. *Ehrenreich, B., & English, D. (1988). Witches, midwives, and nurses: A history of women healers. Sogo Kango. Comprehensive Nursing, Quarterly, 23(1), 87-119.*
9. *More children 'victims of cruel exorcism' (2005). The Guardian. https://www.theguardian.com/society/2005/jun/05/childrensservices.religion*
10. *Sinha,S. (2018). Witch-hunts, Adivasis,and the Uprising in Chhotanagpur. Economic & Political weekly.*
11. *Chakravarti, U. (1993). Conceptualising Brahmanical patriarchy in early India: Gender, caste, class and state. Economic and political weekly, 579-585.*
12. *Research Study on Violence against Dalit Women in Different States of India by studying the Sources of Materials that are Available and Conducting Interview of the Perpetrators, Victims and Witnesses, Centre for Alternative Dalit Media (CADAM) New Delhi & NCW.*
13. *Witch Hunting in Odisha. Action Aid Association (2021). http://oscw.nic.in/sites/default/files/Witch%20Hinting%20In%20Odisha-ActionAid%20Assosciation-2021.pdf*

14. *Ehrenreich, B., & English, D. (1988). Witches, midwives, and nurses: A history of women healers. Sogo Kango. Comprehensive Nursing, Quarterly, 23(1), 87-119.*
15. *Clark, S. (1999). Thinking with demons: the idea of witchcraft in early modern Europe. Oxford University Press.*
16. *Tiwari, V. (2024). 'Beaten, Thrown Off Cliff': When an Innocent Widow Was Witch-Hunted in Jharkhand. The Quint. https://www.thequint.com/videos/brutally-thrashed-killed-innocent-widow-witch-hunted-in-jharkhand*
17. *Ambedkar, B. R. (2022). Annihilation of Caste and Other Essays. Maple Classics.*
18. *Rane, S. (2018). If you think Witch hunting is history, think again. Feminism in India. https://feminisminindia.com/2018/04/13/Witch-hunting-rampant-practice/*
19. *Witch Hunting in Odisha. Action Aid Association (2021). http://oscw.nic.in/sites/default/files/Witch %20Hinting % 20 In % 20 Odisha-ActionAid % 20 Association-2021.pdf*
20. *Mehra, M., & Agrawal, A. (2016). 'Witch-hunting 'in India? Do We Need Special Laws? Economic and Political Weekly, 51-57.*
21. *Yadav.T, (2016).Witch Hunting: A Form of Violence against Dalit Women in India. CASTE: A Global Journal on Social Exclusion Vol.1, No.2, pp.169–182, October 2020 ISSN 2639-4928.*
22. *Dungdung, G. (2017). A vision for Adivasis. Alternative Futures: India Unshackled, 594-614.*
23. *Research Study on Violence against Dalit Women in Different States of India by studying the Sources of Materials that are Available and Conducting Interview of the Perpetrators, Victims and Witnesses, CADAM & NCW. http://ncw.nic.in/content/research-study-violence-against-dalit-women-different-states-india-studying-sources*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 166–171

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

# Exploring Symbolism, Cultural Narratives, and Ethical Dimenstions in Devdutt Pattanaik's 'Jaya : An Illustrated Retelling of the Mahabharata'

**Dr. Ashwani Kumar**
Research Assistant- Indian Council of Social Science Research, New Delhi
E-mail: kadiyan.ashwani@gmail.com

**Dr. Poonam Choudhary,**
Assistant Professor, Harsh Vidya Mandir (P.G.) College, Raisi, Haridwar, Uttarakhand
E-mail: drpoonamhvm@gmail.com Mob. 8533886611

*"Dharma is not about justice; it is about empathy and wisdom. Dharma is not about defeating others, it is about conquering ourselves. Everybody wins in dharma.*-Devdutt Pattanaik

## ABSTRACT

*Published in 2010 by Devdutt Pattanaik, an author hailing from India 'Jaya: An Illustrated Retelling of the Mahabharata' is a modern take on the ancient epic popularly known as the Mahabharat. Without doubt, the Mahabharat is a timeless classic containing amazing jewels of Indian knowledge and wisdom. The author has offered novel interpretations on the episodes of the epic paving way for further discussions. This research paper has explored Devdutt Pattanaik's 'Jaya: An Illustrated Retelling of the Mahabharata' and the Mahabharata seeking profound insights that can be applied to address contemporary national and societal challenges. By delving deep into the rich narrative, ethical dilemmas, and socio-political nuances of the Mahabharata, this study aims to extract timeless lessons that resonate with the complexities of our modern world and to explores how the epic's themes of governance, morality, conflict resolution, and social harmony offer valuable perspectives for navigating and mitigating present-day challenges. Having a background in medicine and leadership consulting, the author has brought a unique perspective to the retelling of this ancient Hindu epic. This paper aims to explore the comprehensive interpretations provided by Pattanaik, emphasizing its worldwide acclamation and appreciation. Additionally, the current research has endeavoured to gorge down extracting invaluable pearls of wisdom concealed within the larger-than-life characters and narratives. Other than that, the research paper aims to discern the significance of nationhood, dharma, and the concept of self-defence, providing a renewed perspective on these foundational aspects of Indian cultural heritage.*

**Keywords:** Civilization, ethical dilemmas, socio-political, symbolism, mythology, contemporary relevance, narrative choices.

## Introduction

Devdutt Pattanaik is an Indian author, mythologist, and speaker who often shares insights into Hindu mythology and its relevance to contemporary life. His views toward society are shaped by his interpretations of ancient Indian texts, particularly the epics like the Mahabharata and the Ramayana, as well as various Puranas. While it's important to note that perspectives can be diverse and nuanced, here are some general points that characterize Devdutt Pattanaik's views toward society. Pattanaik believes that mythology, especially Hindu mythology, contains timeless wisdom and insights that are relevant to modern society. He often uses myths to explore and explain complex societal issues, ethics, and human behaviour. Ancient Indian literature stands as a vast repository of knowledge, with the Mahabharata emerging as a cornerstone of cultural and civilized heritage. This epic, along with the Ramayana, Vedas, and Puranas, continues to wield a profound influence on the cultural and behavioral fabric of Indian society. Despite numerous scholarly interpretations over the years, the need persists for a fresh examination that draws out new meanings, interpretations, and understanding from this timeless text. The proposed study focuses on the Mahabharata, acknowledging its enduring appeal and relevance in the contemporary context. As societies and nations evolve, there arises a critical necessity to fine-tune our understanding of cultural values, national identity, and ethical principles embedded in ancient narratives. It also aims to unearth invaluable insights from the Mahabharata, hidden within its larger-than-life characters and intricate plotlines. The Mahabharata, encompasses a wealth of religious material, including myths, tales of enlightened sages, and accounts of exemplary human conduct. It predominantly reflects the worldview, spiritual concerns, and social attitudes of the Brahman or priestly class in ancient India. The Vedas, originating in the north-western region around 1500-1000 BCE, were initially transmitted orally for generations before being transcribed.

Rewriting of Indian epics in the present era is a dynamic and evolving process that not only preserves cultural heritage but also facilitates a continuous dialogue between the past and the present. Through a careful analysis of key episodes and characters, the research aims to shed light on the enduring relevance of the Mahabharata as a source of wisdom and guidance for addressing the multifaceted issues confronting our society today. It seeks to revisit the greatest epics of ancient India through the lenses of culture, values, nation, and dharma. As societies and nations undergo ongoing transformations, it becomes imperative to refine our understanding of cultural heroes, heritage, and symbols. In the Indian context, colonial influences have undeniably shaped our narratives. However, it is evident that a more concerted effort is needed to revitalize our comprehension of the illustrious past. It serves as a means of cultural expression, education, and exploration of the timeless themes embedded in these ancient narratives. *Sita: Daughter of the Earth:*

*A Graphic Novel* by Saraswati Nagpal is celebrated for its vibrant and delightful artwork, creating an engaging visual experience. the graphic novel's positive reception for its artistic merit, despite some reservations about the narrative style, suggests that it effectively combines visual appeal with storytelling, making it an engaging and potentially educational resource for readers, especially children. *In Search of Sita: Revisiting Mythology,* a compilation curated by Namita Gokhale and Malashri Lal, offers a comprehensive exploration through essays, commentaries, and conversations. The collaborative effort delves into the multifaceted aspects of Sita's character and narrative, inviting readers to reconsider and reevaluate the traditional perspectives that have shaped her portrayal in mythology.

The compilation provides a platform for diverse voices and perspectives, fostering a nuanced understanding of Sita's journey in *In Search of Sita: Revisiting Mythology*, it stands as a collaborative venture that aspires to contribute to a more profound and contemporary understanding of Sita's character and the societal constructs that have influenced her portrayal over time. *Yajnaseni"* by Pratibha Ray is a profound exploration of the legendary character Draupadi from the Indian epic Mahabharata. The novel, originally written in Odia and later translated into various languages, presents Draupadi's life story from her own perspective. Ray delves into Draupadi's complex identity as a woman, wife, and queen, addressing the challenges she faces in a patriarchal society. The novel navigates through pivotal moments in Draupadi's life, including her birth from the sacred fire, her polyandrous marriage to the Pandavas, and her subsequent travails during the Kurukshetra War.

The themes of power, justice, and the role of women in ancient society are intricately woven into the narrative. Ray's storytelling skillfully captures the cultural and historical nuances of the Mahabharata, providing readers with a thought-provoking and empathetic perspective on Draupadi's character. The novel is a literary exploration that not only enriches our understanding of Draupadi's character but also prompts reflection on broader societal issues. These timeless works continue to significantly shape the cultural ethos and behavioral patterns of millions of Indians. While scholars and philosophers have extensively studied, translated, and analyzed these epics, there remains room for fresh discoveries, meanings, interpretations, and nuanced understandings. This perspective suggests that the central conflict in the Mahabharata was more about adhering to one's righteous duty or dharma rather than seeking conventional justice. Dharma encompasses a broader concept that includes moral and ethical responsibilities. The definition of dharma as empathy and wisdom rather than mere justice emphasizes a more holistic and compassionate understanding of righteous living. It suggests that dharma goes beyond rigid legal or punitive frameworks. The notion that everybody wins in dharma suggests that the pursuit of righteous living, even in conflict situations, can lead to positive outcomes for all involved. This aligns with the idea that adhering to dharma contributes to collective well-being. It appears that even the Kauravas, despite being on the opposing side in the war, attained a positive outcome by going to paradise. This interpretation

suggests a transcendence of enmity and a recognition of the complexities of individual character and destiny.

The war between Kauravas and Pandavas was about Dharma and not for justice. And dharma is not about justice……. Dharma is not about defeating others, it is about conquering ourselves. Everybody wins in dharma. When the war at Kurukshetra concluded even the Kauravas went to paradise.

These text serves as a contemporary reinterpretation of the ancient Indian epic, offering a unique blend of narrative storytelling and visual representation and seeks to delve into the various dimensions of the retelling, including its literary qualities, cultural contributions, and impact on readers. This retelling goes beyond a mere recounting of events, offering a nuanced perspective that brings out the cultural, ethical, and philosophical dimensions of the narrative. The narrative unfolds through insightful commentary and interpretations, drawing attention to the complexities of characters, the moral dilemmas they face, and the broader lessons embedded in their stories. Pattanaik's retelling is not confined to a literal interpretation; instead, he emphasizes the symbolic and allegorical aspects of the Mahabharata, inviting readers to reflect on the deeper meanings inherent in the epic.

The retelling also incorporates illustrations that complement the narrative, providing a visual dimension to the epic. These visuals enhance the reader's engagement and offer a unique perspective on the characters and events described in the Mahabharata. Overall, "Jaya" serves as a gateway for readers to delve into the richness of the Mahabharata, inviting them to contemplate the profound lessons and timeless wisdom embedded in this ancient Indian epic. Engaging with Devdutt Pattanaik's interpretations provides a contemporary lens through which to view the Mahabharata. By intertwining traditional scholarship with his unique insights, this research seeks to uncover new layers of meaning and relevance within the epic. Pattanaik's contributions offer a bridge between ancient wisdom and modern sensibilities, inviting a renewed exploration of the Mahabharata and its enduring impact on cultural narratives.

The Mahabharata imparts numerous morals through its characters, and it is crucial to assimilate these ideals, integrate them into our lives, and pass them on to future generations. Arjuna's journey illustrates that sheer physical strength is insufficient for survival; divine grace is equally vital. When faced with the inability to save a Brahman's child, Arjuna, initially despondent, discovers his purpose, restoring Dharma on Earth through Krishna's guidance to Lord Vishnu. Arjuna embodies action, while Krishna embodies wisdom, symbolizing the interplay between Mortal and Immortal. The friendship between Duryodhana and Karna provides a significant lesson. Karna's unwavering commitment to Duryodhana, standing by him in Kurukshetra despite discovering his royal lineage, exemplifies loyalty and gratitude. Despite the world's rejection, Duryodhana's support earned Karna's undying loyalty.

Their bond serves as a profound model for friendship, transcending personal interests and demonstrating steadfastness even against one's own kin.

Jaya: An Illustrated Retelling of the Mahabharata is systematically divided into 18 chapters, with a structure designed for easy readability. The initial sections, such as *"Author's Note: What Ganesha* Wrote Devdutt Pattanaik introduces a unique narrative perspective. Ganesha, the elephant-headed god of wisdom and writing, is traditionally believed to have written down the Mahabharata as it was recited by the sage Vyasa. Pattanaik creatively uses this mythical premise to set the stage for his retelling and *Structure of Vyasa's Epic,* serves as a roadmap, providing readers with an organized overview of the epic's composition. Devdutt Pattanaik presents a systematic breakdown of the Mahabharata's structure, characters, and key events, facilitating a comprehensive understanding of this ancient Indian epic. provide a foundational understanding, supplemented by charts and tables. In the Mahabharata, the concept of dharma is central to the narrative and is explored through the dilemmas faced by the characters. The idea is not just about external righteousness but also about inner transformation and the pursuit of a higher ethical and moral path. *Devdutt Pattanaik* in *Jaya: An Illustrated Retelling of the Mahabharata* emphasizes;

"dharma is not about justice; it is about empathy and wisdom. Dharma is not about defeating others, it is about conquering ourselves. Everybody wins in dharma."

The unconventional and engaging writing style employed by Pattanaik aims to connect with a new generation of readers. The paper explores the prologue, titled *The Start of the Snake Sacrifice,"* where Janamejaya, the grandson of Abhimanyu, listens to the Mahabharata during a snake sacrifice conducted by Astika. This section employs a question-and-answer format, enhancing its accessibility and engaging the readers. The narrative then unfolds, tracing the stories of ancestors, Bharata, Shantanu, Bhishma, Dhritarashtra, Pandu, and finally, the Pandavas and Kauravas. In the "Author's Note: What Ganesha Wrote" section 1 of the retelling, the writer introduces a unique narrative perspective. Ganesha, the elephant-headed god of wisdom and writing, is traditionally believed to have written down the Mahabharata as it was recited by the sage Vyasa. Pattanaik creatively uses this mythical premise to set the stage for his retelling. Reality is complex, and things don't always go as planned. When this misalignment occurs, it can lead to frustration, disappointment, and a sense of powerlessness; *"You want the world to behave as you wish. It does not, hence your anger and your grief*." The central message encourages individuals to focus on making the most of their lives. Rather than being consumed by the fear of death, the emphasis is on enjoying, celebrating, learning, and making sense of life. This approach aligns with the idea of embracing the present moment and finding meaning in one's experiences.

"……Everybody dies some suddenly, some slowly, some painfully, some peacefully. No one can escape death. The point is to make the most of life enjoy it, celebrate it, learn from it, make sense of it, share it with fellow human beings so that when death finally comes, ……..."

The research paper concludes by acknowledging the unique narrative techniques employed by Pattanaik, his skillful incorporation of diverse perspectives, and the broader implications of his retelling in fostering a deeper understanding of the Mahabharata for contemporary readers. The story encapsulates a profound philosophical perspective embedded in Hindu rituals and practices; "All Hindu rituals end with the chant 'Shanti, shanti, shanti' because the quest for peace is …. of all existence. This peace is not external but internal. It is not about making the world a peaceful place; it is about us being at peace with the world." Recognizing Pattanaik's significant contributions to the understanding of Indian mythology and his unique perspectives that shed light on the nuances and relevance of the Mahabharata in contemporary contexts. By weaving together Pattanaik's perspectives with traditional literary analysis, the research seeks to unveil new layers of meaning and relevance within the epic.

❐

*References :*

1. *Pattanaik, Devdutt. Culture: Insights from Mythology. Noida: Harper Collins Publishers India, 2017.Print.*
2. *Bhalla, Prem. Hindu Rites, Rituals, Customs and Traditions. Hindoology Books, 2014.*
3. *Pattanaik, Devdutt. Jaya: An Illustrated Retelling of the Mahabharata. Penguin Books, 2010.*

***पूर्वदेवा***– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
*वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 172–173*

***UGC Care Listed Journal***
***ISSN 0974 -1100***

## पुस्तक समीक्षा

पुस्तक शीर्षक : **''मालवा की लोक जातियों के प्रसिद्ध लोकगीत''**
**(जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत)**
लेखक : **डॉ. ज्योत्सना गोमें** (चाँदनी)
प्रकाशक : ISRA SOLUTION बी–15, विकासपुरी, नईदिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2023, मूल्य–351/–, कुल पृष्ठ–85, ISBN-978-93-91684-10-5
समीक्षक : **डॉ. राजेश ललावत**

---

लोकगीत, लोक संस्कृति, सांस्कृतिक गतिविधियाँ प्रत्येक समाज में होती हैं। लोकगीतों के माध्यम से हम समाज की रीति–नीति, रिवाज, कला, भक्ति से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से परिचित होते हैं। वर्तमान परिदृश्य में अति आधुनिकता एवं विज्ञान के युग में लोकसंस्कृति को नई शिक्षा नीति के तहत नई उड़ान मिलना प्रारम्भ हुई हैं। समस्त भारत में भिन्न–भिन्न प्रकार की लोकजातियाँ निवासरत है, उनकी लोक–संस्कृति भी अपने आप में विभिन्नताओ से परिपूर्ण है। हमारा प्रयास उन सभी को जानना एवं उन लोकगीतों की मिठास और सुन्दर वर्णन से नई पीढ़ी को अवगत कराना होना चाहिऐ, जिससे सांस्कृतिक धरोहर पीढ़ी–दर–पीढ़ी सहेजी जा सके।

मालवा में लोकगीत अपनी मर्मस्पर्शिता, कल्पनाशीलता, संप्रेष्णीयता, भावोत्वत्ता, संवेदनशीलता से परिपूर्ण है। प्रत्येक लोकजातियों की अपनी सांस्कृतिक विभिन्नताऐ हैं, इन्हीं संस्कृति में लोकगीत उनकी परम्पराओं को व्यक्त करने का माध्यम है। लोक गीत का साहित्य वाचिक रूप में चौपालों, चौबारों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों, जैसे– जन्म, विवाह, यहाँ तक कि मृत्यु के समय में भी गाये जाने वाले गीत के रूप में बिखरा हुआ हैं। इन्हीं को संकलित करने का प्रयास लेखक ने किया है। यदि हम प्रत्येक लोक जातियों के गीतों का संकलन करके उन्हें लेखनीबद्ध करने का प्रयास करते हैं, तो हमारे पास एक अमूल्य साहित्य का भंडार होगा। जिसमें हम लोकजातियों एवं क्षेत्रीय भाषाओं, बोलियों के साथ–साथ उनके सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को पूर्ण रूप से जान सकेंगे।

पुस्तक में लेखक ने प्रमुख रूप से मालवा में निवासरत लोकजाति ''बैरवा '' के लोकगीतों को संकलित कर लेखनीबद्ध करने का प्रयास किया है। पुस्तक में जन्म से लेकर मृत्यु तक के प्रमुख लोकगीत संग्रहित हैं। लोकगीतों में अत्यन्त मधुरता से भावनाएं व्यक्त की गई हैं। बच्चों के जन्म के समय गाया जाने वाला वीरा गीत अति प्रसिद्ध हैं। लोकगीतों की प्रमुख झलकियां हैः–

*''हीरा मोत्या सु प्यारो लक्ष्मण वीरों, म्हारी लाख रूपया री भौजाई।*
*माथा रो शालू लाज्यो म्हारा वीरा, म्हारी कोरा रतन जड़ाजो।''*

इस लोकगीत में बहन अपने भाई का बेसब्री से इंतजार कर रही है और गीत के माध्यम से वह कह रही है कि हीरा–मोती सा मेरा भाई है, लखपति मेरी भाभी है। भाई मेरे जलवायु पूजन में रतन जड़ी हूई चुनरी लाना। इस लोकगीत में भाई–बहन के प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार पुस्तक में प्रत्येक लोकगीत का अनूठा विवरण संग्रहित है। पुस्तक में ढोला–मारूणी गीत का भी सुन्दर विवरण है। पुस्तक के अन्त में, मसाणिया गीत है जो अतिवृद्ध की मृत्यु पर लोकसंदेश गीत के माध्यम से गाकर दिया जाता है। जिसके अन्तर्गत मसाणिया गीत 'हंसा गीत' हैं, जिसके बोल हैं–''*चाल म्हारा हंसा ऊपर चाला, काया रो कारीगर कोने हो राम।*'' अर्थात मृत्यु अंतिम सत्य है। पुस्तक में प्रत्येक लोकगीत बहुत ही ज्यादा महत्वपूर्ण भावनाओं से ओतप्रोत लोकजातियो की लोकाभिव्यक्ति को प्रकट करतें है। लोक में गहरा साहित्य बिखरा पड़ा हैं, जिन्हें लेखनीबद्ध एवं संग्रहित किया जाना बहुत आवश्यक हैं। लेखक का यह पुस्तकीय प्रयास सराहनीय है।

लेखक का सुझाव है कि लोक–संस्कृति विभाग द्वारा प्रत्येक लोकजातियो के लोकगीतों को संकलित कर प्रकाशित किया जाना चाहिए। जिससे कि भावी पीढ़ी को वर्तमान समय में लोक–संस्कृति से अवगत कराया जा सके।

❐ ❐

## मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी
### ❐ संक्षिप्त विवरण ❐

तथागत् बुद्ध के संदेश 'अत्त दीपो भव' तथा डॉ. अम्बेडकर के आव्हान 'संगठित रहो, शिक्षित बनो, संघर्ष करो' से अनुप्राणित प्रदेश के प्रमुख दलित समाजसेवियों, साहित्यकारों एवं बुद्धिजीवियों के सम्मिलित प्रयास से सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्परा से समृद्ध नगर उज्जैन में एक स्वशासी संगठन के रूप में 'मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी' की स्थापना की गई। तदुपरान्त म.प्र.सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट,1973 के अन्तर्गत (क्रमांक 19066 दिनांक 18 नवम्बर,1987 पर) संस्था का विधिवत् पंजीकरण कराया गया है। अकादमी का प्रधान कार्यालय उज्जैन स्थित है। अकादमी का लक्ष्य समाज के शोषित–पीड़ित दलितजनों को अपने मानवीय अधिकारों एवं समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से अवगत कर, उनमें नवीन चेतना का संचार करना और शोषण व असमानता के विरूद्ध संघर्ष के लिए सतत् प्रेरित करना है। इस निमित्त दलित साहित्य सृजन एवं शोध–अनुशीलन तथा तदुनुरूप परिवेश का सजृन करना है। साथ ही दलितों के मानवोचित सामान्य अधिकारों की उपलब्धि के लिए उन्हें सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान कर अपनी सक्रिय वैचारिक–साहित्यिक पहल द्वारा उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता की समाज में पुनसर्थापना का प्रयास करना है।

**❐ अकादमी की प्रमुख गतिविधियाँ** :

निर्धारित कार्य योजना के अनुसार अकादमी की प्रमुख गतिविधियाँ एवं उल्लेखनीय उपलब्धियाँ एवं संचालित गतिविधियाँ अधोलिखित हैं :

**❐ सामाजिक विज्ञान शोध केन्द्र की स्थापना**

अनुसूचित जाति के विकास एवं समस्याओं पर केन्द्रित एक उच्चस्तरीय अध्ययन–अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया गया है। जिसके अन्तर्गत एक समृद्ध ग्रन्थालय, शोधपत्र–पत्रिकाऐं, शोध–अध्ययन कक्ष, म्यूजियम आदि अन्य आवश्यक अनुसंधान सुविधाएँ उपलब्ध है।

**❐ ग्रन्थालय एवं प्रलेखन केन्द्र**

अकादमी के ग्रन्थालय में दलित साहित्य, भारतीय समाज व्यवस्था, धर्म.दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि विषयों पर प्रमुख ग्रंथ संग्रहित हैं। ग्रन्थालय में देश के विभिन्न भागों से प्रकाशित दलित समस्याओं पर केन्द्रित पत्र–पत्रिकाएँ, जर्नल्स आदि संग्रहित किये गये हैं। ग्रन्थालय में शोध–अध्ययन की विशेष सुविधाऐं उपलब्ध कराई जाकर उसे एक समृद्ध प्रलेखन केन्द्र के रूप में विकसित किया जा रहा है ।

❐ राष्ट्रीय सम्मेलनों, प्रान्तीय सम्मेलनों, राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों का आयोजन, कार्यशाला,व्याख्यानमाला, जयंती,स्मृति व्याख्यान कार्यक्रमों का आयोजन स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है।

**❐ दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार**

अकादमी द्वारा दलित साहित्य, इतिहास, कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में सृजित उत्कृष्ट कृतियों शोध ग्रन्थों को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से उच्चस्तरीय 'दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार' की स्थापना की गई है।

**❐ शोध पत्रिका "पूर्वदेवा" का प्रकाशन**–वर्ष 1994 से नियमित प्रकाशन किया जा रहा है जिसके अन्तर्गत माह–सितम्बर, 2024 तक 118 अंकों का नियमित प्रकाशन किया जा चुका है जिसमें 1044 से अधिक शोध आलेख प्रकाशित किये जा चुके हैं

**❐ पुस्तक प्रकाशन** – पुस्तक, पाण्डुलिपि प्रकाशन योजनान्तर्गत अब तक 10 पुस्तकों का प्रकाशन किया जा चुका है। साथ ही राष्ट्रीय सम्मेलन प्रसंग विशेष पर स्मारिकाओं का प्रकाशन भी किया गया है।

**❐ अकादमी भवन व परिसर** –प्रशासकीय भवन, जिसके अन्तर्गत अकादमी कार्यालय, ग्रन्थालय एवं शोध केन्द्र एवं संत कबीर सभागृह संचालित है। अकादमी प्रधान कार्यालय, बाणभट्ट मार्ग (केन्द्रीय विद्यालय सम्मूख) उज्जैन, मध्यप्रदेश में स्थित 1.672 हेक्टे. क्षेत्रफल के भूखण्ड पर स्थित है।

**पी.सी. बैरवा**–सचिव **डॉ. हरिमोहन धवन**–अध्यक्ष

# पूर्वदेवा

## मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

'पूर्वदेवा' के प्रकाशन का उद्देश्य मुख्यतः भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त मानवीय विषमताओं के उन्मूलन, दलितों में मानवीय-अस्मिताबोध एवं अधिकार-चेतना उत्पन्न करने और तद्जनित सामाजिक परिवर्तन की भूमिका तैयार कर मानवीय मूल्यों की स्थापना के निमित्त ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार पर विविधपक्षीय, तथ्यपूर्ण एवं शोधपरक अध्ययन एवं चिंतन को प्रवर्त्त करना है। जिससे कि दलित, सर्वहारा वर्ग का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में समुचित विकास एवं मानवीय सम्मान का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

अतएव, इस हेतु विद्वान लेखकों, अनुसंधानकर्ताओं से मौलिक लेख, शोध आलेख एवं अनुभवजन्य, तथ्यपरक लेख, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशनार्थ सादर आमंत्रित हैं।

- लेखको से आग्रह है कि अपने लेख सुवाच्य अक्षरों में टंकित **Word** एवं **Pdf** फार्मेट में ई-मेल द्वारा **E-mail : mpdsaujn@gmail.com** पर भेजें।
- लेख सामान्यतः हिन्दी में लिखे हों। विशेष स्थिति में अंग्रेजी भाषा में लिखे गये लेख भी स्वीकार किये जा सकेंगे। लेख अन्यत्र प्रकाशित नहीं होना चाहिये।
- सम्पादक मंडल को किसी भी लेख को प्रकाशन हेतु स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने का पूर्ण अधिकार है।

पूर्वदेवा का सतत् प्रकाशन सुधी पाठकों एवं लेखकों के उदार सहयोग पर निर्भर है।
अतएव विशेष अनुरोध है कि पूर्वदेवा के ग्राहक बनकर, अपना आत्मीय सहयोग प्रदान करें ।

ग्राहक शुल्क की दरें (**Rates of Subscription**) इस प्रकार हैं-

| | | | |
|---|---|---|---|
| ❊ | आजीवन शुल्क | संस्थागत रू.7500/- | वैयक्तिक रू.6500/- |
| ❊ | वार्षिक शुल्क | संस्थागत रू.350/- | वैयक्तिक रू.300/- |

Book Post

प्रति,

_____

_____

_____

क्रयादेश एवं शुल्क सहित सभी प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :
**मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी**
बाणभट्ट मार्ग, सेंटल स्कूल के सामने, उज्जैन(म.प्र.) 456010

*म.प्र.दलित साहित्य अकादमी के लिये पी.सी बैरवा द्वारा*
*न्यू गुलाब प्रिन्टर्स, उज्जैन-से मुद्रित एवं बाणभट्ट मार्ग, उज्जैन(म.प्र) से प्रकाशित*
*सम्पादन- डॉ.हरिमोहन धवन*

आर.एन.आई.रजिस्टेशन नं. 61954/95 ISSN 0974-1100